वर्ष ११—अंक ३ अप्रैल, १९७१ रजि क्र० ६६८९/६०

विक्रमी संवत् २०२८ ईसवी सन् १९७१ सृष्टि संवत् १,९६,०८,५३,०७०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि ... अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

हिन्दू का स्वरूप

व्याख्याकार श्री गुरुदत्त

आज हमारे देश में हिन्दू समुदाय पूर्ण जनसंख्या का अस्सी प्रतिशत के लगभग होने पर भी अपने को हिन्दू कहने में लज्जा एवं संकोच अनुभव करने लगा है। इस संकोच अथवा लज्जा का कारण यह है कि हिन्दू वास्तविक स्वरूप को भूलकर वह स्वयं ही अपने को कुछ वैसा ही समझने लगा है जैसा कि अहिन्दू उसका वर्णन करते हैं। यह पुस्तिका हिन्दू का स्वरूप समझने का एक प्रयास है।

हिन्दू समाज—समाज की तात्त्विक मान्यताएँ—हिन्दू समाज के तात्त्विक आधार—हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू समाज तथा धर्म आदि विषयों पर प्रकाश डालने वाली यह पुस्तिका ज्ञानवर्धक है।

मूल्य एक प्रति ५० पैसे

प्रचारार्थ—	५ प्रतियाँ एक साथ मँगवाने पर	२ रुपये
	१० ,, ,, ,,	३ रुपये ५० पैसे
	५० ,, ,, ,,	१६ रुपये २५ पैसे
	१०० ,, ,, ,,	३० रुपये

५० प्रतियों से कम मँगवाने के लिये धन अग्रिम भेजें। पुस्तक साधारण डाक द्वारा भेजी जायगी। वी. पी. पैकेट से मँगवाने पर डाक-व्यय चार्ज किया जायगा। ५० प्रतियों से अधिक एक साथ रजिस्ट्री द्वारा अथवा वी. पी. पैकेट द्वारा भेजी जा सकती हैं।

शाश्वत संस्कृति परिषद्

३०/९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे), नई दिल्ली-१

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

•

परामर्शदाता

प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

•

सम्पादक
अशोक कौशिक

•

वर्ष ३ अंक ११

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१
फोन : ४७२६७

•

मूल्य
एक अंक रु० ०·५०
वार्षिक रु० ५·००

सम्पादकीय

पुनरावलोकन की दिशा

श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा आयोजित लोक सभा के मध्यावधि निर्वाचन सम्पन्न हुए और उनका दल प्रबल बहुमत से सफल हो गया।

हम समझते हैं कि भारत की राजनीति के इतिहास में यह एक ऐसा मोड़ लाने वाली घटना हुई है जैसी कि वास्को-डि-गामा के 'केप ऑफ गुड होप' का चक्कर काटकर हिन्दुस्तान के तट पर आ लगने की घटना थी।

यदि यह कहा जाय कि वह घटना तो सुनियोजित एवं अनथक परिश्रम का परिणाम थी और इन मध्यावधि निर्वाचनों के परिणाम आँधी के आम हैं तो हम इससे सहमत नहीं। हमारा विचार है कि जैसे वास्को-डि-गामा का हिन्दुस्तान के तट पर आकर लगना शताब्दियों के विचार और कठिन श्रम का मूर्त्त परिणाम था, वैसे ही भारत के इस निर्वाचन का परिणाम भी सुनियोजित और शताब्दियों के परिश्रम का प्रतिफल था।

इस विचार-प्रवाह का आरम्भ कब से हुआ, यह विचार का विषय है। हम समझते

हैं कि यह विचार चिरकाल से प्रवाहमान है। हमारा विचार है कि वर्तमान घटना उस प्रवाह को एक मोड़ देने वाली मंज़िल है।

वह प्रवाह क्या है और अपने गन्तव्य पर वह कहाँ तक पहुँच गया है, यही हमारे आज के विचार का विषय है।

हमारे मत में इस विचार-प्रवाह का आरम्भ उस दिन से हुआ जब से हमने समाज में पद, उपाधियाँ, मान-प्रतिष्ठा और पूजनीयता जन्म से स्वीकार की और गुणों की श्रेष्ठता को वरीयता देना छोड़ा। जब से व्यक्ति की पूजा आरम्भ हुई, तब से ही देश में दिनानुदिन होने वाली ये दुर्घटनाएँ आरम्भ हुई।

हमारा विचार है कि हिन्दू समाज में इस प्रकार के अवगुण विशेष रूप से उत्पन्न हुए थे। यही कारण है कि हिन्दू समाज पिछले ढाई सहस्र वर्ष से ह्रासोन्मुख रहा है।

जब इस देश में मुसलमान आये तो हिन्दुओं ने मुसलमान बादशाहों की सेवा स्वीकार कर अन्य हिन्दू राजाओं को पराजित करने में योगदान दिया। जब अंग्रेज़ों का राज्य आया तो हिन्दुओं ने अंग्रेज़ों की सेवा स्वीकार कर अंग्रेज़ी शासन के गुणानुवाद गाये। फिर एक समय ऐसा भी आया कि जब अंग्रेज़ों के कहने पर हिन्दू नेताओं ने मुसलमानों को राष्ट्र का अंग मान लिया। इसके विपरीत परिणाम सन् १९४६ के निर्वाचनों में प्रकट हुए और फिर पाकिस्तान बन गया। इस पर भी हिन्दुओं ने मुसलमानों को बिना किसी प्रमाण के राष्ट्र का अंग माना।

तदनन्तर नेहरू राज्य आया और नेहरू सरकार को हिन्दुओं का पूर्णरूप में समर्थन प्राप्त हुआ और इस राज्य ने हिन्दू समाज को दीन-हीन बनाकर रख दिया।

अब उसी नेहरू की पुत्री इन्दिरा गांधी का राज्य आया है। जो घटनाएँ श्रीमतीजी के राज्य में हुई हैं, उनका प्रत्यक्ष प्रमाण होते हुए भी हिन्दू समाज ने श्रीमतीजी को पहले से भी अधिक बलशाली बना दिया है।

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि सन् १९४७ से लेकर १९७१ तक हिन्दू समाज की कितनी दुर्गति हुई है। हमारा अभिप्राय यह है कि वर्तमान निर्वाचनों में जो अप्रत्याशित सफलता प्राप्त हुई है, उसका कारण न तो इन्दिरा गांधी है और न ही कॉंग्रेस की किसी प्रकार की नीति। इसका मुख्य कारण है भारत की अधिकांश जनता के संस्कारों में दोष।

यह कहा जा सकता है कि इस निर्वाचन में श्रीमती गांधी के गरीबी को दूर करने, सबको रोज़गार दिलाने और महंगाई दूर करने के नारे ने जनता को मोह

लिया है। यह ठीक हो सकता है; तदपि हमारा यह मत है कि ये नारे तो सन् १९४७ से ही लगाये जाते रहे हैं। न केवल इतना, यदि यह कहा जाये कि सन् १९२१ से ही इनकी भूमिका बाँधी जा रही है तो गलत नहीं होगा। परन्तु पिछले २३ वर्ष के स्वराज्य काल में इन नारों का परिणाम विपरीत ही होता रहा है। बेकारी, गरीबी और महंगाई तीनों बढ़ी हैं। श्रीमती गांधी को भी राज्य-कार्य चलाते हुए पाँच वर्ष से अधिक हो गये हैं। यदि यह कहा जाये कि जनता की उक्त कठिनाईयाँ श्रीमतीजी के राज्य में बढ़ी हैं तो गलत नहीं होगा।

काँग्रेस, श्रीमतीजी के पिता तथा श्रीमतीजी के स्वयं के सब आश्वासनों के होने पर भी कठिनाइयाँ दूर नहीं हुईं, इतनी स्पष्ट बात भी यदि जनता के मस्तिष्क में नहीं बैठी तो यही कहा जा सकता है कि जनता के विचार करने की दिशा कुण्ठित हो गई है। जो बात घर-घर में अनुभव की जा रही है, उस प्रत्यक्ष बात के विषय में भी यदि जनता को धोखा दिया जा सकता है तो इसमें दोष जनता का ही है।

जो नेता आज जनता के विचार का निर्माण और प्रतिपादन कर रहे हैं वे भी इस दोष से मुक्त नहीं हो सकते। यदि यह कहा जाये कि हिन्दू समाज के नेता जो विचार-निर्माण के कार्य में लगे हुए हैं, वे ही दोषी हैं तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। हम राजनीतिक नेताओं को दोषी नहीं मानते। हमारे विचार में इसमें दोषी हैं पण्डित, पुजारी, समाज और सभायें, जिन्होंने हिन्दू समाज के सुधार का ठेका ले रखा है।

विचार से कार्य को दिशा मिलती है। यदि हिन्दू समाज ही हिन्दू धर्म, संस्कृति और परम्पराओं का घातक सिद्ध हो रहा है तो दोष इसके विचार-निर्माताओं का है। उत्तरी भारत में, विशेष रूप में पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में इस दिशा में सबसे बड़ा दोषी आर्य समाज है। सनातन धर्म सभा नाम की कोई संस्था कागजों अथवा कुछ भवनों में भले ही विद्यमान हो, किन्तु उसके कर्णधारों ने उसका जल प्रवाह कर दिया है, तो फिर विचार-निर्माण में उसको दोष ही किस आधार पर दिया जाय?

हम यह नहीं मान सकते कि हिन्दू परम्पराओं का गरीबी, बेकारी और महंगाई से कोई विशेष मोह है। इसके विपरीत यदि हम हिन्दू परम्परा के मानने वाले होते तो समाज की ये कठिनाइयाँ बहुत पहले ही दूर हो चुकी होतीं।

भारत की जनता का अधिकांश हिन्दू समाज से सम्बन्धित है, अतः हम यह भी कह सकते हैं कि आमूल-चूल सारा ही दोष हिन्दू समाज का है।

हिन्दू समाज गोहत्या का घोर विरोधी है और उसी हिन्दू समाज को यह भी

भली भाँति विदित है कि वर्तमान काँग्रेसी शासन गोहत्या को बन्द नहीं कर सकता ।

गोमाता के बाद हिन्दू समाज की निष्ठा राम कृष्णादि महापुरुषों में है और आज तक के काँग्रेसी राज्य में यह इस राज्य में ही हुआ है कि इन महापुरुषों के चित्रों को सड़कों पर खुले आम जूते लगाकर अपमानित किया गया है । यह बात तो किसी मुसलमानी राज्य में भी सम्भव नहीं हो सकी थी ।

इसके बाद हिन्दुओं की एक निष्ठा है अपने धर्म-शास्त्रों पर । उनका तिरस्कार तो प्रायः सब विश्वविद्यालयों में होता ही है । वेदों में गोमांस खाने की बात, वेदों में अंट-शंट बातें लिखी रहने की चर्चा और हिन्दू विचार के आत्मा-परमात्मा पर अविश्वास, महाभारत, रामायण में अनृत कथाओं की बात वर्तमान शिक्षा पद्धति से प्रचारित हो रही हैं और इस शिक्षा को देने वाले अधिकांश हिन्दू ही हैं ।

यह कहा जाता है कि भारत में अधिकांश पूंजीपति और धनी-मानी हिन्दू ही हैं और इन हिन्दुओं के मतों से ही ये गोघातक महापुरुष प्रताड़क तथा वेदनिन्दक सत्तारूढ़ होते हैं ।

देश का विभाजन हुआ तो वह भी हिन्दुओं के मतों के विरुद्ध हुआ था । ये देश-विभाजक इसी देश में रहे तो इन्हीं शासकों के दुष्प्रयत्नों से, किन्तु हिन्दुओं के विचार के विपरीत आज भी देश में कश्मीर की विशेष स्थिति बनी हुई है जो हिन्दू विचार के अनुकूल नहीं है । देश में यदि आवश्यकता की वस्तुयें महंगी हो रही हैं तो कष्ट में अधिकांश हिन्दू ही हैं । अभिप्राय यह कि बहुसंख्यक जनता हिन्दू होने से देश में होने वाली सब हानियों और विकृतियों का अधिकांश परिणाम हिन्दू समाज को सहन करना पड़ रहा है । इन सब दुर्व्यवस्थाओं का कारण वह सरकार ही है जो हिन्दुओं के बहुमत से समर्थित है ।

अनेकों अन्य उदाहरणों से भी यही प्रतीत होता है कि भूतकाल और वर्तमान की भी यदि समस्त नहीं तो अधिकांश दुर्घटनाओं और दुर्व्यवस्थाओं का दोषी हिन्दू समाज स्वयं ही है ।

यह भी हम जानते हैं कि इन निर्वाचनों में इंडिकेट की विजय से बहुत बड़ी संख्या में हिन्दू ही प्रसन्न हैं । उनके घरों में घी के दिये जलते हैं । इस बात को जानते हुए हम एक ही परिणाम पर पहुँचते हैं कि जिन्हें हम हिन्दू-हित मानते हैं, अधिकांश हिन्दू उसे अपना हित नहीं समझते । यही विचारणीय प्रश्न है ।

यह भी हो सकता है कि बहुसंख्या में हिन्दू-हित उसी बात में मानते हों जिसमें हम मानते हैं, तदपि वे अपने हित वर्तमान शासन के हाथों में सुरक्षित

समझते हैं। इसी कारण उन्होंने अपना मत देकर वर्तमान शासन को प्रबल बहुमत प्रदान किया है।

हमारा कहने का अभिप्राय यह है कि इस समय भारत की अधिकांश हिन्दू जनता अपना और देश का हित उन बातों में नहीं मानती जिनमें हम मानते हैं अथवा यदि वे उन्हीं बातों में अपना हित मानते हैं तो फिर हमारे उपायों को गलत समझते हैं।

अतएव सन् १९७१ के लोक सभा के निर्वाचनों में उस विचार के हिन्दू की पराजय हुई है जो हमारे विचार का है अथवा लगभग हमारे जैसे विचार का है। हमारा मत क्या है ? हम मानते हैं कि—

१. हम हिन्दू हैं। अर्थात् हम वैदिक, आर्य एवं भारतीय आचार-विचार और संस्कृति के उत्तराधिकारी हैं।

२. हम प्राचीन भारतीय संस्कृति और परम्पराओं को श्रेष्ठ मानते हैं।

३. हम अपने देश में देशवासियों का ही राज्य चाहते हैं।

४. हम सबके साथ समान न्याय और धर्मयुक्त व्यवहार चाहते हैं।

५. हम विद्वानों को मान और सम्मान देना पुनीत कर्त्तव्य मानते हैं।

६. हम परिश्रम के अनुसार प्रतिकार के सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं।

७. हम परिश्रम न करने वाले को किसी प्रकार का भी अधिकार नहीं देना चाहते।

८. हम न्याय-व्यवस्था, सुरक्षा के प्रबन्ध और आपद्ग्रस्त व्यक्तियों का पालन-पोषण राज्य का अधिकार एवं कर्त्तव्य समझते हैं।

९. हम सांस्कृतिक और शैक्षणिक विषयों में शासन से स्वतन्त्र व्यवस्था चाहते हैं।

१०. हम उन सब लोक-कल्याण के कार्यों में जो आपद्ग्रस्त स्थिति के अतिरिक्त हैं, शासन का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते। इसे हम उन लोगों का कार्य मानते हैं जो अपने परिश्रम से धन का उपार्जन कर रहे हैं।

इन मान्यताओं को हम भारतीय हिन्दू समाज की मान्यताएँ मानते हैं और हमारी धारणा है कि इन मध्यावधि चुनावों में इनके विरुद्ध विचार वालों की विजय हुई है। यह विजय हिन्दू समाज के बहुमत से हुई है।

हम समझते हैं कि यदि इन विचारवालों को देश की राजनीति में भाग लेना है तो हिन्दू समाज में उक्त धारणाओं को स्थापित करना होगा अन्यथा सदा की भाँति असफलता एवं पराजय का ही सामना करना पड़ेगा।

• •

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

□

श्री आदित्य

पश्चिमी एशिया में स्थिति ऐसी है जैसी कि सुलग रहे बम्ब पर खड़े ताश के पत्तों का महल। तीसरी बार युद्ध बन्दी की अवधि समाप्त हो गई है और युद्ध बन्दी की रेखा के दोनों ओर सेनाएँ लड़ने के लिए तैयार खड़ी हैं।

जहाँ इज़राइल ने यह घोषणा की है कि वह युद्ध बन्दी के करार पर हस्ताक्षर करने के लिए अब भी तैयार है और स्थायी शान्ति के लिए बातचीत करने के लिए तैयार है वहाँ अरब गणराज्य के प्रधान श्री सादत ने घोषणा की है कि वह दुनिया को बता देना चाहता है कि वह युद्ध बन्दी का पाबन्द नहीं।

यद्यपि युद्ध बन्दी का किसी प्रकार का करार नहीं रहा, परन्तु युद्ध अभी आरम्भ नहीं हुआ। इन पंक्तियों के लिखने तक दोनों में से किसी भी ओर से कोई युद्ध आरम्भ करने की उतावली प्रतीत नहीं होती। इज़राइल ने यह कहा है कि जहाँ वह शान्ति के लिए बातचीत करने के लिए तैयार है वहाँ युद्ध बंदी-करार के अभाव में भी वह पहली गोली नहीं चलायेगा। अरबों की ओर से ऐसी कोई घोषणा नहीं है और यही एक प्रकार का सुलग रहा बम्ब है जो किसी समय भी फट सकता है और इन दो छोटे-छोटे देशों को विनष्ट कर सकता है।

दोनों ओर से यह समझा जा रहा है कि वह विरोधी पक्ष को विनष्ट कर देगा। क्या हो सकेगा और क्या नहीं हो सकेगा ? यह अनुमान लगाना सुगम नहीं।

पिछले बाईस वर्ष में तीन बार पहले भी इस क्षेत्र में इन दोनों पक्षों में युद्ध हो चुका है। इन युद्धों में दोनों पक्षों का अपना-अपना दावा है। अरब गणराज्य का प्रत्यक्ष रूप में यह दावा है कि पैलस्टाईन का सब क्षेत्र अरबों का प्रतिनिधि अरब गणराज्य ही है। अतः उनकी इच्छा के विरुद्ध यहूदियों को अपना राज्य स्थापित करना अन्याय है।

वास्तविकता यह है कि मिस्र के बाहर रहने वाले अरब भी मिस्र के अरबों

के इस दावे को स्वीकार नहीं करते। यद्यपि वे सब भी चाहते हैं कि इज़राइल राज्य वहाँ न रहे। वे इसके बनने में रज़ामन्द नहीं थे और अब इसके बने रहने से भी प्रसन्न नहीं। इस पर भी वे अरब गणराज्य को न तो अरबों का नेता और न ही प्रतिनिधि मानते हैं।

प्रश्न उपस्थित होता है कि इज़राइल का विरोध क्यों है ? क्या यह अरब और गैर-अरब का प्रश्न है ? हमारे विचार में इज़राइल का विरोध इस कारण नहीं। वह इस कारण है कि इज़राइली राज्य गैर-मुसलमानी राज्य है। यदि पश्चिमी एशिया में किसी बात में सहमति है तो इस बात में कि इस मुसलमानी क्षेत्र में एक गैर-मुसलमानी राज्य सहन नहीं करना चाहिये।

इस भावना को संसार भर के बुद्धिमान और जानकार लोग जानते हैं, परन्तु यह वर्तमान युग की राजनीति है कि अपना-अपना उल्लू सीधा करने के लिए सत्य को छिपाने का यत्न कर रहे हैं।

किसका, क्या उल्लू सीधा होता है ? यह एक लम्बी कहानी है। इस पर कुछ की इस छलना में रुचि के विषय में कहा जा सकता है।

यह छलना सबसे पहले इंगलैण्ड ने आरम्भ की थी। उस समय इंगलैण्ड का हिन्दुस्तान पर राज्य था और इंगलैण्ड और यूरोप की सशक्त जातियों में एक रुकावट खड़ी करना चाहता था। उस समय मिस्र इंगलैण्ड का दुमछल्ला बना हुआ था और इंगलैण्ड मिस्र के चौधरपन में पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका के कुछ एक राज्यों को ईसाई शक्तियों के पूर्व की ओर बढ़ने से रोकने के लिए प्रयुक्त करना चाहता था। यह हिन्दुस्तान को सदा के लिए अपने अधीन रखने की योजना का एक अंग था।

इंगलैण्ड की योजना चल नहीं सकी। कारण यह कि द्वितीय विश्व-युद्ध के कारण परिस्थितियाँ ऐसी उत्पन्न हो गईं कि हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हो गया और यहाँ इंगलैण्ड का राज्य न रहने से पश्चिमी एशिया में किसी शक्तिशाली राज्यों के गुट की आवश्यकता नहीं रही, परन्तु हिन्दुस्तान का विभाजन हुआ और यहाँ दो राज्य बने। पाकिस्तान और भारत। पाकिस्तान तो मुसलमान होने से पश्चिमी एशिया के एक प्रबल राज्य गुट बनाने में रुचि लेने लगा और भारत में नेहरू राज्य हुआ जो अधकचरा हिन्दुस्तानी और मुख्य रूप में अंग्रेज तथा अर्थ-व्यवस्था में मार्क्सवादी था। अतः नेहरू की पश्चिमी एशिया के प्रति वही नीति रही जो अंग्रेज़ की थी। यह बुद्धिमान कहा जाने वाला 'अज्ञ' यह नहीं समझ सका कि अंग्रेज़ किसलिये उस क्षेत्र में अरबों का गुट बनाने में रुचि रखता था ? न ही यह महानुभाव यह समझ सका कि वहाँ जो भी संगठन बनेगा, वह मुसलमानी

संगठन होगा। इससे भारत के मुसलमानों का संगठन सुदृढ़ होगा और भारत के हिन्दू इसको सन्देह की दृष्टि से देखेंगे।

परन्तु इतनी दूर की बात नेहरू परिवार के किसी भी व्यक्ति से आशा करनी बबूल के पेड़ पर आम की आशा करनी थी। अतः सभ्यता से अंग्रेज़ यह भारत का प्रधान मन्त्री अरबों की हिमायत और इज़राइल का विरोध करता रहा। इज़राइल अरबों के गुट में एक दरार उत्पन्न करने का यत्न करता रहा है।

जवाहरलाल नेहरू भारत की विदेश नीति का सर्वेसर्वा था और वह अरबों की हिमायत में भारत के हितों का बलिदान करता रहा। वही हुआ जो अरबों की हिमायत से होना था। भारत में मुसलमान सुदृढ़ हुए और भारत सरकार हिन्दुस्तान से अधिक अरबों के हित का चिन्तन करने लगी।

इन्दिरा गांधी के काल में मुसलमानों को जो बढ़ावा मिला है वह भारत के लिए एक बहुत बड़ा भय बन रहा है, परन्तु विदेश नीति में नेहरू परिवार अंग्रेज़ों का अनुकरण करता रहा है और इस नीति से इज़राइलियों के दाँव को समझ ही नहीं सकता।

सैकड़ों वर्षों से रूस की दृष्टि टर्की पर रही है। उसमें कारण यह रहा है कि रूस भूमध्य सागर में प्रवेश द्वार चाहता है। कृष्ण सागर से भूमध्य सागर का द्वार बासफ़ोरस के जलडमरू पर टर्की बैठा हुआ है। यद्यपि टर्की की वह स्थिति नहीं रही जो प्रथम विश्व-युद्धसे पूर्व थी; इस पर भी टर्की, इंगलैण्ड और कुछ अन्य युरोपियन देशों के संरक्षण में, रूस के मार्ग में बाधा ही है।

अतः रूस ने भूमध्य सागर में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए अरबों का साथ देना आरम्भ किया है। सन् १९५६ के युद्ध में और सन् १९६७ के युद्ध में अरबों का सहायक रूस रहा है। वह भी अपना उल्लू सीधा करना चाहता है। इसी अर्थ रूस ने सन् १९६७ के उपरान्त अरब की प्रत्येक प्रकार से सहायता कर इसे पुनः इज़राइल से लड़ने के लिए तैयार किया है।

रूस मिश्र के बन्दरगाहों को अपनी सैनिक गतिविधियों के लिए प्रयोग करना चाहता है।

परन्तु इन सबसे पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका में मुसलमानों का संगठन बन रहा है।

इस संगठन के सम्पूर्ण और शक्तिशाली होने में एक शताब्दी लग सकती है, परन्तु यदि यह सिद्ध हुआ तो पूर्ण भूमण्डल के लिए एक भारी मुसीबत का कारण बन जाएगा।

सामयिक लाभ उठाने वाले राज्य अपने पीछे आने वाली पीढ़ियों के लिए

मुसीबत छोड़ जाएँगे। परन्तु क्या किया जाए ? आज भूमण्डल में अदूरदर्शी राजनीतिज्ञों की चलती है और वे अपना समय निकालने के लिए भावी मानव समाज के लिए काँटे बो रहे हैं।

भारत इन अदूरदर्शियों में सबसे आगे है और यह कदाचित् सबसे पहले अपनी अदूरदर्शिता का फल भोगेगा। मुसलमान तो घर की समस्या है। भारत सरकार अन्तर्राष्ट्रीय इस्लामी संगठन बनाने में सहायक होकर अपने देश को उस संगठन के अधीन कर देगा।

परतु विचारणीय तो यह है कि वर्तमान इज़राइल देश पर यहूदियों का किसी प्रकार का अधिकार है भी अथवा नहीं ? यहूदी कहते हैं कि आज से दो सहस्र वर्ष पूर्व यह देश उनका था। उस समय उनका यहाँ साम्राज्य था और यह एक दावा है कि यह स्थान उनको राज्य करने के लिए मिलना चाहिए।

लोग कहते हैं कि वह बात इतनी पुरानी हो गयी है कि उस पर आज दावा नहीं किया जा सकता। प्रश्न यह है कि घटना कितनी पुरानी होने से निस्तेज हो जाती है ? हम समझते हैं कि यह तब तक पुरानी नहीं होती और भूलने योग्य नहीं होती जब तक कि यह जनता के मन पर से मिटती नहीं।

जब तक यहूदी अपने इस ऐतिहासिक स्थान को विस्मरण नहीं कर देते तब तक उनका दावा बना रहेगा और जो लोग उनके इस दावे को नहीं मानते, वे ही वास्तव में झगड़े को आरम्भ करने वाले हैं।

अतः यहूदियों का यह देश बन जाना तो युक्तियुक्त ही है, परन्तु जो वहाँ पर गैर यहूदी रहते हैं, उनका इस राज्य में क्या योगदान होगा और उनका किस प्रकार का कितना अधिकार हो, विचारणीय विषय है। इस विषय में दोनों दलों को बैठकर ठण्डे दिल से विचार करना होगा।

इज़राइल की प्राइम मिनिस्टर गोल्डा मायर ने १९६७ में विजित स्थानों के वापस करने के विषय में टाइम्ज़ के संवाददाता को अलशरम और जेरुसलम न छोड़ने का विचार बताया है और साथ ही प्रायद्वीप सिनाई में अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा में देने की योजना बताई है।

ये शर्तें अरब मान रहे प्रतीत नहीं होते। अतः पुनः युद्ध की सम्भावना बढ़ रही है।

* *

माण्डूक्य उपनिषद्

□

श्री प्रभाकर

[गतांक से आगे]

प्रथम मन्त्र में लिखा है कि यह जगत ओं (परमात्मा) अक्षर का ही व्याख्यान है।

दूसरे मन्त्र में लिखा है कि इस पूर्ण जगत् का आत्मा (मूल) ब्रह्म है और इसके चार पाद हैं।

तीसरे मन्त्र में बताया है कि प्रथम पाद है जाग्रत अवस्था। यह अवस्था (बहिष्प्रज्ञा) बाहर में ज्ञानवान है, सात अंगों वाली, उन्नीस मुखों वाली है। स्थूल विषयों का भोक्ता (स्थूल भक्) वैश्वानर है।

इसी मन्त्र की व्याख्या करते हुए हमने पूर्वांक में लिखा था कि इस अवस्था में प्रज्ञः (चेतन) बाहर आ प्रकट होने लगता है और इस अवस्था के सात अंग हैं तथा उन्नीस मुख हैं।

हमारे मत से यह जगत् की उस अवस्था का वर्णन है जब प्रकृति सुप्तावस्था से जाग कर कार्य करने लगती है। अतः इस अवस्था में जगत् के सात अंग और उन्नीस मुख कौन से हैं जिनसे वैश्वानर बनता है। इस विषय में हमारा स्वामी शंकराचार्य से मतभेद है।

हमने अपने पूर्व के लेख में बताया है कि स्वामीजी इस अवस्था के जो अंग बताते हैं, वे हैं—द्युलोक, सूर्य, वायु, आकाश, अन्न, आपः और पृथिवी। उन्होंने इसके लिए उपनिषद् (छा० ५-१८-२) का प्रमाण दिया है। अतः इसका अर्थ भी देखना चाहिये। उपनिषद् का मंत्र इस प्रकार है—

तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मात्म संदेहो बहुलो वस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादावुर एव वेदिर्लोमानि बर्हिर्हृदयं गार्हत्यो मनोऽन्वाहार्यपचन आस्यमाहवनीयः ॥ (छा०—५-१८-२)

अर्थात्—उस वैश्वानर का सिर सुन्दर तेज है, विश्वरूप उसके नेत्र हैं, सर्वत्र विद्यमान वायु ही उसके प्राण हैं, आकाश देह है, ऐश्वर्य उसका वस्ति प्रदेश है, पृथिवी उसके पाँव हैं, (यज्ञ) वेदी उसकी छाती है; (यज्ञ) कुशा लोम हैं, गार्हमत्याग्नि उसका हृदय है, अन्वाहार्य पंचाग्नि उसका मन है, अहवनीयाग्नि उसका मुख है।

इस प्रकार इस उपनिषद् में यह अंग गिनाये हैं—

(१) द्युलोक (२) तेज (३) सूर्य (४) वायु (५) आकाश (६) ऐश्वर्य (७) पृथिवी (८) यज्ञ वेदी (९) कुशा (१०) गार्हमत्याग्नि (११) अन्वाहार्य (१२) अहवनीयाग्नि।

अत: इनकी संख्या बारह होने से यह प्रतीत होता है कि ये अंग किसी अन्य पदार्थ के बताये हैं। ये उस जाग्रत जगत के नहीं, जिसका वर्णन माण्डूक्य (३) में है।

स्वामी शंकराचार्यजी सदा अपना मत बिना विचार किये उन उपनिषदों के उद्धरणों से बनाते हैं जिनका मूल पाठार्थ से सम्बन्ध नहीं होता।

हमारा यह मत है कि इस (माण्डू० ३) में वैश्वानर के अंग नहीं बताये। ये अंग बताये हैं जगत् के। इन अंगों को (भक्) पचाकर अर्थात् उन्नीस मुखों से (भक्) पचाकर (अभिप्राय है परिवर्तन कर) वैश्वानर बनता है।

मन्त्र का अर्थ है—

जाग्रत स्थान में जगत् के सात अंग हैं। उन सात अंगों में उन्नीस मुखों से खाकर अभिप्राय यह कि परिवर्तन कर वैश्वानर बना है।

इससे हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि वैश्वानर बनने से पूर्व जो कुछ था, उसके ही सात अंग सृष्टि क्रम के जानने वाले यह मानते हैं कि वैश्वानर से पहले जो जगत् की स्थिति थी, उसके अंग निम्न हैं।

(१) परमात्मा (२) जीवात्मायें (३) सत्त्व गुण (४) रजस गुण (५) तमस गुण (६) तेज (प्राण अथवा वायु) (७) जीवों के कर्म फल।

इन अंगों से ही पूर्ण चराचर जगत् का निर्माण हुआ है। इस निर्माण में उन्नीस मुखों द्वारा इन सात अंगों के खाये जाने पर वैश्वानर अर्थात् विश्व रूपी नर का निर्माण हुआ है।

स्वामी शंकराचार्य ने इन मुखों का वर्णन नहीं किया। हमारा मत है कि ये उन शक्तियों के रूप हैं जिनसे जगत् की रचना हुई है।

हमारे मत में वे शक्तियाँ इस प्रकार हैं—

(१) परमाणुओं में गुणों की साम्यावस्था भंग करने वाला तेज, इसका

एक रूप है।

(२) साम्यावस्था भंग गुणों से अहंकार बनाने वाली शक्ति के तीन रूप हैं।

(३) अहंकारों से ह्रस्व और दीर्घ बनाने वाले तेज के रूप दो हैं।

(४) ह्रस्वों और दीर्घों से पारिमण्डल बनाने वाले तेज के तीन रूप हैं।

(५) पारिमण्डलों से पंच महाभूत बनाने वाली शक्ति के पाँच रूप हैं।

(६) पंच तन्मात्रा शक्ति के पाँच रूप हैं।

यह कुल मिलाकर उन्नीस रूप हैं। यही उन्नीस मुख हैं, जिनसे वैश्वानर बना है।

वैश्वानर का रूप क्या है ? इस विषय में ऋक्वेद प्रथम मणमडल का अठानवेवां सूक्त बताता है कि जगत् के निर्मित पदार्थ ही वैश्वानर है। उस सूक्त का एक मंत्र इस प्रकार है—

वैश्वानर तव तत् सत्यमस्त्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥

(ऋ०—१-९८-३)

इसका अर्थ है—विश्व का नायक (वैश्वानर) अर्थात् जगत् का प्रारूप; (तव) तेरा अर्थात् परमात्मा का (तत्) वह अर्थात् जगत्; (सत्यम् अस्त) सत्य स्थिर है। (अस्मान्) हमें। (रायः) ऐश्वर्य; (मघवान्) ऐश्वर्यवान जन; (सचन्ताम्) उत्पन्न हों। (मित्रः वरुणाः अदितिः) सर्वश्रेष्ठ मित्र प्राप्त हों। (सिन्धु पृथिवी उत द्यौः) समुद्र, पृथिवी, सूर्य और द्युलोक सब। (तत्) वह। (मामहन्ता) प्राप्त हों।

अभिप्रायः यह है कि वैश्वानर जगत् का प्रथम रूप है जिससे सूर्य, चन्द्र, तारागण, पृथिवी इत्यादि सब प्राप्त होते हैं।

अतः माण्डूक्य उपनिषद् के इस (३) मन्त्र में यह कहा गया है कि जब जगत् बनने लगा तो चेतना अर्थात् परमात्मा की निर्मात्री शक्ति बहिर्मुखी हो गयी। अर्थात् वह अपना कार्य करने लगी। उस समय जगत् के सात अंग थे और फिर परमात्मा का तेज उन्नीस मुख वाला होकर वैश्वानर को बनाने में सफल हुआ।

भारतीय इतिहास का एक पक्ष

□

श्री सचदेव

इस शृंखला के पूर्व लेख में हमने लिखा था कि इतिहास में घटनाओं का तिथिक्रम किसी एक घटना के काल को प्रारम्भिक बिन्दु मानकर ही निर्धारित किया जा सकता है। जैसे यूरोपीय विद्वान अपने इतिहास की तिथियाँ ईसा के बलिदान दिवस से लगाते हैं। वे प्रत्येक घटना का काल लिखते समय ईसा पूर्व अथवा ईसा उपरान्त लिखते हैं।

इसी प्रकार भारत के इतिहास में भी किसी घटना को प्रारम्भिक बिन्दु बनाना पड़ेगा। इसमें हम दो प्रारम्भिक बिन्दु लेते हैं। एक तो मनु का काल है। दूसरे शब्दों में जलप्लावन के उपरान्त जब सृष्टि में वृद्धि होने लगी तो उस काल से हमारा एक सम्वत् आरम्भ होता है। दूसरा काल बिन्दु है युद्ध के उपरान्त युधिष्ठिर का राज्याभिषेक काल।

पहले हम मनु सम्वत् की चर्चा करना चाहते हैं। मनु वह व्यक्ति था जो महा जलप्लावन में बचा था और जिसने नवीन सृष्टि चलायी थी। यूरोपियन लेखक जलप्लावन की घटना को स्वीकार नहीं करते। यह उनका एक हठ ही है। कारण यह कि इस घटना का वृत्तान्त भारतीय साहित्य के अतिरिक्त अन्य देशों के प्राचीन साहित्य में भी मिलता है। इस घटना का उल्लेख मिश्री, यहूदी, बाबल, सुमेर, दक्षिण अमेरिका इत्यादि देशों के साहित्य में लगभग उसी प्रकार मिलता है जैसा भारतीय साहित्य में मिलता है।

बाईबल की पुरानी पुस्तक में इसका उल्लेख है और इससे नूह के बच निकलने का वृत्तान्त लिखा है। बाईबल पुरानी पुस्तक उत्पत्ति वृत्तान्त अध्याय ६ कण्डिका ७ में लिखा है। इसी प्रकार यहूदियों की पुस्तक अंजील में भी यही वृत्तान्त है।

कालिडया के इतिहास के उपलब्ध अंशों में भी इस प्लोवन का वृत्त मिलता है। Encyclopedia of Religion and Ethics (Article on Ages) में लिखा है —

Berosus, the priest of Marduk temple of Babylon under the rule of Selucias wrote Chaldiac......He asserts that the world will burn when all the planets...come to-gether in the Crab. (भारतवर्ष का वृहद इतिहास, भाग प्रथम—भगवद्दत्त P. 206).

अर्थात् बैबिलोनिया के मरडोक मन्दिर के पुजारी ने निश्चय से कहा···कि पृथिवी जल उठेगी और सब कुछ नष्ट हो जायेगा, जब सब नक्षत्र कर्क राशि में एकत्रित हो जायेंगे।

मनु के जलप्लावन का इतिहास भी काल्डिया के पुराने विद्वान को भली भाँति विदित था। उक्त 'Encyclopedia' में ही लिखा है—

The Cueveiform texts mention kings before the flood in opposition to kings after the flood.

In the time before the flood their lived the heroes, who (Gilgames Epic) dwell in the under world, or like the Babylonian Noah, are remored in to the heavenly world. At that time there lived, too, the (seven) sages.

(Qtd. from भारतवर्ष का बृहद इतिहास—भगवद्दत्त भाग I पृष्ठ २०६)।

अर्थात्—पुरातन लेखों में जलप्लावन से पूर्व के और जलप्लावन के उत्तर के राजाओं का वर्णन है। जल प्लावन के पूर्व वे देव थे जो पाताल में रहते थे अथवा बाबल देश के ग्रन्थों में वर्णित नोह के समान देवलोक में ले जाये गये थे। उसी समय सप्त ऋषि भी रहते थे।

उक्त 'Encyclopedia' में ही लिखा है कि सुमेर के एक वृत्त के अनुसार नौका में बैठने वाला (वैवस्वत) था। वह भारतीय परम्परा के अनुसार विवस्वान का पुत्र मनु था। वहाँ यह भी लिखा है—

It is noteworthy that among the South American Indians it is generally held that the world has already been distroyed twice once by fire and again by flood, as among the eastern Tupies and the Aravaks of Guiana. (Qted from भारतवर्ष का बृहत इतिहास—भाग प्रथम—(भगवद्दत्त) पृ० २०६।

अर्थात्—दक्षिण अमेरिका के इण्डियन मानते थे कि संसार पहले भी दो बार नष्ट हो चुका है। एक बार आग से और एक बार जलप्लावन से।

एक पुस्तक 'Tales of Cochiti Indians by Ruth Benedict Smith-

sonian Institute Bureau of American Ethnology Bulletin 98. P. 2-3 में लिखा है—

Long ago the people (of that world) khnew that there would be a great flood, Up in the North among the high mountains, they built a boat. When it was nearby time for the water to rise they begain to load it with much corn and they took all the different animals into the boat and a white pigeon. When everything was ready the sons of the buielder of the boat and their sons came into the ship. When they were all in they put pitch over all the cracks of the boat. The flood came. The boat fleabdted on the water......Every living thing on the earth was drowned, but this boat still floted. When the waters went down the boat grounded on a high place in the mountains to the North......So the people on this boat were saved from this first ending of this world by flood.

अर्थात्—बहुत पुराने काल में लोग जानते थे कि उत्तर के पर्वतों में एक बड़ा जलौंध आयेगा। उन्होंने एक बहुत बड़ी नौका बनायी। जब पानी के ऊपर होने का समय आया तो उन्होंने नौका को गेहूँ, विभिन्न पक्षियों और एक श्वेत कपोल से लाद लिया। जब सब तैयार हो गया तब नौका बनाने वाले के पुत्र-पौत्र नौका में आ गये। जलौंध आया। पृथिवी के सब प्राणी डूब गये, परन्तु वह नौका तैरती रही। जब पानी नीचे उतर गया तो नौका पर्वतों में एक ऊँचे स्थान पर टिक गयी।

इस प्रकार यह सिद्ध किया जा सकता है कि जलप्लावन की घटना की परम्परा प्रायः सब प्राचीन सभ्य जातियों में प्रचलित थी। इससे यह परिणाम असत्य नहीं प्रतीत होता कि पृथिवी में एक बार जलौंध आया था और उसमें से एक व्यक्ति कुछ अन्य साथियों के साथ नौका में बैठकर बच गया था।

अब विचारणीय बात यह रह जाती है कि यह घटना कब घटी थी? भारतीय इतिहास ग्रन्थों में तो इसके प्रमाण मिलते हैं। महाभारत में इसका एक प्रमाण इस प्रकार है—

त्रेतायुगादौ च ततो विवस्वान् मनवे ददौ।
मनुश्च लोकभूत्यर्थं सुतायेक्ष्वाकवे ददौ॥

महाभा० (पूना सं०) शा० प०—३३६-४७
महाभा० (गोरखपुर सं०) शा० प०—३४८-५१

आदित्य के वंशज विवस्वान के परिवार में त्रेता युग के आरम्भ में विवस्वान् का पुत्र मनु उत्पन्न हुआ और उसने पुनः मनुष्य समाज उत्पन्न किया और इक्ष्वाकु के वंश को जन्म दिया।

हमने अभी तक दो बातों का वर्णन किया है। एक तो यह कि जलप्लावन की घटना हुई थी और दूसरा यह कि घटना त्रेता युग के आरम्भ में हुई है। अतः यदि त्रेता युग के आरम्भ को काल बिन्दु निश्चय करें तो भारतीय इतिहास की बहुत सी घटनाओं के तिथिक्रम का अनुमान लगाया जा सकता है।

इसको समझने के लिये युगों के विषय में समझना होगा। भारतीय परम्परा इसमें यह है कि सृष्टि के रचना काल को एक दिन माना गया है। इतने ही काल का वह समय होता है जब सृष्टि की रचना नहीं होती। इसे रात कहते हैं। इस दिन-रात को ब्रह्म दिन और ब्रह्म रात्रि का नाम दिया गया है। इसकी अवधि सौर वर्षों से ८,६४,००,००,००० वर्ष मानी गयी है। दिन और रात बराबर-बराबर होते हैं। अतः ४,३२,००,००,००० वर्ष का ब्रह्म दिन होता है और इतने ही काल की ब्रह्म रात्रि मानी गयी है।

ब्रह्म दिन के काल अर्थात् ४,३२,००,००,००० सौर वर्ष को एक सहस्र देव वर्षों में विभक्त किया गया है। एक देव वर्ष को एक चतुर्युगी भी कहते हैं। अतः एक देव वर्ष अथवा एक चतुर्युगी ४३,२०,००० वर्ष की होती है।

चतुर्युगी को दस भागों में बाँटा जाये तो एक भाग ४,३२,००० वर्ष का हो जाता है। चतुर्युगी के चार भाग के बराबर कलियुग, दो भागों के बराबर द्वापर, तीन भाग के बराबर त्रेता युग और चार भाग के बराबर सत् युग होता है।

सत युग	४ भाग	१७,२८,०००	सौर वर्ष
त्रेता युग	३ भाग	१२,९६,०००	,, ,,
द्वापर युग	२ भाग	८,६४,०००	,, ,,
कलि युग	१ भाग	४,३२,०००	,, ,,

ब्रह्म दिन अर्थात् ४,३२,००,००,००० सौर वर्षों को १४ भागों में भी बाँटा गया है। एक भाग को मन्वन्तर कहते हैं। मन्वन्तर बदलने के समय जगत् की रचना में एक विशेष मोड़ आता है और जब से रचना आरम्भ हुई है तब से छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं। सातवें मन्वन्तर की २७ चतुर्युगियाँ व्यतीत हो चुकी हैं और २८वीं चतुर्युगी के सत् युग, त्रेतायुग, द्वापर तो पूर्ण व्यतीत हो चुके हैं, परन्तु कलि युग के अभी ५०७२ वर्ष व्यतीत हुए हैं।

इस प्रकार इस चतुर्युगी के ३८,९३,०७२ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

[शेष पृष्ठ १८२ पर]

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

□

ब्रह्मचारी श्री विश्वनाथजी

इस बात को बार-बार दुहराने की आवश्यकता नहीं है कि समूचे विश्व में हिन्दू धर्म एवं हिन्दू संस्कृति ही एकमात्र ऐसी संस्कृति है जिसने विश्व को सर्व-प्रथम ज्ञान का प्रकाश दिया। भाईचारे से रहने की सीख दी। लेकिन जैसा अक्सर देखा जाता है कि मनुष्य के अंतस् में रहने वाले स्वार्थ, लालसा दुर्वासना आदि दुर्गुण उसे अंधा बनाते हैं, विवेकहीन बनाते हैं और अपने ही आदर्शों को भूल वे क्षणिक प्रलोभनों के कारण उनका विरोध करने लगते हैं।

आज हम इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे है कि हमारे ही चन्द भाई छल, कपट, मोह, प्रलोभनवश हमें छोड़ दूसरे धर्म में चले जाते हैं। इतना ही नहीं, हमारे धर्म और हमारे आदर्श की निन्दा करने लगते हैं। कल तक इनको जो धर्म प्राण से भी प्यारा था, जो आदर्श सर्वस्व थे, वह सब द्रव्य की माया से समाप्त हो जाता है। आज ऐसे पाँच-दस या सौ-पचास व्यक्ति नहीं अपितु करोड़ों व्यक्ति भारत में हैं जो वास्तव में हिन्दू हैं उनके पूवजों में हिन्दू खून था, उनमें भी वही खून आज भी है, लेकिन···लेकिन कभी स्वार्थ, कभी अज्ञान, कभी दिक्कतें, कभी लालच तो कभी-कभी हम लोगों की दृढ़ धर्मिता एवं अदूरदर्शिता ने हमारे ही बान्धवों को हमसे जुदा कर दिया है।

इतना ही नहीं, अब ये लोग हमारे अस्तित्व, हमारी परंपरा को नष्ट करने पर तुले हैं। अतः यह प्रश्न अत्यन्त गंभीर हो गया है। क्योंकि इसका हमारे अस्तित्व से सीधा संबंध है। और यदि हम ही न रहे तो विश्व में कल्याण की राह दिखाने वाला यह हिन्दू धर्म, मानव को प्रगति की ओर ले जाने में एक परंपरा स्थिर करने वाली यह हिन्दू संस्कृति इन्हें कौन-सा अधिष्ठान रह जायेगा।

जब हम इन बातों पर गंभीरता से सोचते हैं तो हम यह सोचने के लिए बाध्य हो जाते हैं कि आज हमारे सम्मुख प्रमुख समस्याएँ कौनसी हैं और उनका निराकरण कैसे किया जा सकता है ? आज भी सर्वप्रमुख समस्याएँ हैं कि हिन्दू-

धर्म, हिन्दू-संस्कृति एवं हिन्दू समाज का संरक्षण कैसे किया जाय ? समस्या का हल निकालने के पूर्व समस्या का सर्वांगीण विचार करना आवश्यक है। जब हम यह कहते हैं कि हिन्दू-धर्म का संरक्षण होना चाहिये तब हम यह दूसरे शब्दों में स्वीकार करते हैं कि हिन्दू धर्म खतरे में है। इसका अस्तित्व शंकास्पद होता जा रहा है। और इस कारण उसका संरक्षण आवश्यक है। अब हम और गहराई में जाकर सोचते हैं कि हिन्दू धर्म खतरे में है, यह हमने स्वीकार कर लिया किन्तु कब से, कितनी सदियों से हिन्दू धर्म खतरे में है यह जानना जरूरी है। क्योंकि जिस प्रकार रोग का निदान किये बगैर सही उपचार संभव नहीं होता, उसी प्रकार खतरे की सही स्थिति जानी गयी तो उसके लिए उतना ही प्रभावी उपाय सोचा जा सकता है।

इतिहास हमें बतलाता है कि आठवीं सदी में सर्वप्रथम जब मुहम्मदबिन कासिम ने भारत पर आक्रमण किया तभी हिन्दू धर्म खतरे में आया। मुहम्मदबिन कासिम का प्रतिकार यदि सफलता एवं संगठित रूप से किया गया होता तो संभव है कि आज यह समस्या पैदा न हो पाती। किन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा न हो सका। मुहम्मदबिन कासिम के उदाहरण से यवन आक्रमकों को प्रोत्साहन मिला और हिन्दू धर्म, संस्कृति एवं समाज आक्रमण की शृंखला में दिन-प्रतिदिन अत्यधिक निगडित होने लगा। यह बात नहीं है कि आक्रामक हर समय यशस्वी ही होते रहे। कई बार उन्हें मुँह की खानी पड़ी। समरांगण से भागते-भागते ही उनका अन्त हुआ। किन्तु उनका समूल नाश न हुआ। जड़ें वैसे ही रह गयीं। जिस प्रकार विष वल्लरी धीरे-धीरे अपनी जड़ें मजबूत कर फले-फूले उद्यान को समूल नष्ट कर देती है। उसी प्रकार इन आक्रामकों ने हिन्दू धर्म, संस्कृति एवं समाज की जड़-मूलों को कुरेदना प्रारम्भ कर दिया। पराजित हिन्दुओं का वे कत्लेआम करते, उनकी सम्पत्ति लूट लेते, मंदिरों को गिराकर वहाँ मसजिदें बनाते या कभी-कभी तो मंदिरास्थित देवमूर्तियों को तोड़-फोड़ कर मंदिर को ही मसजिद में परिवर्तित करते। और सबसे खतरनाक यानी पराजित हिन्दुओं में जो बच जाते उन्हें बलात् मुसलमान बनाते। उनकी बहू-बेटियों से ब्याह कर अपने वंश की अर्थात् पर्याय से हिन्दू धर्म, संस्कृति एवं समाज के शत्रुओं की संख्या में वृद्धि करते।

आक्रामकों की यह परम्परा सदियों तक चलती रही। हिन्दू समाज दुर्बल होता रहा। इस बीच राणा प्रताप, वीर शिवाजी, बाजीराव पेशवा, स्वामी विद्यारण्य और उनके शिष्य हरिहर-बुक्क, स्वामी दयानन्द जैसे कतिपय भारत माँ के सुपुत्र पैदा हुए, जिन्होंने हिन्दू धर्म, संस्कृति एवं समाज के संरक्षणार्थ अपने

प्राणों की बाजी लगा दी। यह उन्हीं की कृपा है कि ग्राज हिन्दुस्तान में हम हिन्दू ग्रवशिष्ट हैं। किन्तु फिर भी ग्राक्रमण जितना प्रभावी था, प्रतिकार उनका प्रभावी एवं चिरस्थाई न था।

पन्द्रहवीं शताब्दी में वास्को-डी-गामा भारत ग्राया ग्रौर ग्राक्रमकों का एक और दूसरे ग्रध्याय का प्रारम्भ हुआ। यूरोप के ईसाई प्रथम व्यापार के बहाने यहाँ स्थिर हुए ग्रौर स्वयं की कुशलता के बल पर समूचे भारत के स्वामी बने। सदियों तक हिन्दुस्तान पर राज्य करते रहे। यूरोपवासी जिस प्रकार युद्ध-नीति ग्रौर राजनीति में कुशल तथा दूरदर्शी थे उसी प्रकार धर्म-नीति में भी कुशल थे। उन्होंने हिन्दुग्रों की दुर्बलता को जाना ग्रौर उसी पर कुठाराघात प्रारम्भ किया। हिन्दुग्रों के ईसाईकरण के बड़े-बड़े प्लान बने ग्रौर सिस्टिमेटिकली हिन्दुग्रों का ईसाईकरण प्रारम्भ हुग्रा। हिन्दुग्रों का अज्ञान उनकी रुढ़िप्रियता उनके दारिद्रय ग्रादि का फ़ायदा उठाकर बड़े पैमाने पर हिन्दुग्रों को ईसाई बनाया जाने लगा। ग्रौर यदि साम-दाम से कोई ईसाई बनने से इन्कार करता तो उस पर बिना किसी झिझक या विलम्ब के दंड का प्रयोग किया जाता, उसे जिन्दा जला दिया जाता। भाड़ में भून दिया जाता। गोली मार दी जाती या गरम-गरम तेल में उबाला जाता। रणक्षेत्रों में भी जिस बर्बरता प्रदर्शन का नहीं होता वह बर्बरता इन ईसाई मिशनरियों ने धर्म-क्षेत्र में दिखलाई। इस प्रकार की बर्बरता से हिन्दू समाज पर धौंस जमाकर उनके मन में भय पैदा कर उन्हें धर्मांतरण के लिए बाध्य किया जाता। ग्रौर चूँकि इन दिनों भारत की सत्ता भारतीयों के हाथ में न होने से इन ईसाई मिशनरियों की पाशविकता एवं बर्बरता का विरोध भी ग्रसंभव था। धर्म के नाम पर किये गये इन ग्रत्याचारों की परमावधि गोवा में हुई।

गई शताब्दी के ग्रंत में स्वतंत्रता ग्रान्दोलन की दिशा में कुछ कदम उठाये गये। लोग सोचते कि स्वातंत्र्य-प्राप्ति के उपरान्त वे इस दिशा में कुछ ठोस कदम उठा सकेंगे। हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति एवं समाज को सुशिक्षितता के साथ-साथ सम्मान भी प्राप्त होगा। सन् १९४७ में भारत का विभाजन हुग्रा। केवल पर-धर्म के ग्राधार पर ही पाकिस्तान का निर्माण हुआ। ग्रौर बचा हुग्रा हिन्दुस्तान कोटि-कोटि हिन्दुग्रों का ग्राशा-बिंदु! जिस हिन्बुस्तान के लिए हुतात्माग्रों ने ग्रपने जीवन का बलिदान किया इसका क्या हुग्रा? ग्राप सभी जानते हैं कि ग्राज हिन्दुस्तान में प्रमुखतया तीन धर्म के लोग हैं। वे हैं हिन्दू, मुसलमान ग्रौर ईसाई। स्वातंत्र्य-प्राप्ति से यदि ग्रधिक से ग्रधिक किसी को लाभ हुग्रा हो तो वे हैं मुसलमान ग्रौर ईसाई ग्रौर ग्रधिक से ग्रधिक हानि किसी की हुई हो तो वे हैं हिन्दू। गणतन्त्र में राजकीय सत्ता मतदाताग्रों पर ग्रवलंबित रहती है यह सभी

जानते हैं। जब किसी व्यक्ति में या पक्ष में राजकीय सत्ता की लालसा पैदा होती है तो वह व्यक्ति, वह पक्ष अपना आदर्श, अपनी परम्परा सब कुछ भुलाकर केवल सत्ता के पीछे दौड़ता है और अपनों को दूर करता है। देश के वर्तमान शासन की ठीक यही स्थिति है। चुनावों में ठोस मत पाने के लिए शासनकर्ता ईसाई एवं मुसलमानों का लांगुलचालन कर हिन्दुओं पर ही कुठाराघात करते हैं। ईसाई और मुसलमान शासनकर्ताओं की लालसा और कमजोरी को ठीक तरह से जानते हैं और वे इसका पूरा-पूरा फायदा उठाते हैं। ईसाइयों ने तो यह नारा लगाना चालू कर दिया है कि India will be christ-land और उस दिशा में उनके प्रयत्न भी चालू हैं। गत दस वर्ष की जनगणना आप देखें तो आपको पता चलेगा कि इन दस वर्षों में हिन्दुओं की संख्या दस प्रतिशत कम हुई है तो ईसाइयों की संख्या पन्द्रह प्रतिशत बढ़ी है। यदि वर्तमान शासन कुछ वर्षों तक यों ही चलता रहा और हिन्दुओं की संख्या में गिरावट एवं ईसाइयों की संख्या में इसी प्रकार निरन्तर वृद्धि होती रही तो India will be christ-land का ईसाइयों का उद्दिष्ठ कितने थोड़े ही वर्षों में साध्य होगा इसका आप भी अनुमान लगा सकते हैं। वैसे India will be christ-land इस नारे की सफलता की झलक हमें नागालेंड, मिजोलैंड आदि में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती है।

यह है आज की समस्या का मूल स्वरूप। धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आक्रमण सदियों से होता रहा है। हिन्दू समाज की जड़ें दुर्बल हो गई हैं। वर्तमान शासन का अल्प सहयोग भी संभव नहीं है। इतना ही नहीं, अपितु ईसाई मिशनरी कितनी सक्रिय है यह भी आप जान गये हैं।

समस्या का स्वरूप और उसकी गहराई हमने देखी है। अब इसके लिए क्या इलाज हो सकता है, यह सोचना है। सामंतवाद या राजाओं का समय अब समाप्त हो गया है। आज देश का प्रत्येक व्यक्ति देश का आधार बना है। अतः यदि हम चाहते हैं कि भावी भारत स्वयं पूर्ण सुदृढ़ बलिष्ठ, सम्मानयुक्त हो तो हमें भावी भारत के आधारभूत आज के बालकों पर केन्द्रित होना होगा। ईसाई मुसलमान, बालकों की तुलना में हम जब हिन्दू बालकों की स्थिति पर विचार करते हैं तो बड़ी खेदजनक स्थिति नज़र आती है। जहाँ एक ओर ईसाई और मुसलमान बालकों को धर्म-शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती है, वहाँ दूसरी ओर हिन्दू बालकों को उनके धर्म से परावृत्त किया जाता है। हिन्दू धर्म के बारे में उनमें गलतफहमी पैदा कर हिन्दू धर्म का आचरण यानी असभ्यता या पिछड़ापन जैसी उनकी धारणा बचपन से ही बनाई जाती है। स्वयं को सेक्युलर कहलाकर

राजनैतिक स्वार्थ के पीछे भाग रही सरकार से इस बारे में कुछ अपेक्षा रखना आत्मवंचना होगी। अतः हिन्दू समाज को ही इस दिशा में आगे आकर कदम उठाना होगा। अपने बच्चों को भारत की गौरवशाली परम्परा से अवगत कराकर उनमें इस बात का विश्वास पैदा कराया जाय कि जिससे वे स्वयं को हिन्दू कहलाने में कोई भी लज्जाप्रद बात नहीं है अपितु सम्मान समझें। बच्चों को धर्म-शिक्षण घर में माता-पिता, भाई-बहन या घर के अन्य बड़े व्यक्ति दे सकते हैं तथा बाहर के क्षेत्र में सामाजिक नेता लोग, साधु, संत, महात्मा आदि हाथ बटाकर अपना कर्तव्य निभाएँ। भारत में आज मठों एवं मंदिरों की कोई कमी नहीं है। इन मठों एवं मंदिरों का इस कार्य में उपयोग किया जाना चाहिए।

हिन्दू धर्म के बारे में बालकों में विद्यमान गलतफहमी को निकालकर उन्हें यह समझाना होगा कि हिन्दू धर्म, आर्य धर्म, किसी एक पंथविशेष का धर्म न होकर समूची मानवजाति का धर्म है। मनुस्मृति का मूल नाम, 'मानवधर्मशास्त्र' है। विश्व में एक ही ऐसा व्यापक धर्म है जो विश्व के प्रत्येक व्यक्ति के सुख की कामना करता है। तदर्थ सक्रिय है। इस तुलना में यदि हम अन्य धर्मों का विचार करें तो लगता है कि अन्य धर्म, धर्म ही नहीं हैं। वे तो केवल पन्थमात्र हैं। धर्म का सही ज्ञान इसलिए आवश्यक है कि यह आपको धर्माचरण, धर्मपालन की ओर प्रवृत्त करेगा। सही धर्माचरण से ही व्यक्ति का, समाज का, देश का एवं विश्व का कल्याण होगा। यह बात सच है कि आज विश्व में ईसाई, मुसलमान धर्मों को राजसत्ता का बल प्राप्त है जबकि हिन्दुस्तान में हिन्दू धर्म की सरकार द्वारा आत्यन्तिक उपेक्षा की जा रही है। बात सही है—पर आज केवल इसकी आलोचना कर कुछ भी हासिल न होगा। हमें ही समाज-जागृति और उसके जरिये सरकार की जागृति करनी होगी। मुझे पूरा विश्वास है कि आप समझदार हैं, पंडित हैं। आप यह अवश्य करेंगे। जो कोई किसी चीज़ को समझकर उसे प्रत्यक्ष में क्रियान्वित करता है, वही पंडित कहलाता है। यः क्रियावान् सः पंडितः। समस्या के हल का यह हुआ एक पहलू। बालकों पर धार्मिक संस्कार।

दूसरा पहलू है, जो हमारे भाई-बहन किसी भी कारणवश परधर्म में गये हैं उन्हें पुनः अपने धर्म में समाविष्ट किया जाना चाहिए। इतना ही नहीं उन्हें समाज में प्रतिष्ठा भी उपलब्ध करा देनी होगी।

यदि यह कार्य आज व्यापक पैमाने पर तन-मन-धन से किया गया तो मुझे विश्वास है ईसाईयों का India will be christ-land यह स्वप्न 'दिवास्वप्न' ही साबित होगा और हिन्दू धर्म की पताका समूचे हिन्दुस्तान में पुनः एक बार प्रतिष्ठा प्राप्त करेगी।

धर्मांतरितों का या धर्मपतियों का शुद्धीकरण आज कोई नई बात नहीं है। अपितु श्रुति-स्मृति सम्मत बात है। इतना ही नहीं, पराशर आदि मुनियों ने तो यहाँ तक कहा है कि यदि धर्मांतरितों का शुद्धीकरण न किया गया तो वह समस्त समाज का पातक होगा। पूरा समाज उसके लिए जिम्मेदार होगा। शुद्धीकरण की महत्ता एवं आवश्यकता का इतिहास भी साक्षी है।

आज हमें इन सभी शक्तिशाली आक्रमणों का मुकाबला करना है। और इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम सब हिन्दू एकत्रित हो अपनी शक्ति जुटाएँ। अपने बच्चों पर उचित संस्कार को अपने समाज के संरक्षण हेतु शुद्धीकरण आन्दोलन को तीव्र एवं व्यापक बनाना होगा। शुद्धि आन्दोलन ही ईसाईयत के जहरीले प्रचार का एकमात्र इलाज है। गत ४० वर्षों के अविरल प्रयत्नों से एवं वैदिक विधिपूर्वक किये जा रहे शुद्धीकरण के कारण अब शुद्धीकृतों की कोई समस्या अवशेष नहीं रही है और ये सभी शुद्धीकृत आज सन्मानपूर्वक हिन्दू धर्म में अपना जीवन बिता रहे हैं।

आज भारतीय समाज पर अन्यान्य पंथ के संत, आचार्य, महंत, पीठाधीश आदि का कुछ न कुछ प्रभाव है। इस अवसर पर मैं इन सभी साधु संत, महात्मा आचार्य आदि से आग्रहपूर्वक अनुरोध करता हूँ कि ईसाईयत तथा मुसलमानों के इस सांस्कृतिक आक्रमण से वे सचेत हों और अपने प्रभाव का उपयोग कर हिन्दू समाज को बचाने के इस पुनीत कार्य में अग्रसर हों। मुझे विश्वास है कि यदि साधु-संत महात्माओं द्वारा आगुआई की गई तो आप सभी का पूरा-पूरा सहयोग उन्हें प्राप्त होगा और हिन्दू धर्म का इसी दशाब्दी में पुनरुत्थान करने का पुण्य भी प्राप्त होगा। आज सनातन वैदैक धर्म, सहस्राब्दियों पुराना हिन्दू-धर्म हमसे यही अपेक्षा रखता है।

[पृष्ठ १७६ का शेष]

हमने महाभारत के प्रमाण से यह बताया है कि जल प्लावन त्रेता युग के आरम्भ में हुआ था। अतः उसको हुए अर्थात् मनु सम्वत् को आज २१,६५,०७२ वर्ष हो चुके हैं।

अतः इतिहास की घटनाओं की गणना को भारतीय परम्पराओं के अनुसार मानव सम्वत् से इस प्रकार लिखा जा सकता है। भारत में अंग्रेज़ शासकों से स्वराज्य मानव सम्वत् २१,६५,०४८ में प्राप्त हुआ।

ते हीं नृप हों जे श्रुति मति धारें

श्री प्रफुल्लचन्द्र मेहता

'स्वराज्य और सुराज्य' दोनों मिलकर ही सच्चे अर्थों में स्वतंत्रता को सार्थक स्वरूप दे सकते हैं। तब ही हमारी 'चिति' जगेगी। हमारी तन्द्रा भंग होकर हमें मानसिक दासता से मुक्ति मिल सकती है।

उपरोक्त दोनों शब्द पर्यायवाची नहीं प्रत्युत् भिन्नार्थक हैं। दोनों मिलकर ही किसी तीसरे सत्य (धर्म) के पूरक हैं। एक के अभाव में दूसरा अपंग है, तो दूसरे के अभाव में पहले का औचित्य प्रश्नवाचक चिन्ह (?) है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत के २३ वर्षों के महत्त्वपूर्ण कालखण्ड का परिणाम अगर सरल भाषा में जानना चाहें तो यही परिलक्षित होता है कि इस कालखण्ड की व्यवस्था, शिक्षा एवं क्रियाशीलता ने हमें यहाँ तक पहुँचा दिया है कि देश का— शिक्षित-अशिक्षित, सम्पन्न-हत्भाग्य, अज्ञानी तथाकथित ज्ञानी इस प्रकार का बहुसंख्यक जन-मानस परतंत्रता की मुक्तकंठ से प्रशंसा करता है।

राष्ट्रीय-चरित्र 'स्व' एवं 'सु' युक्त मर्यादाओं के मौलिक अर्थों की कल्पना तक नहीं कर पा रहा है।

यह अस्वाभाविक उपज है राष्ट्रजीवन के वैचारिक वायुमंडल और भूमि की। इसका प्रभाव मानव जीवन की आचार संहिता पर क्रमश मानवीय प्रेरणाओं पर तथा जीवन एवं जगत् की सम्पूर्ण विधाओं पर भयंकर परिणामों को स्पष्ट कर रहा है।

स्वराज्य की प्राप्ति सुराज्य (धर्म-व्यवस्था, गुण-धर्म-स्वभावानुकूल उत्पादन वितरण एवं उपभोग) के अभाव में निन्दनीय एवं विवादास्पद हो गई है एवं हमें सत्यार्थों के प्रकाश करने में असमर्थ सिद्ध कर रही है। जन-साधारण के चिंतन एवं विचारों में यह परिवर्तन तत्त्वचिंतकों को एक स्वाभाविक प्रश्न की ओर खींचता है।

क्या हम सच्चे अर्थों में मानव हैं? या मानव नामधारी पुतलेमात्र? क्या

हमारे पूज्य वीरों ने प्रातःस्मरणीय आप्त पुरुषों ने, 'स्व' और 'सु' की प्राप्ति के लिए अहर्निश अथक परिश्रम करके इसी हेतु प्राण यज्ञ किया था ?

आज हम जिन चरित्रों की पूजा करते हैं, जिनके जीवन एवं दर्शन पर हमने सैकड़ों ग्रन्थ और काव्य रच डाले हैं, उनकी प्रेरणा क्या हमें इसी दिशा की ओर इंगित करती है, जिधर आज हम चल पड़े हैं ? नहीं ! उपरोक्त सत्य के लिए यही कहा जा सकता है कि हम आत्मप्रवंचना कर रहे हैं। यह हमारी प्रगति नहीं, विलोम-गति है। यह मानव-संस्कृति के स्वर के विपरीत है।

हम जंगल के नियमों से बद्ध हो स्वयं को मानव-संस्कृति का संरक्षक कहते फिरते हैं। यह सरासर झूठ है, फरेब है, हम रक्षक नहीं भक्षक हैं। साथ ही ये नियम हमारी क्रिया-शिथिलता एवं विचार-दासता की पराकाष्ठा के द्योतक हैं एवं भारत भूमि के लिए कलंक हैं। इस व्यवस्था के अन्तर्गत हमारी उपलब्धियाँ क्या हैं यह दृष्टव्य है।

हमने प्रजातंत्रीय एवं लोकतंत्रीय विधिविधानों का कार्यक्रम हाथ में लेकर व्यक्ति-स्वातंत्र्य के मानदंड 'व्यक्ति' को जड़ जगत्-रूपी यंत्र का प्रतिस्पर्धी बना दिया है। हम जीवन और जड़ जगत् दोनों की अधिष्ठात्री चेतन-शक्ति को संस्कारित नहीं कर सके तो जड़ता को आदर्श उपाधियों से मढ़कर भोगों के स्रोतों को ही हस्तगत कर बैठे, हम स्वयं राष्ट्रीय नहीं बन सके तो जड़ता का ही राष्ट्रीयकरण कर सुधार और व्यवस्था के नाम पर भोली-भाली जनता के मसीहा बन गये; सत्य-धर्म को धारण नहीं कर सके तो दोनों को ही विवादास्पद एवं अनर्गल बताकर देश की प्रतिभा को प्रयोगवाद (वस्तुतः समाजवाद) में धकेल दिया; हम देश भक्त नहीं बन सके तो जन्मजात देशभक्तों के चरित्र को ही पथभ्रष्ट सिद्ध करने पर तुल गये; जीवन और जगत् को रोगमुक्त नहीं कर सके तो प्रकृति की रोग सूचक स्नायुओं को ही संज्ञाशून्य कर चिकित्सक का लंबा खिताब ले लिया। मानव को नैसर्गिक मानवीय कर्त्तव्यों के पालन में सक्षम नहीं बना सके तो उसके कर्त्तव्यों को हेय श्रेणी तक निम्न करने व मानव-जीवन को परख-नलियों में निर्मित करने वालों को ही नोबेल-पुरस्कार बाँटने लगे; स्वयं संयम का पालन नहीं कर सके तो 'ब्रह्मचर्य' (मानसिक-साधना) को ही अनर्गल बता सनातन धर्म-इन्द्रिय निग्रह-का उल्लंघन करके वेश्यागमन को वैधानिक अधिकार देकर आवश्यक-बुराई कह दिया। बचत नहीं कर सके तो बचत से प्राप्त भोगों के रसास्वादन के लिए बचत करने वालों को ही साम्यवाद एवं समाजवाद के नाम पर नष्ट कर देना चाहा। यह है हमारी उपलब्धियों एवं प्राप्तियों की लम्बी सूची। हम भोगों से स्वभावानुकूल उत्पन्न प्रत्येक कर्त्तव्य को

ग्रादश बहानों से त्याग रहे हैं।

व्यक्तिगत-क्षेत्र में ऐसी भीषण ग्रात्म-प्रवंचना एवं समष्टिगत-क्षेत्र में मानवीय नैतिक एवं सनातन-मान्यताग्रों की ऐसी हिंसा !

कर्त्तव्य से उपरोक्त सीमा तक च्युत जीवन ग्रधिकारों की लंबी सूचियाँ बनाकर खड़ा है। वह मानवीय ग्रधिकारों के लिए चीखें मारता है। परन्तु यह चिन्तन एवं ग्राचरण की मौलिक भूल है।

हमारे ग्रधिकारों के देय किसी ग्रदृश्य शक्ति के हाथों में हैं जो निर्लिप्त है, निष्पक्ष है साथ ही तथाकथित मानवीय वर्गों की उपाधि से विहीन है। वह मानव निर्मित न्यायालयों से भी श्रेष्ठतम न्यायालयों की व्यवस्था कर सुव्यवस्थित कार्य-सम्पादन कर रहा है। वह हमारी इच्छाग्रों का दास नहीं। वह हमें कर्त्तव्य-कर्म के ग्रभाव में कुछ भी नहीं दे सकता। हमारा मानव, मानव कहकर चीखना-चिल्लाना ग्राचरण के ग्रभाव में कुछ भी महत्त्व नहीं रखता।

स्पष्टत: हम जंगलों के नियमों के ग्रधीन ही इतर श्रेणियों से भी नीचे ग्रा गए हैं।

ग्राहार, निद्रा, भय, मैथुन इन चारों में भी हमने पशुग्रों को मात कर दिया है। कर्त्तव्यों के पालन में स्वयं को ग्रसमर्थ पा अपने पापों को छिपाने के लिए न्यायाधिकरण को भी कलंकित करना चाहा है। यथास्थिति को बदलने में स्वयं को ग्रसमर्थ पा भावी पीढ़ी के प्रसव को भी बंद कर दिया है। हमने रावण ग्रौर कंस को भी पीछे छोड़ दिया है।

हमारी प्रगति एवं वैज्ञानिकता के ये सारे ढोंग हमें ही ग्रस लेंगे। राष्ट्र जीवन का भावी भवितव्य ग्रनिर्णायक नेतृत्व में गन्तव्य से विपरीत दिशा में ग्रग्रसर हो जायगा। क्योंकि भावी भविष्य के निर्माताग्रों को शुद्ध घी की बनिस्बत विशुद्ध डाल्डा ही मिल रहा है ग्रत: वे शुद्ध घी की परख ग्रौर स्वाद की कल्पना से भी परे रह जायेंगे। अपनी कमजोरियों को ग्रादर्श बनाकर प्रस्तुत करने के क्रम में शब्दों के ग्रर्थ बदल रहे हैं। ये मानव स्वभाव में परिवर्तन के सूचक हैं। परन्तु क्या ये परिवर्तन यथेष्ट हैं ? इनका पल्लवित ग्रौर पुष्पित होना क्या राष्ट्र के लिए स्वास्थ्यवर्द्धक वायु मण्डल का पोषक है। कहीं हम भस्मासुर के इतिहास को तो नहीं दुहरा रहे कि ग्राशीर्वचनों से श्रेय एवं प्रेय के देने वाले देवताओं को ही भावनावश नष्ट करने पर तो नहीं तुले ?

हम स्वाद एवं इन्द्रियपरक संस्कृति की ग्रोर ग्रग्रसर हैं। हमें ग्रपनी इस यात्रा में वाहन बदलना होगा। हम मानवता की प्राप्ति की ग्रोर नहीं जा रहे हैं, गन्तव्य की विपरीत दिशा में ग्रग्रसर हैं। यह चेतनता का गुण नहीं चेतन-

हीनता है, यह जागरूकता नहीं उन्माद एवं उत्तेजना है। यह मानवीय स्वर एवं भाषा नहीं, यह मानव के लिए सुख-शांति का मूल नहीं हो सकता।

हमें वे प्रज्ञाचक्षु चाहिए जिनसे स्वराज्य को सार्थक करने, सुराज्य की (धर्ममय राज्य की वेदानुकूल) व्यवस्था दे सकें। हमें जीवन और जगत् में मानव एवं तत्सम्बन्धी विषयों एवं व्यवस्थाओं में युक्ति-युक्त दर्शन एवं व्यावहारिकता का बोध करा सके। हमारे समक्ष हमारी सुरक्षा का अधिकार माँगने वालों में राम और भरत नहीं हैं जो हम कहें—"कोऊ नृप होहिं हमें का हानि—।" हमारे समक्ष राम और रावण, कृष्ण और कंस हैं। अतः हमारा स्वर हो—

तेहीं नृप हों जो श्रुतिमति धारें,
विधि निषेध सम प्रजहु उबारें।
राम-भरत सम धर्महुं पारें॥

उक्त सत्य ही हमें जड़ता एवं जड़त्व की सत्ता से मुक्त करा सकता है, अन्यथा हम अपनी बाह्य-प्रतिष्ठा के लिए आत्म-प्रतिष्ठा का बलिदान कर हारे हुए जुआरी की भाँति घर और घाट दोनों ही से आश्रयहीन हो जाएँगे। अध्रुव को पकड़ने से ध्रुव तो स्वाभविकतया छूट ही जाता है और जो अध्रुव है सो तो छुटेगा ही।

[पृष्ठ १६० का शेष]

करने वाला है।

अतः हम वेदवाणी से सहमत होते हुए, भारत की जनता और भारत के विद्वानों का आह्वान करते हैं कि वे उठें, जागें और ऐसा राजा प्राप्त करें जो ऐश्वर्यवान्, शत्रुओं को पराजित करने वाला, बुद्धिमान, प्रशंसनीय गुणकर्म-स्वभाव युक्त वन्दनीय हो और जो देश में धर्म, अर्थ और काम की व्यवस्था पक्षपात रहित, विद्या-विनययुक्त सबके मित्र अर्थात् विद्वानों की सम्मति से करे। जो देश को शत्रुरहित कर दे। **—शाश्वत वाणी, अप्रैल १६६१**

वेद में रुद्र का स्वरूप

□

श्री रामशरण वशिष्ठ

रुद्र शब्द के अर्थ हैं 'रुलाने वाला'। क्योंकि ईश्वर मनुष्य के कर्मों का फल देता है और दुष्ट कर्मों के फलस्वरूप मनुष्य को कष्ट, दुःख, विपदा, रोग, वियोग व मृत्यु भोगने पड़ते हैं, इसी कारण ईश्वर को रुद्र भी कहा जाता है।

वेदों में रुद्र शब्द कई स्थानों पर आता है। ऋग्० १-४३-११४ तथा २-३३, ७-४६ सूक्तों में रुद्र ईश्वरीय शक्ति का प्रतीक है। कई मन्त्रों में यह अग्नि का द्योतक है और इसको मरुतों का पिता भी कहा है। वहाँ यह तूफ़ानों का बनाने वाला है। जैसे ऋग्० १-११४-६ में। कई मन्त्रों में रुद्र को आवाहन किया जाता है और प्रार्थना करते हैं कि वह हमारी किसी प्रकार की हानि न करे और न होने दे। ऋग्० १-११४-७, ८ में रुद्र को औषधियों का स्वामी बताया है और रोग की निवृत्ति की प्रार्थना की गयी है। इस रूप में रुद्र रोगों का नाशक है। ऋ० १-४३-४ और ७-४६-३ में रुद्र औषधियों का स्वामी है। प्रार्थना है कि हे रुद्र, तू अपना अस्त्र हम से दूर कर दे और हमारी हानि न कर।

रुद्र शब्द रुद्र धातु से बनता है। वहाँ पर उसके अर्थ 'लाल' हैं। रुद्र प्रभु से प्रार्थना है कि वह अपना जो कल्याणकारी रूप है, उससे हमारी सन्तान की रक्षा करे। हमारी सन्तान जीवित रहे। ऋ० ७-४६-२ में ऐसा वर्णन है। श्वेताश्वतर उपनिषद् (३-५,६) में भी यह आता है।

ऋग्वेद के अतिरिक्त यजुर्वेद में इसका वर्णन बहुत विस्तार से है। यजुर्वेद के १६वें अध्याय के १०० मन्त्र हैं जो रुद्र को नमस्कार करने पर हैं। इनको शतावरी भी कहते हैं। कई ब्राह्मण इन मन्त्रों का नित्य पाठ करते हैं।

इन मन्त्रों के आधार पर शैव मत चला था। रुद्र का जो पुराना स्वरूप था, वह समय व्यतीत होने पर शिव के रूप में बदल गया। शैव मतावलम्बी अथर्व वेद के इन मन्त्रों को अपनी पुस्तकों में बार-बार लिखते रहे हैं (६-२-२०, ६-४-१, ६-७-४४, ५७ ५६ और ६-६० से ६३ तक)। सामवेद में भी रुद्र

सूक्त हैं।

प्राण और उपप्राणों को भी रुद्र कहा है; क्योंकि जब ये मनुष्य को छोड़ते हैं तो सब सम्बन्धी रोने लग जाते हैं।

यजु० (१६-५१) में रुद्र चर्म के वस्त्र पहनता है और हाथ में तीर कमान रखता है। यह उसका अलंकारिक वर्णन है।

ऋ० (२-३३-४) में रुद्र एक सेनापति का वाचक है। तभी तो आर्य लोग युद्ध के समय उसका आवाहन करते थे और हर-हर महादेव कहा करते थे। यजु० (१६-१५) में रुद्र को मृत्यु का देवता कहा है। यजु० (३-६०) में आता है कि युवती कन्यायें रुद्र की पूजा करती हैं जिससे उनको योग्य पति मिले। रुद्र के लिए शिव और शंकर के शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। यजु० (१६-४१) में रुद्र को अग्नि भी कहते हैं। वह एक दैविक शक्ति के रूप में अग्नि के अणु से बनता है और यह मरुतों के साथ मिलकर बादलों में चमक देता है।

औषधियों के स्वामी के रूप में वह सहस्र बूटियों वाला है और रोगों का नाश करता है।

उस ब्रह्मचारी को भी रुद्र कहते हैं जो ३६ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करे।

रुद्र परमात्मा का वाचक कई मन्त्रों में है। ऐसे ही अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि हैं, जो परमात्मा के वाचक हैं। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि परमात्मा कई हैं। ये सब एक ही परमात्मा के नाम उसके भिन्न-भिन्न गुणों के कारण आते हैं। वास्तव में एक ही प्रभु है जिसकी अनेक शक्तियाँ संसार में कार्य कर रही हैं। उनका वर्णन वेदों में आता है। यह कोई पृथक् देवता नहीं और न वेद कई देवताओं की पूजा करने को कहता है। एक ही देव है जिसकी स्तुति भिन्न-भिन्न रूपों में की गयी है।

वेद मन्त्रों में एक ही शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। पाठक को यह देखना है कि उस मन्त्र में उस शब्द के क्या अर्थ लगते हैं? इसीलिये वेद को ठीक प्रकार से पढ़ने की शैली बताई है कि पाठक वेद मन्त्रों के ठीक-ठीक अर्थ कर सकें। पाश्चात्य विद्वानों ने इस शैली को न जानकर अर्थ का अनर्थ किया है।

* *

दस वर्ष पूर्व

इमन्देवा असपत्न ँ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्येष्ठाय महते जान-राज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय ।।

—यजु० अ० ९, मं० ४०

"हे विद्वानो ! तुम उस पुरुष को क्षत्रियों में बड़ा अर्थात् राजा और चक्र-वर्ती बनाओ जो ऐसा राज्य चलाये जिसमें विद्वानों का बाहुल्य हो, जो राज्य को ऐश्वर्यवान् बनाने के लिये तथा धन-धान्य से सम्पन्न करने के लिए पक्षपातरहित, विद्या-विनययुक्त, विद्वानों की सम्मति का समर्थक हो तथा पृथिवी को शत्रु-विहीन करे।"

विगत चौदह वर्षों से देश में कांग्रेश दल सत्तासीन है। दो बार के निर्वाचिनों में तो यह बहुमतयुक्त दल भी नहीं बन पाया। चालीस-पैंतालीस प्रतिशत मतों का प्रतिनिधित्व करने वाला यह दल है। इसके परामर्शदाता अर्थात् मन्त्रीगण विद्वान् ही हों, ऐसी बात भी नहीं है। यह निर्विवादरूपेण कहा जा सकता है कि कांग्रेस के केन्द्रीय मन्त्रीमण्डल में तथा प्रदेश मन्त्री मण्डलों में भी विद्वानों का सर्वथा अभाव है।

न यह दल अथवा इसके नेता ऐश्वर्यवान्, शत्रुओं को जीतने वाले और शत्रुओं से पराजित न होने वाले ही हैं। अभी तक तो कांग्रेस दल और इसके नेता शत्रुओं को जीतने वाले नहीं प्रत्युत मित्रों को पददलित करने वाले ही सिद्ध हुए हैं।

यों तो कांग्रेस के नेताओं की इस समय देश में धूम है। परन्तु हमारा कथन है कि धूम मचाने से किसी राजा अथवा नेता की परख नहीं हो सकती। इसकी परख तो गुण, कर्म तथा स्वभाव से की जानी चाहिये।

देश के भीतर शत्रु और मित्र की परख हमारा संविधान करेगा। हमारा संविधान कहता है कि देश में सर्वोत्कृष्ट जनतंत्रवादी गणराज्य स्थापित हो। अर्थात् कोई भी दल अथवा नेता यहाँ किसी एक व्यक्ति अथवा किसी एक दल की तानाशाही स्थापित नहीं कर सकता। ऐसा करने वाला दल अथवा नेता देश का

शत्रु है।

हमारा कथन है कि कम्युनिस्ट पार्टी 'मजदूरों की तानाशाही' स्थापित करने वाला दल होने के कारण देश की शत्रु है। भले ही यह दल आज केन्द्र अथवा किसी प्रदेश में सत्तासीन नहीं है। परन्तु यह मान्यता प्राप्त दल है। इसको तानाशाही के स्थापन का न केवल प्रचार करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है अपितु षड्यन्त्र, विदेशी तानाशाह देशों से साँठ-गाँठ करने की स्वतन्त्रता एवं अधिकार भी प्राप्त है। सत्तासीन दल कांग्रेस और उसके नेता इन सैद्धान्तिक शत्रुओं को न केवल सहन करते हैं, प्रत्युत् इनको अपने कार्य में प्रोत्साहन भी देते हैं।

सत्तासीन दल के नेता के कथनानुसार कम्युनिस्ट देश चीन ने भारत पर आक्रमण किया हुआ है, किन्तु भारतीय कम्युनिस्ट दल के नेता चीन जाकर वहाँ के प्रधान मन्त्री से गुप्त मन्त्रणा एवं गोष्ठियाँ करते हैं और भारत में आकर पुन: उसका गुणानुवाद गाते स्वतन्त्र विचरते हैं।

अभिप्राय यह कि सत्तासीन दल शत्रुओं को जीतने वाला नहीं अपितु शत्रुओं से पराजित होने वाला है।

इसी प्रकार सत्तासीन दल का व्यवहार मुसलमानों, ईसाइयों और सिखों के उस अंश से मित्रता और उसका रक्षण का रहा है जो अंश हमारे देश के विधान के विरुद्ध है, देश में विघटनकारी कार्रवाही करता है अथवा विदेशी सरकारों से देश के विरुद्ध साँठगाँठ करता है।

विदेश नीति में भी हमारी मित्रता उनसे है जो जनतंत्र और गणराज्यों के शत्रु हैं। हसारे नेता सर्वदा रूसी गुट के पक्ष में रहते हैं। यद्यपि रूस की राज-पद्धति उसकी विदेश नीति, उसकी तानाशाही, उसका अपने पड़ोसी राज्यों पर, संगीनों के बल से स्वामित्व सर्वविख्यात है।

चीन में तानाशाही है। तिब्बत भारत का मित्र राज्य था। परन्तु चीन द्वारा तिब्बत पर आक्रमण किये जाने पर भारत में सत्तासीन दल और उसके नेता ने चीन का समर्थन कर उसका पक्ष लिया। हंगरी में हवाई जहाजों द्वारा बम्ब गिराकर तथा तोपों और टैंकों के बल से रूसी सत्ता स्थापित करने में हम रूस जैसे तानाशाह देश की भर्त्सना नहीं कर सके। और फ्रांस के अलजीरिया में दो बार मतदान कराने पर भी हम फ्रांस की निन्दा करते देखे जाते हैं।

देश का दुर्भाग्य है कि हमारे देश में कोई ऐसा सशक्त विरोधी दल भी नहीं जो अपने सिद्धान्तों और अपने नेताओं की कृतियों से यह सिद्ध कर पाया हो कि वह ओजस्वी है और शत्रुओं से पराजित न होकर स्वयं शत्रुओं को पराजित

[शेष पृष्ठ १८६ पर]

चुनाव-चर्चा, परिणाम और देश की स्थिति

१९७१वर्षीय लोक सभा निर्वाचन में इन्दिरा काँग्रेस को जो अप्रत्याशित सफलता प्राप्त हुई है, उससे न केवल भारत देश और उसके विभिन्न राजनीतिक दल अपितु सारा संसार चकित-सा रह गया है। लोक सभा की ५२० सीटों में से इन्दिरा काँग्रेस को ३५० प्राप्त हो गई हैं। इस अप्रत्याशित विजय की विजया का प्रभाव प्रधानमन्त्री पर कितना होता है यह तो समय ही बतायेगा किन्तु उस विजय से राष्ट्रपति प्रतिकूल दशा में कितने विचलित हुए हैं यह दि० २३-३-७१ को लोक सभा एवं राज्य सभा के संयुक्त अधिवेशन में उद्घाटन भाषण के अवसर पर हिन्दी के प्रश्न को लेकर संसोपा के संसद सदस्य श्री राजनारायण के साथ जिस प्रकार का अनुचित एवं अभद्र व्यवहार उन्होंने किया वह संसार के संसद के इतिहास में प्रथम उदाहरण है। अपने निर्वाचन के अवसर पर प्रधानमन्त्री की परम कृपा से ही श्री गिरि राष्ट्रपति पद प्राप्त कर सके थे। इस तथ्य को सारा संसार जानता है और यदि राष्ट्रपति पद के लिए आगामी निर्वाचन के अवसर पर भी उन्हें प्रत्याशी होना है, जो कि वे निश्चित ही होंगे, तो अब तो उनको रबड़ की मोहर से भी निम्नस्तर का कोई कार्य होता हो और वह यदि करना पड़े तो श्री गिरि को करना ही होगा। वे अवश्य करेंगे, इसका संकेत उन्होंने अपने इस उद्घाटन भाषण में दे दिया है।

व्यक्तित्व की विजय

इसमें सन्देह नहीं कि इन चुनावों की सफलता का एकमात्र श्रेय यदि किसी व्यक्ति को है तो वह श्रीमती इन्दिरा गांधी को। व्यक्ति के बाद दूसरा जो कारण बन सकता है, वह धन है। और वह धन किस देश का लगा है यह जाँच का विषय है, अन्यथा भारत जैसे निर्धन देश के प्रत्याशी के पास पानी की भाँति बहाने के लिए पैसा हो सकता है इसकी कोई कल्पना तक भी नहीं कर सकता। किन्तु इन निर्वाचनों में जो असीम धन व्यय किया है वह स्वयं में एक आश्चर्य की बात है। तीसरी बात होती है चुनाव हथकण्डों की। उस कला में इंडिकेट

कितना निपुण है इसकी कल्पना एक वर्ष पूर्व राष्ट्रपति के चुनाव के अवसर पर ही कर लेनी चाहिये थी। चुनाव के अवसर पर किये जाने वाले उलटे-सीधे कार्यों की भी महत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उस दिशा में इस बार के चुनावों में पर्याप्त सन्देह प्रकट किया जा रहा है। सम्भवतया केन्द्रीय जाँच ब्यूरो को इस सम्बन्ध में कष्ट दिया जाय।

चुनावों के अवसर पर दलों के अध्यक्षों का भी महत्त्व होता है। इंडिकेट कांग्रेस के इस दौरान बाबू जगजीवनराम अध्यक्ष थे। किन्तु इस सफलता के लिए उनको कितना श्रेय प्राप्त है इसका अनुमान इससे ही लगाया जा सकता है कि चुनाव के समय जो कांग्रेस 'जगजीवनराम काँग्रेस' कही जाती थी चुनाव परिणामों के एक सप्ताह के बाद ही उसका नाम 'संजीवैया काँग्रेस' हो गया है। अतः स्पष्ट है कि काँग्रेस अध्यक्ष भी राष्ट्रपति की भाँति मात्र रबड़ की मोहर ही था। यद्यपि इस दौरान जगजीवनराम नामधारी बाबू भुलक्कड़राम ने करतब दिखाने की चेष्टा की थी। चुनाव के तुरन्त बाद ही कम्युनिस्टों पर जो कृपा उन्होंने की, उसको 'विद्रोह' अथवा 'कूटनीति' की दृष्टि से परखने का प्रयास चल पड़ा था कि पासा पलट गया। विद्रोह इसलिये कहा जा रहा था कि जगजीवन-राम को कम्युनिस्टों का विरोधी माना जाता था और यह भी समझा जा रहा था कि उनके विशेष रुख के कारण ही कम्युनिस्टों से देशव्यापी चुनाव-गठबन्धन नहीं हो पाया था। अतः कुछ क्षेत्रों में यह अनुमान लगाया जा रहा था कि इन निर्वाचनों में हरिजनों का पलड़ा भारी होगा और इस पलड़े के असली अधिकारी जगजीवनराम होने के कारण, देवी इंदिरा को उनके इशारे पर नाचना पड़ेगा। सम्भवतया जगजीवनराम भी यही सोचते होंगे इसीलिए उन्होंने अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रारम्भिक प्रयत्न आरम्भ किया था। इस दिशा में इसको 'विद्रोह' का नाम दिया जा रहा था। 'कूटनीति' इसलिए कहा जा रहा था कि कदाचित् देवी इंदिरा स्वयं सीधे कम्युनिस्टों से न जूझना चाहें, इस स्थिति में जगजीवनराम को स्वयं ही इस प्रकार का वक्तव्य देने के लिए प्रेरित किया हो।

जगजीवनराम की नैतिक पराजय

चुनाव परिणामों ने स्थिति को स्पष्ट कर दिया है। जो जगजीवनराम बड़े गर्व से कह गये थे कि 'मैं आँख मूंदकर चलने वाला अध्यक्ष नहीं हूँ' वे अध्यक्ष पद छोड़कर चले गये। यदि यह विद्रोह था तो इसमें उनको बहुत बड़ी शिकस्त हुई है। कूटनीति इसको कहा नहीं जा सकता। क्योंकि इंदिराजी का कम्युनिष्टों से यदि तनिक भी मतभेद होता तो वे न तो निर्वाचन में सफलता प्राप्त कर सकती

थीं और न विजय प्राप्त करने के बाद प्रख्यात कम्युनिस्टों को मंत्रिमण्डल में सम्मिलित ही करतीं। रूस इस देश पर किस प्रकार हावी है उसका प्रत्यक्ष परिणाम एवं प्रमाण दोनों ही वर्तमान निर्वाचन हैं। अतः स्पष्ट है कि वह जगजीवनराम का एक पैंतरा मात्र था। जैसा कि निर्वाचनों से पूर्व अनुमान लगाया जा रहा था कि देवी इंदिरा को इन निर्वाचनों के बाद भी चौहान या जगजीवनराम गुट के अथवा वामपक्षी एवं साम्प्रदायिक दलों की कृपा पर अत्यधिक निर्भर करना पड़ेगा। यही कारण था कि देवी इंदिरा को उच्च स्वर से घोषणा करनी पड़ी थी कि मुस्लिम लीग साम्प्रदायिक संस्था नहीं है।

निर्वाचनों की इस अप्रत्याशित सफलता का देवी इंदिरा को तनिक भी अनुमान नहीं था। इसका प्रमाण है उनका चुनाव अभियान और उस अवधि में दिये गये उनके छिछोरे भाषण। अपने तीन पुश्तों की उन्होंने दुहाई दी। अर्थात् अपने पिता नेहरू से लेकर अपने पुत्र संजय गांधी तक का रोना उन्होंने निर्वाचनों में रोया। अपहरण, हत्यायें और साम्प्रदायिक दंगे, अर्थात् निम्नता का कोई भी ऐसा माप-दण्ड नहीं जिसको न अपनाया गया हो। हत्या को सैक्स स्कैण्डल बनाने में देवी इंदिरा के परम हितैषी श्री सुखाडिया बहुत पहले से ही प्रख्यात थे। इस बार महाराजा किशनगढ़ की हत्या को सैक्स का जामा पहनाकर उन्होंने अपना वह पुनीत कर्त्तव्य भी पूर्ण करके दिखा दिया। स्वयं देवी इंदिरा स्थान-स्थान पर कहती फिरीं कि 'संघ' वाले उनकी हत्या करने पर आमादा हैं। अपने पुत्र के विषय में उनका कहना होता था कि उस बेचारे को तो जनसंघ के कारण राजनीति में कूदना पड़ रहा है। किन्तु समझने वाले यह भली भाँति समझते हैं कि अपने पिता के समान ही देवी इंदिरा भी अपने पुत्र के लिए वातावरण तैयार कर रही हैं जिससे कि ५-१० वर्ष बाद यदि किन्हीं कारणों से उन्हें प्रधानमन्त्री का पद त्यागना पड़ा तो उस समय संजय गांधी को आसानी से प्रतिष्ठित किया जा सके। रही बात साम्प्रदायिक दंगों की। वह अलीगढ़ जैसे भारतीय-पाकिस्तान के अतिरिक्त इस अल्पावधि में और कहाँ सम्भव हो सकता था। और वहाँ मैदान में था भी देवी इंदिरा का पट्ट शिष्य यूनुस सलीम। किन्तु इस मोर्चे में गुरु शिष्यों दोनों को मुँह की खानी पड़ी है। वही स्थिति मुरादाबाद की भी रही है।

गरीबी हटाओ

विगत निर्वाचनों में विरोधी दलों की ओर से 'नेहरू हटाओ' और 'काँग्रेस हटाओ' के नारे लगाये जाते थे। वैसे ही नारे इस बार भी लगे। 'काँग्रेस हटाओ' और 'इंदिरा हटाओ' के। इसके उत्तर में देवी इंदिरा ने नारा लगाया 'गरीबी

हटाओ' का। नारा कारगर सिद्ध हुआ। किन्तु अब सिर पर आ पड़ा है। नारों से गरीबी तो हटती नहीं। इसके लिए दिल्ली में देवी ने अपने पुत्र को आगे किया है। राजधानी में आयोजित अनेक अभिनन्दन समारोहों में संजय गांधी का एक ही 'टेप रिकॉर्ड' बोलता है। यद्यपि वह बेचारा देता तो भाषण ही है किन्तु हम इसे टेप रिकॉर्ड इसलिए कहते हैं कि बिना किसी अर्द्धविराम अथवा विराम आदि चिह्नों के किसी प्रकार के परिवर्तन के सब स्थानों पर वह एक स्वर एवं एक ही लहजे में कहता फिरता है, 'गरीबी हटाओ कहने से तो गरीबी हटती नहीं। न ही गरीबी किसी जादू मन्तर की छड़ी से हटाई जा सकती है। उसको हटाने के लिए आप सबको त्याग करना पड़ेगा।' न केवल इतना, अपितु जिस शाही भत्ते की समाप्ति के लिए मातुश्री ने अपने सम्मान को दांव पर लगा दिया उसी की छीछा-लेदर उड़ाते हुए उनके सुपुत्र कहते फिरते हैं कि 'यदि सब राजा, महाराजाओं एवं नवाबों तथा तालुक्केदारों के सरकारी भत्ते पूर्णतया बन्द भी कर दिये जायें तो प्रति व्यक्ति के हिस्से में केवल दस ही पैसे आएँगे। इससे क्या गरीबी मिट सकती है? और यदि टाटा, बिरला आदि भारत के उद्योगपतियों के सभी कल कारखाने कब्जे में आ जायँ तो उससे प्रति व्यक्ति के हिस्से में २६ रुपये आ सकते हैं। इससे भी गरीबी नहीं मिट सकती।'

देवी इंदिरा जानती हैं कि 'गरीबी हटाओ' केवल नारा मात्र है। कोई किसी प्रकार का कार्यक्रम नहीं। इस नारे को सफल बनाने के लिए कोई निश्चित कार्य-क्रम निर्धारित कर उसको क्रियान्वित करना होगा। यह उत्तरदायित्व निर्वाचन जीतने से भी बहुत बड़ा है। किन्तु जो सरकार अब तक केवल कागज़ी घोड़े दौड़ा कर रेस जीतती रही है उसके लिए अब अधिक समय तक यह खेल जारी रखना कठिन हो जावेगा। सरकार स्वयं ही अदक्षता का शिकार रही है। कभी कोई काम सरकार ने ढंग से नहीं किया, चुस्ती और फुर्ती तो सरकारी कर्मचारी की कुण्डली में लिखी ही नहीं गई है। सरकार ने अधिकांश मामलों को अध्ययन समितियों की नियुक्तियाँ करके टाला है। प्रत्येक अध्ययन समिति का प्रतिवेदन भी कभी यथासमय प्राप्त नहीं हुआ और जैसा कैसा भी, विलम्ब से ही सही, जो भी प्रतिवेदन प्राप्त हुआ उसको कभी क्रियान्वित नहीं किया गया। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है देवीजी द्वारा नियुक्त वह आयोग जो उन्होंने अपने सूचना एवं प्रसारण मन्त्रित्व काल में नियुक्त किया था और प्रतिवेदन मिलने तक वे स्वयं प्रधानमंत्री बन गई थीं। तब उन्होंने उसे बड़ी मुस्तैदी से अस्वीकार कर दिया था। किन्तु आज भारत की जनता की माँग है हर हाथ को काम, हर परिवार को मकान और हर बच्चे को शिक्षा। इसकी पूर्ति के लिए ही देवी इंदिरा के

हाथ मजबूत किये गये हैं । अन्यथा आगामी निर्वाचन थोथे आश्वासनों से जीतना देवी इंदिरा के लिए भी कठिन ही नहीं अपितु असम्भव होगा ।

दुमही समाजवाद

समाजवाद का दम भरने वाली देवी इन्दिरा का चुनाव जीतने के बाद जो पहला समाजवादी करिश्मा था वह इंडियन एयर लाइन्स की तालाबन्दी । यदि वैयक्तिक वाणिज्य अथवा व्यवसाय प्रतिष्ठानों में कर्मचारी गड़बड़ करें और वहाँ मालिक तालाबन्दी की घोषणा कर दें तो सरकार का समाजवाद खतरे में पड़ जाता है किन्तु सरकारी क्षेत्रों में इस प्रकार की गड़बड़ी को कुछ और ही नाम दिया जाता है। यही है सरकार का दुमुही समाजवाद । हम न इस हड़ताल के पोषक है और न उस हड़ताल के तथा न इस तालाबन्दी के और न उस ताला-बन्दी के । केवल उदाहरण के रूप में हमने इस घटना का उल्लेख किया है। जब समाजवाद आता है तो व्यक्ति मर जाता है, जीवित अथवा अवशिष्ट यदि कोई रह जाता है तो वह है सरकार । समाजवाद में हर चीज सरकार की हो जाती है । धन, सम्पत्ति, शिक्षा-संस्थायें, मिल, कारखाने सब कुछ सरकार का होता है। व्यक्ति के पास यदि अपना कहने को कुछ बचता है तो वह उसका शरीर ही । यदि इसका प्रत्यक्ष उदाहरण देखना हो तो समाजवादी-स्वर्ग रूस को देखा जा सकता है। प्रशंसक और आलोचक दोनों के कथनों का तुलनात्मक अध्ययन हमारी बात की पुष्टि कर देगा ।

समाजवाद में यदि कोई सुविधा प्राप्त है तो सबको समान रूप से गरीब रहने की, भूखे रहने की, बेरोजगार रहने की सुविधा है। इस समानता को अथवा सुविधा को कोई भी समाजवादी सरकार किसी से नहीं छीनती । लोक-तन्त्र में हम क्रान्ति की बात कर सकते हैं, समाजवाद की बात कर सकते हैं। किन्तु समाजवाद में केवल समाजवाद ही शेष रह जाता है । समाजवाद आने पर फिर किसी क्रान्ति की कोई सम्भावना नहीं। समाजवाद अर्थात् सरकारी दास-वृत्ति । समाजवाद का यह बीभत्स चित्रण हम इसलिये कर रहे हैं, क्योंकि विगत निर्वाचनों में 'गरीबी हटाओ' का दूसरा पहलू था 'समाजवाद लाओ' तथा 'इन्दिराजी आई हैं, समाजवाद लाई हैं' । इस कारण हमें कहना पड़ता है कि चरम नरकावस्था को ही समाजवाद कहते हैं ।

जैसा कि हमने बताया है कि लोकतन्त्र में यह तो सुविधा है कि वहाँ हड़-ताल की जा सकती है, विद्रोह किया जा सकता है, क्रान्ति भी लाई जा सकती है। न केवल इतना उसमें समाजवाद की भी बातें की जा सकती हैं। किन्तु

समाजवाद के बाद कोई हड़ताल, विद्रोह अथवा क्रान्ति सम्भव नहीं है । रूस जैसे देश में, जहाँ संसार की सबसे बड़ी समाजवादी क्रान्ति हुई थी, वहाँ विगत पचास-साठ वर्ष से न कोई हड़ताल हुई है, न विद्रोह हुआ और न ही किसी प्रकार की कोई क्रान्ति । कोई भिन्न विचारधारा भी वहाँ उत्पन्न नहीं हुई । क्योंकि रूसी समाजवाद में इस सबके लिये एक ही स्थान है साइबेरिया का कन्सन्ट्रेशन कैंप । सब विद्रोह, क्रान्ति और हड़ताल साइबेरिया के रेगिस्तान में दबा दिये जाते हैं, दफना दिए जाते हैं ।

बैंक राष्ट्रीयकरण

बैंक राष्ट्रीयकरण भी चुनाव में विजय दिलाने में सहायक सिद्ध हुआ है । वास्तव में इस प्रक्रिया में देश की भोली जनता को भ्रमित करने में इंडिकेट ने बड़ी समझदारी से काम लिया है अन्यथा बैंक राष्ट्रीयकरण से किसको कितना लाभ हुआ है यह न आज तक कोई जान सका और न ही कोई बता सका । न केवल इतना, २४ मार्च को संसद में प्रस्तुत १९७१-७२ वर्षीय अन्तरिम बजट में भी बैंक राष्ट्रीयकरण का उल्लेख तो किया गया है किन्तु उसकी उपलब्धियों की ओर कोई संकेत नहीं है । केवल इतना ही कि 'राष्ट्रीयकृत बैंकों की शाखाओं में वृद्धि हुई है और आशा है कि ऋण योजना में वृद्धि होगी तथा उसका विकास किया जावेगा ।' जब भारत का वित्तमन्त्री राष्ट्रीयकृत बैंकों की उपलब्धियाँ नहीं गिना सकता तो फिर ऐसा कौन अधिकृत अधिवक्ता होगा जो इस के लाभों से जन साधारण को अवगत करा सकेगा ? किन्तु हवा का रुख इस प्रकार का है कि राष्ट्रीयकृत बैंकों की कार्य प्रणाली में शिथिलता और ग्राहकों के प्रति उपेक्षाभाव बरते जाने पर भी इस प्रक्रिया ने इंडिकेट को सफल बनाने में योग दिया है । इसे यदि समझदार वर्ग स्टंट न कहे तो फिर क्या कहेगा ?

निन्दक नियरे राखिए

भूमि, आवास, जीविका और वेतन सम्बन्धी माँगें तेजी से बढ़ती जा रही हैं । हम समझते हैं कि देश की वर्तमान अर्थ व्यवस्था इन माँगों को पूरा करने की स्थिति में बिलकुल भी नहीं है । प्रशासन इतना अकर्मण्य और भ्रष्ट हो गया है कि उसके उद्धार की सम्भावना प्रतीत नहीं होती और इन चुनाव हथकण्डों ने उसकी भ्रष्टता को बढ़ावा ही दिया है । प्रशासनिक ढाँचे में जब तक आमूलचूल परिवर्तन नहीं किया जावेगा तब तक भ्रष्टाचार का अन्त नहीं हो सकता । देवी इंदिरा की नव सरकार में जो नये रेल मन्त्री बने हैं किसी युग में उनकी

अध्यक्षता में एक प्रशासनिक सुधार आयोग गठित किया गया था। अपने प्रतिवेदन में श्री हनुमन्तैया ने प्रशासन की समस्त खामियों की ओर संकेत किया था और कुछ सुझाव भी दिये थे। आज जब वे स्वयं केन्द्रीय मन्त्रीमण्डल के सदस्य हैं तो श्री हनुमन्तैया से अपेक्षा की जाती है कि वे उन सुधारों को लागू करने कराने में पहल करें और करायें। किन्तु क्या यह सम्भव होगा ? हम समझते हैं कि नहीं। रेल के इंजिन के धुंए से उनकी आँखें बन्द कर दी गई हैं। सत्तासीन दल एवं व्यक्ति (वह फिर पिता हो अथवा पुत्री) का प्रारम्भ से आज तक यही रवैया रहा है कि जो व्यक्ति कुछ बढ़-चढ़कर आलोचना, प्रत्यालोचना अथवा समालोचना करे, उसे कोई पद प्रदान कर दिया जाय। इसी प्रक्रिया में हनुमन्तैया भी बह गये हैं। एक समय पिता की बेलाग, बेखटक आलोचना करने वाले हनुमन्तैया आज पुत्री के उंगली निर्देश पर नृत्य करते नजर आ रहे हैं। 'निन्दक नियरे राखिये' का अभिप्राय देवी इंदिरा भली भाँति जानती है।

नया मंत्रिमडल

चुनाव से पूर्व, जैसा कि हम पहले भी लिख चुके हैं, सारे देश में देवी इंदिरा की एक विशेष प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई। वह प्रतिमा परिवर्तन चाहने वाली उस प्रधानमन्त्री की थी जो संसद में अपने बहुमत के अभाव के कारण अपेक्षित परिवर्तन नहीं कर पा रही थीं। चुनाव के नाम पर एक प्रकार का जनमत संग्रह हुआ और प्रधानमन्त्री को संसद में दो तिहाई का स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो गया। अब वे जितने और जैसे परिवर्तन चाहें कर सकती हैं। यद्यपि परिवर्तन से प्रधानमन्त्री का सदा आशय संविधान में परिवर्तन का ही रहा है, फिर भले ही वे इसे प्रगतिवादी परिवर्तन ही क्यों न कहती फिरें। इस परिवर्तन की प्रक्रिया में सर्वप्रथम उन्होंने अपने मन्त्रिमण्डल में परिवर्तन की इच्छा प्रकट की और इसकी छोटी सी झलक मिल गई है। अभी उसमें केवल पाँच ही नये मुखौटे आये हैं और इसमें बहुत से पुराने किन्तु राजनैतिक ढंग से प्रतिष्ठित लोगों को स्थान नहीं दिया गया है। यद्यपि दिनेश सिंह सदृश कुछ लोगों के उसमें न होने की आशंका पहले से ही थी। तदपि अभी मंत्रिमण्डल का गठन पूर्ण नहीं हुआ है। अतः यह आशा की जा सकती है कि आने वाले दिनों में कुछ रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए जिन लोगों को आसीन किया जावेगा, वे देवी इन्दिरा की परिवर्तन की इच्छा के ही प्रमाण होंगे।

संविधान और सर्वोच्च न्यायालय

बहुत दिनों से संसद में और उसके बाहर भी यह चर्चा थी कि सत्तारूढ़

दल सर्वोच्च न्यायालय के गठन की प्रक्रिया से सन्तुष्ट नहीं है और न ही संविधान की अनेक धाराओं से ही उसकी विचारधार मेल खाती है। अतः इन दोनों में परिवर्तन की आवश्यकता है। इसके लिए विरोधी पार्टी के एक दिवंगत नेता के माध्यम से शतरंज की चाल चली गई थी। दुर्भाग्य से चाल के मोहरा बनने वाले श्री नाथ पै तो दिवंगत हुए किन्तु सत्ताधारियों का सौभाग्य है कि उन्हें नये निर्वाचनों में आवश्यकता से अधिक बहुमत प्राप्त हो गया है। अब वह मनमाना परिवर्तन करने में स्वतंत्र हो गये हैं।

न्याय को बाँधने की इस तैयारी में सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री सीकरी ने इस पर गहरी चिन्ता प्रकट करते हुए कहा है कि जजों और न्यायपालिका को शासक दल के राजनीतिक रथ के पीछे बाँधने का प्रयत्न किया जा रहा है। उनका कहना है कि विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न दलों की सरकारें होंगी, केन्द्र में भी सरकार बदल सकती है। यह सतत् प्रवाहमान और जीवन्त लोकतंत्र की एक अनिवार्य एवं स्थायी प्रक्रिया है। किन्तु जो राजनैतिक दल और नेता अब कह रहे हैं कि जजों को एक राजनैतिक 'वाद' के प्रति वफादार होना चाहिये, क्या वे प्रकारान्तर से यह नहीं कह रहे हैं कि उनके लिए लोकतन्त्र की उपयोगिता चुनाव जीतने तक ही सीमित है और चुनाव जीत जाने के बाद वे समूचे लोकतन्त्र और उसकी रक्षक संस्थाओं को अपने रथ में जोत देना चाहते हैं।

न्यायाधीश श्री सीकरी के अनुसार संविधान ने न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधान सभा का कार्य क्षेत्र स्पष्ट कर दिया है। संविधान में नियन्त्रण और सन्तुलन की व्यवस्था है किन्तु संविधान स्वयं जड़ नहीं है। जनकल्याण के लिए वह जमींदारी और जागीरदारी उन्मूलन से लेकर बस सेवाओं, बैंकों, विमान सेवाओं आदि के राष्ट्रीयकरण तक जनता का साथ देता आया है। संविधान समूची जनता के हितों का रक्षक है, किन्तु वह किसी भी एक नागरिक के साथ अन्याय का समर्थक नहीं। सरकार को शीघ्रता में दोषपूर्ण कानून बनाकर न्यायपालिका से यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि वह शासक दल के दोष एवं अज्ञान पर भी न्याय की मोहर लगायेगी। किन्तु तब न्याय ही क्या हो पावेगा जबकि नाच न जानने वाले को आँगन ही टेढ़ा नजर आये।

लोकतन्त्र पर सन्देह

राष्ट्रपति के अभिभाषण पर राज्य सभा में धन्यवाद प्रस्ताव के अवसर पर बोलते हुए जनसंघ के महामन्त्री श्री सुन्दरसिंह भण्डारी ने निर्वाचन के सम्बन्ध

में जो तथ्य एवं आँकड़े प्रस्तुत किये हैं वे जहाँ एक ओर जनता की आँखें खोल देने वाले हैं वहाँ सत्तासीन दल के लिए लज्जाजनक भी हैं। श्री भण्डारी ने २६ मतपत्रों का एक ऐसा पुलिन्दा संसद में दिखाया जो पटियाला में एक मतदान केन्द्र के बाहर पड़ा मिला। ये मतपत्र केन्द्र से बाहर किस प्रकार गये यह सभी के लिए आश्चर्य का विषय है। चुनाव में बरती गई अनियमितताओं की चर्चा करते हुए श्री भण्डारी ने बताया कि इस निर्वाचन में ऐसे भी मतपत्र मिले हैं जिन पर मतदान केन्द्र के नम्बर नहीं थे। अनेकों पर उचित अधिकारी के हस्ताक्षर नहीं थे, कई मतपत्र फटे हुए और कई कोरे थे।

मुख्य चुनाव आयुक्त श्री सेन वर्मा की ईमानदारी पर हम अपना सन्देह अपने पिछले अंक में प्रकट कर चुके हैं। अब विपक्षी नेता भी उनकी नीयत पर अपना सन्देह प्रकट करने लगे हैं। इंदिरा काँग्रेस के नेता स्वयं अपनी इस अप्रत्याशित सफलता पर स्तब्ध हैं। चुनाव की तैयारी करते हुए एक बार इंदिरा काँग्रेस के एक नेता ने कहा था कि इंगलैंड में विलसन इस आशा से मध्यावधि चुनावों के दंगल में उतरे थे कि उनको अपनी विजय निश्चित प्रतीत होती थी, किन्तु वे फिर भी हार गये। हम तो यहाँ प्रारम्भ से ही अनिश्चित मन से इस दंगल में उतरे थे। जो निश्चित थे वे अनिश्चित और जो अनिश्चित थे वे निश्चित कैसे हो गये? बाल ठाकरे ने एक रहस्योद्घाटन करते हुए बताया कि श्री करिअप्पा के पक्ष में पड़े एक मत-पत्र को देखने से साफ पता चता है कि उनके चुनाव चिह्न पर लगी मोहर को मिटाकर नई काँग्रेस के उम्मीदवार के चुनाव चिह्न पर दूसरी मोहर लगाई गई है। मतगणना का जो नया तरीका अपनाया गया है इसके विषय में जनसंघ के भूतपूर्व अध्यक्ष और इस निर्वाचन के एक प्रत्याशी श्री बलराज मधोक ने अपना सन्देह पहले ही व्यक्त कर दिया था और इस प्रणाली में परिवर्तन की माँग भी उन्होंने समय से पूर्व कर दी थी किन्तु फिर भी इस पर कार्य नहीं किया गया। इस सम्बन्ध में रहस्यात्मक रसायन का राग भी सम्मिलित है।

विपक्ष की पराजय

इस निर्वाचन का सबसे महत्त्वपूर्ण और साथ ही दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम है विपक्ष का बिलकुल सफाया हो जाना। विपक्ष के नाम पर विपक्ष में बैठने वाले कम्युनिस्टों, मार्क्सवादियों, द्रमुकों, मुस्लिम लीगियों, प्रसोपाओं यहाँ तक कि महागठबन्धन का एक दल संसोपा सदस्यों को भी हम विपक्षी नहीं मानते। ये सभी समाजवाद और देवी इंदिरा के तथाकथित प्रगतिवाद के अन्ध समर्थक हैं। समय पड़ने पर इनके मत सत्तासीन दल के पक्ष में ही पड़ेंगे। केवल संगठन काँग्रेस

श्रौर स्वतन्त्र तथा जनसंघ विपक्ष नाम पर रह गये हैं। महागठबन्धन से किसको क्या लाभ श्रौर क्या हानि हुई है उसका लेखा-जोखा सम्बन्धित दल प्रस्तुत कर तो रहे हैं श्रौर शायद जनता उससे सावधान भी हो जाय किन्तु हमारी दृष्टि में जससंघ को इससे श्रपेक्षित लाभ नहीं है। अब हम यह समझते हैं कि यदि जनसंघ अपने भरोसे पर निर्वाचन के मैदान में उतरता तो इतनी श्रनियमितताश्रों के बावजूद उसकी स्थिति श्राज की श्रपेक्षा श्रच्छी ही होती।

निष्कर्ष

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इंदिरा के व्यक्तित्व का प्रचार, सरकारी तन्त्र एवं साधनों का दुरुपयोग साम्प्रदायिक भावनाश्रों की तुष्टि, लाइसेंसों का श्रसामयिक वितरण, विदेशी धन एवं विदेशी प्रचार-तन्त्र, श्रादि-श्रादि बातों ने इंदिरा काँग्रेस को जहाँ चुनाव जीतने में सहायता दी वहाँ इसके लिए विपक्ष भी कम उत्तर-दायी नहीं।

विपक्ष इंदिरा हटाओ का तो नारा लगाता रहा किन्तु उसकी तुलना में किसी राष्ट्रीय नेता की प्रतिमा को विपक्ष में से कोई भी दल प्रतिष्ठापित नहीं कर सका। विपक्ष के किसी भी एक दल ने कुल मिलाकर इतने प्रत्याशी चुनाव मैदान में ही नहीं उतारे कि जो जीतने पर सरकार बना पाता। न केवल इतना, गठबन्धन के प्रत्याशियों की कुल संख्या भी इतनी नहीं थी कि उनके जीतने पर भी कोई सरकार बन पाती श्रौर संविद सरकारों की जो स्थिति श्रौर कार्य-प्रणाली रही है, उससे जनता अब श्रपरिचित नहीं रही। यद्यपि केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार का नारा विपक्ष की श्रोर से बहुत पहले से लगाया जा रहा है किन्तु क्या इस प्रकार की राष्ट्रीय सरकार, जिसे खिचड़ी सरकार ही कहा जाना चाहिए, कारगर हो सकती है ? स्वतन्त्रता से पूर्व श्रन्तरिम सरकार का उदाहरण हमारे सम्मुख है। स्वतन्त्र्योत्तर राष्ट्रीय सरकार भी उसी संकट में से नहीं गुजरेगी इसकी कोई गारण्टी नहीं है। वास्तव में यदि देश श्रथवा प्रदेश का कोई हितेच्छु है तो उसे सच्चे मन से संविद सरकारों का विरोध करना ही चाहिये। ये भानुमती के पिटारे लाभकर होने की श्रपेक्षा हानिकर ही सिद्ध होते हैं।

श्राह्वान

दलबन्दी के इस दलदल में राष्ट्र की नौका डगमगा रही है श्रौर कोई कुशल खिवैया नजर नहीं श्राता। देवी इंदिरा का विकल्प जब तक देश उत्पन्न नहीं करेगा तब तक सभी की स्थिति ऐसी ही रहेगी श्रौर नेहरू कुल का प्रभुत्व स्थिर रहेगा। इंदिरा श्रपने विकल्प के रूप में संजय को श्रभी से स्थापित करने में जुट गई है किन्तु विपक्षी दल श्रथवा राष्ट्रीय कहलाने वाले दल इस विषय में मौन हैं श्रथवा किंकर्तव्यविमूढ़।

कम्पोजिट कल्चर, सैक्युलरिज्म तथा समाजवाद के भ्रमजाल को तोड़कर विशुद्ध राष्ट्रीयता को उभारने वाले नेता की श्राज देश को नितान्त श्रावश्यकता है। इसका उत्तरदायित्व हिन्दुश्रों पर है। हिन्दू श्रपने कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व को पहचानें श्रौर तदनुसार इस दिशा में श्रग्रसर हों, तभी इस देश की नौका पार लग सकती है, श्रन्यथा शीघ्र ही वह दलदल से निकलकर जिस दिशा में गतिमान है वह दिशा उसको डुबाने वाली सिद्ध होगी उबारने वाली नहीं। ★

शाश्वतवाणी (मासिक)

समाचार-पत्र रजिस्ट्रेशन (केन्द्रीय) कानून १९५६ के ८वें नियम के अन्तर्गत अपेक्षित 'शाश्वतवाणी' से सम्बन्धित बातों का विवरण।

प्रपत्र—४

प्रकाशन का स्थान	नई दिल्ली
प्रकाशन अवधि	मासिक
मुद्रक, प्रकाशक एवं सम्पादक का नाम	अशोक कौशिक
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली
स्वामित्व	शाश्वत संस्कृति परिषद्, ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली

मैं, अशोक वर्द्धन कौशिक एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर उल्लिखित विवरण सत्य हैं।

नई दिल्ली : १-४-७१ अशोक वर्द्धन कौशिक

संरक्षक सदस्य

१. केवल एक सौ रुपये भेजकर शाश्वत संस्कृति परिषद के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बन कर रहेगा।

शाश्वत संस्कृति परिषद् का उद्देश्य

विशुद्ध भारतीय तत्त्व दर्शन पर सम्यक् गवेषणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उनके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख सभी समस्याओं का सुलझाव प्रस्तुत करना।

संरक्षक सदस्यों की सुविधाएं

१. परिषद् के नवीनतम प्रकाशन तथा आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। नवीन प्रकाशन हैं—इतिहास में भारतीय परम्पराएँ (मूल्य १० रुपये), हिन्दू का स्वरूप (मूल्य ०.५०) आगामी प्रकाशन हैं—ब्रह्मसूत्र हिन्दी विवेचना (ल्य २० रु०) एवं अन्य।

२. परिषद् की पत्रिका शाश्वत वाणी आप जब तक सदस्य रहेंगे प्राप्त कर सकेंगे।

३. परिषद् के पूर्व प्रकाशत ग्रन्थ (सूची इसी अंक में अन्यत्र देखें) आप २५ प्र० श० छूट के साथ प्राप्त कर सकेंगे।

४. जब भी आप चाहेंगे एक मास पूर्व सूचना देकर अपनी धरोहर वापस ले सकेंगे। धन मनीआर्डर द्वारा भेज सकते हैं। किन्तु छः मास के भीतर ही धरोहर वापस माँगने वाले महानुभावों को वार्षिक शुल्क के पाँच रुपये तथा निर्मूल्य दिये गए प्रकाशनों का मूल्य काटकर ही राशि वापस की जा सकेगी।

शाश्वत संस्कृति परिषद्

३०/९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे)-नई दिल्ली-१

शाश्वत संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं विकास आर्ट प्रिंटस शाहदरा-दिल्ली-३२ में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

वर्ष ११—अंक ५ मई, १९७१ रजि क्र० ६६८९/६०

विक्रमी संवत् २०२८ ईसवी सन् १९७१ सृष्टि संवत् १,९६,०८,५३,०७०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणा: रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता

प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

वर्ष ११ अंक ५

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१
फोन : ४७२६७

मूल्य
एक अंक रु० ०·५०
वार्षिक रु० ५·००

सम्पादकीय

पुनरावलोकन की दिशा

पिछले अंक में हमने उक्त विषय पर लिखते हुए दो बातें बतायी थीं। एक तो यह कि सन् १९७१ के मध्यावधि निर्वाचनों से हिन्दू हित को हानि पहुँची है और दूसरी यह कि इन निर्वाचनों में इंदिरा कांग्रेस को विजयश्री से सुशोभित करने वाले अधिकांश हिन्दू ही हैं।

इस स्थिति के लिए सर्वाधिक दोषी हम उन सभा, समाजों एवं संस्थाओं को मानते हैं जो हिन्दू समाज का विचार निर्माण करने वाली संस्थाएँ मानी जाती हैं।

पिछले मास के सम्पादकीय में हमने उक्त वस्तुस्थिति का वर्णन मात्र ही किया था। आज हम इस वस्तुस्थिति के विषय में कुछ विस्तार से कहना चाहते हैं।

प्रथम विचारणीय प्रश्न है कि इस देश में हिन्दू नाम का कोई समाज भी है अथवा नहीं? यदि है तो वह क्या है? क्या वह समझता है कि उसका हित किसमें है? और क्या पिछले चौबीस वर्ष में उन हितों की रक्षा होती रही है अथवा वह करता रहा है?

हिन्दुओं के कोई भी आर्थिक हित ऐसे नहीं जो देश के किसी अन्य समुदाय के न हों। अतः उन आर्थिक हितों की उपलब्धि का प्रयत्न देश में रहने वाले सब समुदाय समान रूप से कर सकते हैं।

देश में जो तकनीकी उन्नति हुई है, यह सब समुदायों के हित में एक समान ही है। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि तकनीकी उन्नति से जो कुछ भी नव-निर्माण हुआ है, वह उन सब लोगों के प्रयोग में आता है जिनके पास उस निर्माण की उपलब्धियों को प्राप्त करने की सामर्थ्य है।

उदाहरण के रूप में विद्युत-विकास के कारण बिजली के पंखे, प्रकाश देने वाले लैम्प तथा अन्य सुख-सुविधा की सामग्री उनको उपलब्ध हो सकती है जिनके पास उनको प्राप्त करने के लिये पर्याप्त धन है। यही बात अन्य उपलब्धियों के विषय में भी है। कहने का अभिप्राय यह है कि देश का आर्थिक विकास सबके लिये समान रूप से हो रहा है।

जब सत्तारूढ़ दल यह कहता है कि वह देश का आर्थिक विकास कर रहा है तो इसमें हिन्दू अथवा किसी अन्य समुदाय की बात नहीं आती और हम जब हिन्दू हितों की बात करते हैं तो हमारा अभिप्राय इस आर्थिक विकास का विरोध करना भी नहीं होता। हाँ, इस विषय में यदि हमारा विरोध है तो वह है इस विकास के उपायों से और कार्य के विधि-विधान से। परन्तु उपायों और विधि-विधान से होने वाले दोषों से हानि तो सब समुदायों को समानरूपेण होती है। इस पर भी जब हम हिन्दू हितों की बात करते हैं तो वह किसी अन्य कारण से ही करते हैं।

हिन्दुओं की कुछ मान्यताओं की गणना हमने अपने पिछले लेख में की थी। वे स्वल्प मान्यताएँ हैं। उनके अतिरिक्त अन्य मान्ताएँ भी हैं। किन्तु वे सब इन लेखों का विषय नहीं हो सकतीं।

राम, कृष्ण, सीता, सावित्री, द्रौपदी, रुक्मिणी, विक्रमादित्य, स्कन्दगुप्त, तुलसी, कबीर, राणाप्रताप, शिवाजी, स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द, तिलक, लाजपतराय, सावरकर, भाई परमानन्द प्रभृत्ति एक अटूट शृंखला में महापुरुषों का यहाँ प्रादुर्भाव हुआ है। हिन्दू इनको अपना पथ-प्रदर्शक मानते हैं। किन्तु हम अनुभव करते हैं कि पिछले २४ वर्षों में इन दिव्यात्माओं की प्रतिष्ठा को कम करने का भरसक यत्न किया गया है। उनको अप्रतिष्ठित करने के लिए बहुत बड़ा एवं नियोजित प्रयास किया गया है।

हिन्दू समाज के इन सम्मानित पुरुषों को अपमानित करने के लिए जो कुछ सन् १९४७ से १९७० तक किया गया है, उतना किसी मुसलमानी अथवा

अंग्रेज़ी राज्य में भी नहीं किया गया। स्वतन्त्र देश की स्वतन्त्र सरकार ने इनकी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए कुछ नहीं किया। न केवल इतना वरंच इनको अपमानित करने वालों के कुकृत्यों में सहायक सिद्ध होती रही है।

हम केवल सलेम (मद्रास) में हुए काण्ड की ही बात नहीं करते। वह तो उस पाठ का परिणाम मात्र है जो भारत सरकार, अरबों रुपये प्रतिवर्ष व्यय करके भारत के नागरिकों को दिन-रात पढ़ा रही है। भारत के सब विश्वविद्यालय और सरकारी शिक्षा विभाग से सम्बन्धित सब स्कूल दिन-रात इन महापुरुषों की महिमा को मलिन करने में लगे हुए हैं।

इन महापुरुषों के अतिरिक्त वेद, शास्त्र और अन्य मान्य धर्म ग्रन्थों की बात भी है। युरोप में उनको विकृत करने के लिये एक विशाल षड्यन्त्र किया गया था और अब भी किया जा रहा है। यह काम हमारे विश्वविद्यालयों का था कि वह ग्रन्थों के आयोजन और उनके प्रयोग की अनिवार्यता को अक्षुण्ण रखते। परन्तु ऐसा नहीं किया गया और न किया जा रहा है। यदि विश्वविद्यालय एवं शिक्षा स्वतन्त्र होती तो सरकार को इसका दोषी नहीं माना जा सकता था, परन्तु सरकार ने तो शिक्षा पर अधिकार जमा रखा है। इस कारण यदि वेद-शास्त्रों को दूषित करने के लिये विश्वविद्यालयों में किसी भी प्रकार का प्रयत्न किया जाता है तो इसके लिए भी सरकार को ही दोषी कहा जायेगा।

वेद-शास्त्रों को अपमानित करने के प्रयत्न के साथ-साथ उस भाषा की अवहेलना ही नहीं, वरंच विरोध भी सरकार की ओर से किया जा रहा है जिसमें ये धर्म ग्रन्थ लिखे हुए हैं। यदि भारत की स्वतन्त्र सरकार ने कोई ऐसा जघन्य पाप किया है कि जिसका प्रायश्चित्त ही नहीं हो सकता तो बह है इस देश की न केवल स्वाभाविक और ऐतिहासिक भाषा को अपितु देव-वाणी को अपमानित एवं पददलित करना।

जो बात १६ अगस्त, १९४७ को ही हो जानी चाहिये थी, वह आज तक न केवल हुई ही नहीं वरंच उसके होने का विरोध किया गया है।

हमारा अभिप्राय संस्कृत भाषा से है।

होना तो यही चाहिये था कि स्वराज्य मिलते ही देश की राष्ट्र भाषा संस्कृत होती और उसके साथ क्षेत्रीय भाषाएँ होतीं। अंग्रेज़ तो यह चाहता ही नहीं था और जन्म से हिन्दुस्तानी, परन्तु आचार-विचार से अंग्रेज और युरोपियन भी ऐसा नहीं चाहते थे। आज सब क्षेत्रीय भाषाएँ एक-दूसरे से सर्वथा विलक्षण होती जा रही हैं और ऐसी अंग्रेज़ी देश की भाषा बन रही है जो सर्वथा अवैज्ञानिक, दुरूह और मस्तिष्क पर व्यर्थ का बोझ डालने वाली

है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हो रहा है कि उन नागरिकों की संख्या बढ़ रही है जो भारतवासी होने की अपेक्षा मद्रासी, मैसूरिया, केरली, मराठा, गुजराती, बंगाली इत्यादि हो रहे हैं। भारत की आत्मा को नीच, पतित अथवा शून्य घोषित कर, उसे अपमानित करके, उसके स्थान पर बंगला, मराठी, मैथिली, अवधी, व्रजवासी, राजस्थानी इत्यादि स्थापित करने का यत्न हो रहा है। भारत के जन मानस की आत्मा संस्कृत, वेद, शास्त्र को अवांछनीय बनाकर उसके स्थान पर तथाकथित विज्ञान को स्थापित किया जा रहा है।

यह सब देश की शिक्षा पर राजनीतिक प्रभुत्व बनाये रखने से ही हो रहा है। यह प्रभुत्व अंग्रेज़ी सरकार ने स्थापित किया था और उस दोष को वर्तमान सरकार ने न केवल चालू ही रखा वरंच इसमें अपार वृद्धि भी की है।

यह शिक्षा पर राजनीतिक प्रभाव का ही कारण है कि देश में नास्तिक, कम्युनिस्ट और निहिलिस्ट दिनानुदिन वृद्धि पा रहे हैं। यह सब कुछ हिन्दू समाज के लिये अहितकर हो रहा है।

इस कुनीति का दुष्परिणाम हिन्दुओं पर ही-हो रहा है, ऐसी बात नहीं। हिन्दुओं की भाँति वह मुसलमानों को भी मूर्ख और देशद्रोही बना रही है। अन्तर केवल यह है कि जहाँ हिन्दुओं की विकृति एक दिशा में है, वहाँ मुसलमानों की विकृति दूसरी दिशा में है। अस्वाभाविक प्रक्रिया की प्रतिक्रिया सबके साथ एक समान नहीं होती। शिक्षा पद्धति पर राजनीतिक प्रभुत्व का प्रभाव जहाँ मुसलमानों में काफ़िरों के प्रति अपने पूर्व विरोध में वृद्धि कर रहा है, वहाँ हिन्दुओं में आत्म सम्बन्धी जीवन-मूल्यों के प्रति निस्पृहता उत्पन्न कर रहा है। इसका कारण यह है कि राजनीति से संतृप्त शिक्षा मानव दुर्गुणों में वृद्धि ही करती है। जो दुर्गुण मुसलमानों में पहले कम थे वे इस शिक्षा से बढ़े हैं। वही बात हिन्दुओं में हुई है। दुर्भाग्य यह था कि दोनों समुदाओं में दोष भिन्न-भिन्न और परस्पर विरोधी थे। अतः इस दूषित स्वार्थवर्धक शिक्षा ने दोनों के दोषों को बढ़ाया है।

हमारा तो यह कहना है कि भारत में हिन्दू बहुसंख्यक होने के कारण सरकार ने हिन्दुओं का इस दिशा में भारी अहित किया है।

कांग्रेस सरकार ने अन्य भी कई प्रकार से हिन्दुओं का अहित किया है। जो कुछ लोग अपने बलबूते पर हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के लिये यत्न करना चाहते थे और कर रहे हैं, उनका सरकार की ओर से घोर विरोध होता है।

[शेष पृष्ठ २२४ पर]

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

आदित्य

एशिया के दक्षिण पूर्व और पश्चिम में अभी भी विस्फोटक स्थिति बनी ही हुई है। अब पूर्वी पाकिस्तान की स्थिति अति भयंकर हो उठी है। वहाँ नरमेध हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह नरमेध अभी रुक नहीं रहा।

तीन मास हुए पाकिस्तान में आम निर्वाचन कराये गए थे। सैनिक तानाशाही को भी अपनी सफ़ाई देनी होती है, परन्तु तानाशाही जब सफ़ाई देती है तो इसके नंगे हो जाने का भय बना रहता है। यही बात पाकिस्तान में इन निर्वाचनों से हुई है।

जबसे पाकिस्तान बना है, वहाँ तानाशाही चल रही है। एक के उपरान्त दूसरा तानाशाह आता रहा और सभी यह आश्वासन देते रहे हैं कि उनकी तानाशाही अस्थाई है और वे शीघ्र ही लोकतन्त्रीय शासन स्थापित कर देंगे। अयूबखाँ ने एक प्रकार के गणतन्त्र को चलन देने का यत्न किया था, परन्तु वह चल नहीं सका और उसके साथ ही अयूबशाही समाप्त हो गई।

याह्या खाँ की तानाशाही आरम्भ हुई। याह्या खाँ ने भी अपने पूर्ववर्ती तानाशाहों की भाँति यह वचन दिया था कि वह जनतन्त्र को स्थापित करने के लिये सैनिक तानाशाही चला रहा है।

इस वचन के पालन के लिये ही उसने निर्वाचन कराये थे। परिणाम उसकी आशा के विपरीत निकले।

पाकिस्तान में जितने भी तानाशाह हुए हैं, जिन्ना और लियाकत को छोड़, सब-के-सब पठान श्रेणी के हुए हैं और याह्या खाँ भी यही आशा करता था कि जनतन्त्र से ऐसा संविधान बन सकेगा जिससे राजनीतिज्ञ परस्पर लड़ते रहेंगे और पठान सैनिक शासन करते रहेंगे। किन्तु सन् १९७१ के निर्वाचनों से हुआ इसके सर्वथा विपरीत। इसमें दो दल उभर आए। एक पूर्वी पाकिस्तान का और दूसरा पश्चिमी पाकिस्तान का। पूर्वी पाकिस्तान के नेता शेख

मुजीबुर्रहमान आगे आ गये और पश्चिमी पाकिस्तान के दल के नेता जुल्फ़कार अली भुट्टो सिद्ध हुए। पूर्वी पाकिस्तान का बहुमत था। शेख़ मुजीबुर्रहमान के अनुयाई एक सीमित संख्या में पश्चिमी पाकिस्तान में भी निर्वाचित हुए। इस प्रकार शेख़ मुजीबुर्रहमान की अवामी लीग पाकिस्तान असेम्बली में एक अत्यन्त विशाल बहुमत से सफल हुई।

आवामी लीग ने अपना सात सूत्रीय कार्यक्रम निर्वाचनों के पहले ही घोषित कर दिया था और इसमें पूर्वी पाकिस्तान को पश्चिमी पाकिस्तान से पृथक् एक स्वतन्त्र प्रान्त के रूप में रखने की घोषणा की गई थी। अवामी लीग यह चाहती है कि पाकिस्तानी केन्द्रीय सत्ता के साथ प्रान्तों का सम्बन्ध केवल सुरक्षा, विदेश नीति और संचार व्यवस्था में ही हो। यह एक तानाशाह पसन्द नहीं कर सकता था।

परिणामस्वरूप संघर्ष होना अनिवार्य था और वह हुआ। याह्या खाँ ने अवामी लीग की शर्तों को मानना स्वीकार नहीं किया और निर्वाचित असेम्बली की बैठक बुलाने से इन्कार कर दिया। अवामी लीग के नेता ने पूर्वी पाकिस्तान में पहले आम हड़ताल करा दी, बाद में पूर्वी पाकिस्तान को एक स्वतन्त्र देश 'बंगला देश' के नाम से घोषित कर दिया। इस पर याह्या खाँ ने अवामी लीग को अवैध घोषित कर इसके समर्थकों को पकड़ना और मारना आरम्भ कर दिया। अवामी लीग ने भी सैनिक अधिकारियों का सफ़ाया करने का संकल्प कर लिया।

इस लेख के लिखने तक संघर्ष जारी है। एक ओर पूर्ण पाकिस्तान की सैनिक शक्ति है जिसको अमेरिका, इंगलैण्ड, रूस, चीन, ईरान और टर्की शस्त्रास्त्र दे रहे हैं। दूसरी ओर निःशस्त्र जनता है और उसके कुछ पुलिस और पूर्वी पाकिस्तानी सैनिक हैं। इनके पास कुछ ही शस्त्रास्त्र हैं।

सैनिक तानाशाह के पास हवाई जहाज़ और आग लगाने वाले बम्ब, टैंक और तोपें हैं। यह युद्ध एक प्रकार का पूर्ण जाति को निःशेष करने वाला होता दिखाई दे रहा है।

भारत सरकार ने अवामी लीग के बंगला देशवासियों से सहानुभूति का प्रस्ताव पास कर दिया है, परन्तु यह सरकार उनकी सक्रिय सहायता नहीं कर सकती। वास्तव में भारत सरकार ने अपने को इस प्रकार एक कोने में सुकेड़ रखा है कि यह भूमण्डल के किसी भी स्थान के लोगों की सहायता नहीं कर सकती। यह तो पीड़ितों के साथ सहानुभूति भी प्रकट नहीं कर सकती।

बंगला देश के साथ सहानुभूति का कारण यह नहीं कि भारत सरकार

को बंगला देश पर अत्याचार से किसी प्रकार का दुःख हुआ है। दुःख तथा सुख की बात जाननी अति कठिन है, परन्तु दुःख का स्वाभाविक परिणाम दुःख-निवारण का प्रयत्न अभी तक दिखाई नहीं दिया। सहानुभूति का कारण यह है कि पाकिस्तान भारत का सदैव विरोध करता रहा है। इस कारण इस समय जब पाकिस्तान के विरोध का अवसर आया है तो भारत सरकार ने भी हो-हल्ला करने का प्रयास किया है।

वास्तविक सहानुभूति कदाचित् भूमण्डल के किसी भी देश की सरकार की 'बंगला देश' के साथ प्रतीत नहीं होती। सब सरकारें अपने संकुचित स्वार्थों के पीछे भाग रही हैं और यह नीति मूर्खतापूर्ण एवं अदूरदर्शिता की सूचक है।

अवामी लीग के समर्थकों ने अपार शौर्य का प्रदर्शन किया है और ऐसा प्रतीत हो रहा है कि बंगला देश ने अपनी जाति के पूर्ण तरुण अंश को दांव पर लगा दिया है। यह जीतेगा अथवा नहीं जीतेगा, बंगला देश पाकिस्तानी खूँखार हिंसक पशुओं से छुटकारा पायेगा अथवा नहीं, इसका पूर्ण भार बंगला देश के अपने लोगों पर है। कोई किसी की सहायता नहीं करता। सबको अपने-अपने बलबूते पर भरोसा करना होता है।

इसी सन्दर्भ में एक बात और उल्लेखनीय है कि पूर्वी पाकिस्तान में अभी भी कुछ हिन्दू रहते हैं। उनकी अवस्था अति शोचनीय है। यदि यह कहा जाये कि संसार में हिन्दू होना एक अभिशाप हो गया है तो ठीक ही है। भारत में भी हिन्दू पददलित जाति है। हिन्दू का नाम लेने वाला अपने को भूमण्डल में और भारत में भी निस्सहाय पाता है। हिन्दू नाम से कोई राजनीतिक संस्थान नहीं जो किसी हिन्दू को हिन्दू के नाते संरक्षण प्रदान करता हो। मुसलमानों के राज्य भी हैं और बड़े-बड़े संस्थान भी हैं। इसी प्रकार ईसाइयों, यहूदियों और अन्य विचार के लोगों के भी हैं। परन्तु पिछले चौबीस वर्ष से पाकिस्तानी हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के अत्याचार होते रहे हैं और भारत की हिन्दू समर्थित सरकार ने उनको किसी प्रकार की सहायता एवं संरक्षण नहीं दिया।

ऐसा सुना जाता है कि पश्चिमी पाकिस्तानी बंगला देश पर अत्याचार करते हुए अपना विशेष लक्ष्य हिन्दुओं को बना रहे हैं। इस समाचार से भारत के प्रधानमन्त्री ने लोगों को यह शुभ सम्मति दी है कि बंगला देश में हो रहे संघर्ष को साम्प्रदायिक रूप न दिया जाये। यह ठीक है, परन्तु हमारा तो प्रश्न है कि उनकी रक्षा के लिए आवाज़ उठाने का समय कब आयेगा? पिछले चौबीस वर्ष में कितनी बार यहाँ-वहाँ हिन्दू संहार हुआ है और कब भारत

[शेष पृष्ठ २१७ पर]

माण्डूयोपनिषद्

श्री प्रभाकर

इस उपनिषद् का चौथा मन्त्र इस प्रकार हैं—

स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः ।

मन्त्र का अन्वय इस प्रकार है—

स्वप्नस्थानोः अन्तः प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्त भुक् तजसो द्वितीयः पादः ।

स्वप्न स्थान में (चेतन) भीतर से ज्ञानवान् होता है। इसके उस समय (भी) सात अंग और उन्नीस मुख होते हैं।

सात अंग और उन्नीस मुख तो पहले मन्त्र (३) में भी कहे हैं, परन्तु इस मन्त्र (४) में दो बातें विलक्षण कही हैं। मन्त्र तीन में जाग्रत अवस्था का वर्णन है और मन्त्र चार में स्वप्न अवस्था का नाम है। दूसरी विलक्षण बात यह है कि यहाँ सात अंगों और उनके खाने वाले (परिवर्तन करने वाले) उन्नीस मुखों के साथ शब्द है—'प्रविविक्तभुक्' और 'तैजसो'।

इनके स्थान पर तीसरे मन्त्र में शब्द है—स्थूलभुग् वैश्वानरः। प्रविविक्त के अर्थ हैं पृथक्-पृथक् हो रहे।

तैजसो शब्द का अर्थ है तेजोमय।

अतः इस मन्त्र (४) का अर्थ बनता है कि स्वप्नावस्था में सब अंग तो होते हैं, परन्तु वे स्थूल रूप में न होकर सूक्ष्म रूप में और पृथक्-पृथक् होते हैं। इस अवस्था में भी वे उन्नीस मुखों से परिवर्तित किये जा रहे होते हैं। साथ ही इसका परिणाम वैश्वानर न होकर 'तैजसो' (तेजोमय) हो रहा था।

यह अवस्था स्वप्नावस्था है। स्वप्नावस्था का अर्थ है जाग्रत स्थान और सुषुप्ति स्थान का संधि स्थान। जाग्रत अवस्था का वर्णन माण्डूक्य (३) में किया है। वह है जब जगत् बन गया होता है। इसका वैश्वानर रूप प्रकट हो जाता है।

सुषुप्ति अवस्था का वर्णन आगे चलकर करेंगे। स्वप्न अवस्था इन दोनों का संधि स्थान है। यह वह अवस्था कही जाती है जब ब्रह्म दिन का आरम्भ होता है। यह समय उषाकाल के नाम से स्मरण किया जाता है। बृहदारण्यक उपनिषद् १-१-१ में इसका वर्णन किया है। वहाँ लिखा है—

ओं उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः।

अर्थात्—अश्वमेध का शिर (आरम्भ) अथवा उषाओं की प्रेरणा से हुआ। अश्वमेध का अभिप्राय है कि सृष्टि रचना का यज्ञ। उसका आरम्भ उषाकाल है।

अतः माण्डूक्य—१ में इसी काल का वर्णन है। इसे स्वप्न स्थान कहा है। स्वप्न स्थान किसका ? प्रकृति और जीवात्मा का। परमात्मा का तो स्वप्न स्थान नहीं होता। परमात्मा की शक्ति उन्नीस मुखों से कार्य कर रही होती है। वास्तव में इस अवस्था में उन उन्नीस मुखों से कार्य आरम्भ होता है जिसका वर्णन मन्त्र माण्डूक्य (३) में और प्रथम पाद में किया है।

जगत् रचना का दूसरा पाद (phase) तो वह पाद है जो प्रथम से पूर्व था। ऐसा प्रतीत होता है कि उपनिषद्कार ने इस जगत् रचना का वर्णन जाग्रत अवस्था से आरम्भ किया है और पूर्व की ओर चलते हुए वर्णन जारी रखा है। जाग्रत अवस्था से स्वप्नावस्था पहले था और उसे उपनिषद्कार ने दूसरा पाद कहा है।

इसी उपनिषद् का पाँचवाँ मन्त्र इस प्रकार है—

यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ॥

इस मन्त्र का अन्वय इस प्रकार है—

यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते, न कंचन स्वप्नं पश्यति तत् सुषुप्तम्। सुषुप्ति स्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एव आनन्दमयो हि आनन्दभुक् चेतो मुखः प्राज्ञः तृतीयः पादः।

अर्थात्—वहाँ सोया हुआ किसी काम्य (पदार्थ) की कामना नहीं करता। कुछ स्वप्न भी नहीं देखता, वह सुषुप्ति स्थान है। सुषुप्ति स्थान में एक ही होता है और उसमें (प्रज्ञानघन) चेतना केन्द्रित (concentrated) हो जाती है। वह आनन्दमय और आनन्द का भोक्ता होता है। वह चेतन्यस्वरूप होता है। (शेष प्रकृति और जीवात्मा) (प्राज्ञ) सर्वथा अज्ञानमय होता है। यह तीसरा पाद है।

इस मन्त्र में पूर्व प्रकिया के अनुसार उपनिषद्कार अब स्वप्नावस्था से भी पहले को चलता है। पहले पाद में जगत् की वैश्वानर अवस्था जब सूर्य, चन्दादि नक्षत्र बन गये, लिखी है। दूसरे पाद में वह अवस्था लिखी है जब प्रकृति में परिवर्तन आरम्भ हुए और तेजोमय हिरण्यगर्भ (nebula) बन रहा था। इस मन्त्र में तीसरे पाद का वर्णन किया है। सृष्टि आरम्भ से पहले जब अभी रचना आरम्भ भी नहीं हुई थी। यह सुषुप्ति अवस्था कही गयी है।

जैसा कि हमने मन्त्र संख्या तीन के भाष्य में लिखा है कि स्वप्नावस्था प्रकृति और जीवात्मा की होती है। परमात्मा की नहीं होती। वही बात यहाँ लिखी है। सुषुप्ति अवस्था में जीवात्मा काम्य पदार्थों की कामना नहीं करता। वह प्राज्ञ (प्र+अज्ञ) सर्वथा ज्ञानरहित हो जाता है। प्रकृति तो पहले ही ज्ञानरहित होती है।

लिखा है कि इस सुषुप्ति स्थान में केवल एक ही होता है जो आनन्दमय आनन्द का भोग करता है उसकी (प्रज्ञानधन) चेतना केन्द्रित, धन अर्थात् (concentrated) हुई होती है।

यह प्रलय काल का वर्णन है। इसमें प्रकृति और जीवात्मा सोये होते हैं। जीवात्मा काम्य पदार्थों की कामना नहीं कर रहा होता। जीवात्मा (प्र+अज्ञ) सर्वथा अज्ञानमय होता है। एक परमात्मा ही आनन्दमय होता है और आनन्द का भोग कर रहा होता है और चेतना युक्त होता है।

अगला मन्त्र इस प्रकार है—

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्। (माण्डूक—६)

अन्वय है—एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषो अन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्।

वह (जो सुषुप्ति स्थान में चेतन स्वरूप है) सबका ईश्वर है। वह सर्वज्ञ है। इस (सुषुप्ति स्थान) का अन्तर्यामी है। अन्तर्यामी का अर्थ भीतर से नियमन करने वाला और यह (सुषुप्ति स्थान) कारण है सबके उत्पन्न होने का और प्राणियों का।

इस मन्त्र में भी अभी उसी तीसरे पाद (स्थिति) का वर्णन किया जा रहा है। उस अवस्था में प्रज्ञानघन आनन्दमय को सबको ईश्वर (अधिष्ठाता) और सबका ज्ञाता बताया है। उस एक 'प्रज्ञानघन' को उस सुषुप्ति स्थान के भीतर से नियमन (नियन्त्रण) में रखने वाला बताया है और उसको ही उस सबकी उत्पत्ति में और प्राणियों का कारण बताया है। कारण का अभिप्राय निमित्त कारण से है।

●

वैदिक समाजवाद

□

श्री गुरुदत्त

हिन्दू समाज का यह दुर्गुण है कि यह मूर्खों की भाँति चढ़ते सूर्य को प्रणाम करता है। सूर्य चढ़ता है अथवा डूबता है, यह सूर्य का गुण-दोष नहीं। यह तो देखने वाले की अपनी स्थिति का गुण-दोष ही है। यदि प्रणाम तथा तिरस्कार होना चाहिये तो देखने वाले की अपनी स्थिति का होना चाहिये।

आजकल सूर्योदय है 'समाजवाद' का और देवी-देवताओं की पूजा-पाठ में रत हिन्दू समाज इसको प्रणाम न करे, यह सम्भव नहीं था। अतः हिन्दू समाजवाद, मनु का समाजवाद, आर्य समाजवाद और अब वैदिक समाजवाद की चर्चा चल पड़ी है। ये लोग शताब्दियों से फुटबाल की भाँति ठोकरें खाते हुए इसी दुर्दशा को सौभाग्य मान प्रसन्न हो रहे हैं।

हमारा ज्ञान यह कहता है कि ईसा की अट्ठारहवीं शताब्दि से पूर्व समाजवाद का कहीं नाम नहीं था। यह ठीक है कि इन दो-ढाई सौ वर्ष में भी समाजवाद के कई रूप दृष्टिगोचर हुए हैं, परन्तु एक बात इनमें स्थाई रूप में बनी रही है और वास्तव में वह समाजवाद का मुख्य अंग है। वह अंग हिन्दू समाज में कभी भी किसी भी रूप में नहीं रहा।

'वाद' शब्द किसी रूप-रेखा का सूचक होता है। उस रूप-रेखा के बदलने पर वाद बदल जाता है। यह सब वादों, मज़हबों और पंथों में है। वाद नाम से नहीं, वरंच उन लक्षणों से ही जाना जा सकता है। जैसे एक मुसलमान झूठ-सत्य बोलने से, न्याय अथवा अन्यायाचरण से तथा चोरी करने न करने से नहीं जाना जाता, वरंच सुन्नत से पहचाना जाता है। यह सब मज़हबों में होता है। यही बात सोश्यलिज़्म (समाजवाद) की है। समाजवाद का चिह्न क्या है, उसको समाजवादियों के कथनानुसार ही स्वीकार करना होगा। यह किसी हिन्दू अथवा आर्यसमाजियों द्वारा किये लक्षणों से प्रकट नहीं हो सकता। इस कारण हम समाजवाद के लक्षण एक प्रामाणिक ग्रन्थ और प्रामाणिक समाजवादी के कथन

से ही करना चाहते हैं।

श्री अशोक मेहता समाजवाद का लक्षण करते हुए 'Encyclopeadia of the Labour Movement' में से इसके लक्षण अपनी पुस्तक 'Democratic Socialism' में उद्धृत करते हैं। लक्षण इस प्रकार हैं—

Socialism is a working class doctrine and movement aiming through the class struggle at the collective control of society, by the capture of the state machine by the workers and establishment of self-government in industry. (Vol III Page 154).

श्री अशोक मेहता इसे 'Comprehensive definition' कहते हैं। समाजवाद के इस लक्षण में दो बातों का स्पष्ट वर्णन है। एक तो यह कि समाज पर मज़दूर वर्ग का नियन्त्रण होगा और दूसरा राज्य के द्वारा।

इस लक्षण को वेदों में ढूंढना चाहिये। हमारा ज्ञान यह कहता है कि वेदों में इन दोनों बातों की गंध भी नहीं मिलती। समाज पर अधिकार ब्राह्मण वर्ग का होगा, मज़दूर वर्ग का नहीं।

वेदों में समाज की कल्पना एक मनुष्य शरीर की भाँति की गयी है। समाज रूपी शरीर में ब्राह्मण शिर है, बाहें क्षत्रिय माने गये हैं। उदर वैश्य और पाँव शूद्र हैं। शरीर की भाँति ही समाज पर नियन्त्रण शिर अर्थात् ब्राह्मण वर्ग का स्वीकार किया गया है।

वैदिक समाज में नियन्त्रण ब्राह्मण वर्ग का होता है। साथ ही मनुष्य स्वहितकारी बातों में स्वतन्त्र होता है। समाजवादी समाज में स्वहितकारी कुछ भी नहीं है। यहाँ तक कि अपने विश्वास एवं खान-पान तथा पूजा-पाठ में भी स्वतन्त्रता नहीं दी जाती।

यह भ्रामक प्रचार कि वेदों में समाजवाद है, कम्युनिस्टों ने ही प्रारम्भ किया है और हिन्दू समाज इसे स्वीकार करता प्रतीत होता है।

श्री डांगे ने भी कुछ वेद मन्त्र बताये हैं। जिनके अर्थ वह समाजवाद के समर्थन में लगाते हैं। इसी प्रकार एक अन्य कन्युनिस्ट श्री वाचस्पति गैरोला भी अपनी पुस्तक कौटिल्य-अर्थशास्त्र के अनुवाद की भूमिका में लिखा है कि वेदों में समाजवाद का एक रूप बताया है। ये दोनों कम्युनिस्ट कहते हैं कि वेदों में साम्य-संघ का शब्द 'कम्यून' (Commune) के रूप में आया है। वेदों में साम्य-संघ शब्द दिखायी नहीं देता। इसी प्रकार वेदों में ब्राह्मण का समाज के संचालन का अधिकार मज़दूर वर्ग (working class) को नहीं दिया गया।

ऋग्वेद में सभा और सभ्यों का कथन तो है, परन्तु साम्य-संघों का कथन नहीं।

यहाँ यह बता देना लाभप्रद होगा कि समाजवादी यह मानते हैं कि मनुष्य आदि काल में वन-पशु के समान ही था। धीरे-धीरे इसने उन्नति की है और वर्तमान समाज की अवस्था सर्वोत्तम है। यह बात इतिहास और मानव शरीर विज्ञान से असिद्ध होती है। वेद परम्परा में भी इसका विरोध है। हम वेद मतानुयाई यह मानते हैं कि प्रथम मानव सृष्टि अति श्रेष्ठ मानवों की ही हुई थी। साथ ही हम यह मानते हैं कि मानवों में उत्तरोत्तर मानवीय शक्तियों में उन्नति नहीं हो रही, वरंच ह्रास हो रहा है।

इसी प्रकार समाजवादी यह मानते हैं कि मनुष्य-इतिहास अन्न, धन और सुख-सुविधा की धुरी पर चला आ रहा है। दूसरे शब्दों में मनुष्य और समाज का विकास अर्थ की धुरी पर चल रहा है। हम इसको इस प्रकार नहीं मानते। हमारा यह मत है कि मानव में ह्रास कामनाओं की वृद्धि और मोह का अनियन्त्रित होना है। काम और मोह पूर्व जन्म के कर्मों से मनुष्य को मिलते हैं। इन पर वर्तमान जीवन का बहुत कम प्रभाव होता है।

वर्तमान जीवन के प्रलोभनों का जो कुछ भी प्रभाव होता है, वह मनुष्य की सात्विक प्रवृत्ति होने पर निःशेष हो जाता है। यह देखने में आता है कि कभी सब प्रकार से सम्पन्न व्यक्ति भी चोरी और झूठ का आश्रय लेते हैं। यह भी देखने में आता है कि निर्धन प्रायः धनियों से अधिक ईमानदार और सत्यवक्ता होते हैं। यह पूर्व जन्म के कर्म फल से प्राप्त सात्विकी बुद्धि अथवा काम और मोह की प्रवृत्ति मिलने के कारण होता है।

वेदों में अथवा अन्य आर्ष ग्रन्थों में न तो कहीं समाजवाद का उल्लेख है और न ही कर्मचारी वर्ग का समाज पर नियन्त्रण का उल्लेख है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में यह भी कहीं लिखा नहीं मिलता कि व्यक्ति के व्यक्तिगत कामों पर समाज का अथवा राज्य का एकाधिकार है।

जैसा हमने बताया है कि समाजवाद का अर्थ ही यह है कि कर्मचारी वर्ग का अधिकार पूर्ण समाज के प्रत्येक कार्य पर हो। वैदिक धर्म ऐसा नहीं मानता।

वैदिक अर्थ-व्यवस्था में कर्मचारी दो ही वर्णों में माने जाते हैं। वैश्य वर्ण में और शूद्र वर्ण में। वैश्य वर्ण के कर्मचारी स्वतन्त्र व्यवसाय करने वाले होते हैं अथवा किसी व्यवसाय में स्वतन्त्र कार्य करने वाले होते हैं।

शूद्र वर्ण के कर्मचारी तो सर्वथा दूसरों के अधीन होते हैं। वास्तव में शूद्र

[शेष पृष्ठ २१९ पर]

भारत में इतिहास का एक पक्ष : मनु की वंशावलियाँ

□

श्री सचदेव

इक्कीस लाख वर्ष का इतिहास लिखना तब ही सम्भव हो सकता है जबकि इतिहास की उपादेयता का स्पष्ट चित्र दृष्टि में रखा जाये।

इतिहास लिखने का कुछ प्रयोजन भी है अथवा यह केवल मरे हुए प्राणियों की गिनती करने का रजिस्टर मात्र है? जब तक इस प्रश्न को न समझ लिया जावे और इसके उत्तर की स्पष्ट रूप-रेखा मस्तिष्क में न बैठ जाये तब तक भारतीय इतिहास के विषय में टीका-टिप्पणी करने से लाभ नहीं होगा।

इतिहास के कई रूप भारत के प्राचीन लेखकों को विदित थे। इतिहास का दूसरा नाम पुरावृत्त है। इतिहास की परिभाषा आचार्य दुर्ग अपनी निरुक्त-टीका में इस प्रकार लिखते हैं—

इति हैवमासीदिति यः कथ्यते स इतिहासः ।।

(उद्धृत—भा० का वृ० इतिहास—भगवद्दत्त)

अर्थात्—यह निश्चय से इस प्रकार हुआ था। ऐसा जो कहा गया, वह इतिहास है।

शुक्र नीति सार ४-३-१०२,१०३ में इतिहास के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं—

प्राग्वृत्तकथनं चैकराजकृत्यमिवादितः ।
यस्मिन् स इतिहासः स्यात् पुरावृत्तः स एव हि ।।

पूर्व काल का वृत्तान्त और किसी एक राजा का कृत्य जिसमें कहा जावे, वह इतिहास और पुरावृत्त होता है।

भारतवर्ष के इतिहास में कठिनाई यह है कि इक्कीस लाख वर्ष का इतिहास किस प्रकार लिखा जाये कि जिससे उसका लाभ उठाया जा सके। यह भी प्रश्न उत्पन्न होता है कि इतिहास से क्या लाभ-प्राप्ति की आशा की जाती है?

महाभारत में इतिहास सुनने के लाभ का वर्णन इस प्रकार किया है—

य इदं श्रावयेद् विद्वान् ये चेदं शृणुयुर्नराः ।
ते ब्रह्मणः स्थानमेत्य प्राप्नुयुर्देवतुल्यताम् ।।
(महा भा०—आदि०—१-६२-१५)

जो विद्वान् इस इतिहास को सुनाता है और जो मनुष्य इसे सुनता है वह ब्रह्मलोक में जाकर देवताओं के समान हो जाता है ।

अतः इतिहास सुनने का अभिप्राय जीवन में उत्क्रमण करना है । एतदर्थ यह आवश्यक हो जाता है कि इतिहास लिखा जाये और उसका श्रवण किया जाये ।

इस पर प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि इक्कीस लाख वर्ष का इतिहास लिखा तो जा भी सकता है, परन्तु उसे किस स्थान पर सुरक्षित रखा जाये और फिर कौन उसे पढ़ेगा ?

यही कारण है कि आर्य विद्वानों ने इतिहास को इस ढंग से लिखना उचित नहीं समझा जैसे कि आजकल के लेखक लिखते हैं । उन्होंने इतिहास लिखने के ढंग में विशेषता उत्पन्न की । एक तो इतिहास को केवल घटनाओं का कथन-मात्र न रखकर इसे आचार-विचार, मनोद्गारों, कामनाओं का वर्णन बनाने का यत्न किया है । साथ ही इसे संसार में घटित मुख्य-मुख्य घटनाओं तक ही सीमित कर अनावश्यक घटनाओं इत्यादि का वर्णन छोड़ दिया है ।

इस विषय में भी, महाभारत ग्रन्थ में, इतिहास के साथ अन्य विषयों को समाहित करने के विषय में लिखा है—

अस्मिन्नर्थश्च धर्मश्च निखिलेनोपदिश्यते ।
इतिहासे महापुण्ये बुद्धिश्च परिनैष्ठिकी ।।
(महाभारत—आदि०—१-६२-१७)

इस इतिहास में अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र का पूर्ण रूप से वर्णन है । इससे महापुण्य करने वाली मोक्ष बुद्धि प्राप्त होती है ।

भावार्थ यह कि इतिहास पूर्व काल का वृत्तान्त होता है । इस वृत्तान्त में अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष-प्राप्ति का लक्ष्य होना चाहिए ।

साथ ही जब इतिहास किसी विस्तृत काल का हो तो उस काल की चुनी हुई विशिष्ट घटनाओं का इतिहास होना चाहिये । यह आवश्यक नहीं कि पूर्ण काल की सब घटनाओं का उल्लेख उसमें किया जाये ।

भारतवर्ष देश जो किसी काल में आर्यावर्त्त, मध्य देश, ब्रह्मर्षि देश और ब्रह्मावर्त्त देश था, उसका लाखों वर्ष का इतिहास उक्त शैली पर ही लिखा

गया है।

हमने अपने पूर्व के लेख में यह संकेत किया है कि भारत इतिहास का आरम्भ मनु के काल से होना चाहिए और इस लेख में वर्णित शैली के अनुसार भारतवर्ष का इतिहास मिलता है।

ऐसा लिखा हुआ मिलता है कि मनु इतिहास का प्रथम पुरुष नहीं था। वह भी एक लम्बे वंश का उत्तराधिकारी था।

भारतीय परम्परा यह है कि सृष्टि के आरम्भ में भलीभाँति विकसित मानवों की सृष्टि हुई।

यह सब कैसे हुआ और कब हुआ? इस लेख का विषय नहीं। इस कारण इसे हम यहीं छोड़ते हैं। यहाँ तो केवल इतने से प्रयोजन है कि मनु से पहले एक बहुत लम्बा काल व्यतीत हो चुका था। उसका वर्णन बहुत अंशों में विलुप्त हो चुका है। उस इतिहास की बहुत ही न्यून संख्या में और अति संक्षिप्त रूप में घटनाओं का लेख मिलता है। इसमें कारण है जल-प्लावन का विनाशकारी प्रभाव। अतः जल-प्लावन के उपरान्त का इतिहास कुछ अधिक क्रमबद्ध और व्याख्या सहित मिलता है।

मनु से दो मुख्य वंशावलियाँ चलीं। वैसे तो मनु की बहुत सन्तानें हुईं। इनमें अपने-अपने गुण, कर्म, स्वभाव से कई ब्राह्मण और कई क्षत्रिय सन्तानें हुईं।

क्षत्रिय स्वभाव के दस पुत्र थे। इन दसों में दो ने ही राज्यकुल चलाए। एक इक्ष्वाकु ने और दूसरा इला ने।

इक्ष्वाकु से सूर्यवंशी परम्परा चली और इला से चन्द्रवंशी। इन क्षत्रिय और ब्राह्मण गुण स्वभाव एवं कर्म वाले पुत्रों के अतिरिक्त भी मनु के पचास के लगभग पुत्र हुए जो परस्पर की कलह के कारण सब नष्ट हो गये।

मनु के, क्षत्रिय गुण, कर्म, स्वभाव वाले दस पुत्रों में इक्ष्वाकु से सूर्यवंश चला। इस वंश का नाम सूर्यवंश मनु के पूर्वज वैवस्वत के नाम पर पड़ा।

इला लड़की थी। इसका विवाह चन्द्र के पुत्र बुद्ध के साथ हुआ था और उससे जो वंश चला वह अपने पुरखा चन्द्र के नाम पर चन्द्रवंश कहलाया। वंश पिता से चलता है। इस कारण इला का वंश सूर्यवंश नहीं हो सका।

यह कहा जाता है कि इला बाद में पुरुष बन गयी थी। इस विषय में हमारा मत यह है कि बुद्ध तो सन्तान उत्पन्न कर अपनी योग-तपस्या पर चला गया था और इला ने न केवल अपने पुत्र पुरुरवा का पालन-पोषण किया, वरंच उसके लिए राज्य निर्माण भी किया था। इसी कारण इला स्त्री तो थी

ही; साथ ही पुरुरवा का पिता भी मानी जाती है।

इक्ष्वाकु के कुल की परम्परा वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार कही गयी है—

इक्ष्वाकु→कुक्षि→विकुक्षि→वाण→अनरण्य→पृथु→त्रिशङ्कु→धुंधुमार→भुवनाश्व→मान्धाता→सुसन्धि→ध्रुव सन्धि→भरत→असित→सगर→असमंज→अंशुमान→दिलीप→भगीरथ→कुकुत्स्थ→रघु→प्रवृद्ध (कल्याणपाद)→शङ्खण→सुदर्शन→अग्निवर्ण→शीघ्रग→मरु→प्रशुश्रुक→अम्बरीष→नहुष→ययाति→नाभाग—अज—दशरथ—राम—लव।

यह ३६ पीढ़ियाँ गिनायी हैं। इसमें इतना स्मरण रखना चाहिये कि यह इक्ष्वाकु की पूर्ण वंशावली नहीं कही जा सकती, वरंच यह वंश में प्रमुख व्यक्तियों की नामावली ही है।

राम का काल त्रेता तथा द्वापर का संधिकाल है। हम यह बता चुके हैं कि मनु तथा जल-प्लावन त्रेता के प्रारम्भिक काल में हुआ था। त्रेता युग की अवधि लगभग १३ लाख वर्ष मानी जाती है। इतने काल में केवल ३६ ही पीढ़ियाँ हुई होंगी, ऐसा कहना युक्तियुक्त नहीं। इस कारण यही कहा जा सकता है कि ये वंश के प्रमुख राजाओं की नामावलियाँ हैं।

इस विषय पर हम चन्द्रवंशियों की नामावली का वर्णन करते हुए पुनः लिखेंगे।

यहाँ हम यही कहना चाहते हैं कि इक्ष्वाकु के वंश में राम-पुत्र लव तक ३६ प्रमुख व्यक्ति हुए हैं।

अगले लेख में हम चन्द्रवंशियों की नामावली प्रस्तुत करेंगे। ●

[पृष्ठ २०७ का शेष]

सरकार ने पाकिस्तान को ऐसा करने से मना किया है?

परन्तु भारत सरकार का क्या दोष है? यह तो भारत के हिन्दू समाज का दोष है। इस पूर्ण अन्धकारमय अवस्था में एक प्रमुख भारतीय मुसलमान ने बंगला देश के लिए आवाज़ उठाई। यह श्री चागला साहब हैं। शेष मुसलमान नेता जिनकी सहायता और सहयोग से इन्दिराजी सत्तारूढ़ हुई हैं, सब मौन हैं।

हम जो अपने ही देश में निःस्सहाय हैं, केवल परमात्मा से प्रार्थना कर सकते हैं कि वह इन शूरवीर बंगालियों की रक्षा करे। ●

वेद में ऋत का स्वरूप

श्री रामशरण वशिष्ठ

ऋत शब्द ऋ धातु से बना है जिसका अर्थ 'जाता रहे'। इस कारण ऋत वह है जो 'चलता रहे'। इसका आधार सत्य पर है। इसी कारण इसको धर्म भी कहा है। इसका तात्पर्य 'प्राकृतिक नियमों से है।' ऋगवेद (१०-१९०-१) में आता है कि 'ऋतं च सत्यंचाभिद्धात्तपसोऽध्यजायत।' अर्थात् प्रभु के तप से पहले धार्मिक और प्राकृतिक नियम बने। देवता भी इन नियमों से बँधे हैं (पालन करने हैं)। उनको धृतव्रता: कहा है। सारे संसार में कुछ नियम काम करते दीखते हैं। सूर्य चन्द्र-ग्रह दिन रात किसी नियम पर चल रहे हैं। सर राधाकृष्ण ने अपनी पुस्तक 'Indian philosophy' में लिखा है कि आर्यों ने संसार में इन नियमों को काम करते देखकर समझा कि बाह्य रूप संसार में और मानसिक जगत् में कुछ नियम पाए जाते हैं, जो सदैव eternal हैं। इनको उन्होंने ऋत बनाया। ऋ० (४-२३-८-१०) में ऋत का वर्णन विस्तार से है। वहाँ पर इसे 'eternal laws' कहा है। ऋ० १०-८५-१ में आता है कि 'सत्य से पृथिवी स्थिर है और ऋत से आकाश।' 'ऋ' = १२४-८ में कहा है कि ऊषा और सूर्य ऋत के कारण अपने-अपने मार्गों पर चलते हैं। ऋत स्थावर और जङ्गम सारे संसार को चला रहे हैं। सबको बाँधे हुए हैं। मन की क्रियाएँ, काल और स्थानों के बन्धन, सब ऋत के कारण हैं। यह सब एक अटल नियम से बँधे हैं। इनको cosmic laws भी कहा है।

ऋत का सम्वन्ध भलाई से है। यह बुराई के विरुद्ध है। ऋ० ९-७३-६ में आता है। 'ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृत:' दुष्ट पुरुष ऋत के मार्ग को ग्रहण नहीं करते। डॉ० ए० सी० बोस इस मंत्र पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि ऋत की दृष्टि क्रूर है वह बुराई को सहन नहीं करता। सो जो झूठ है, पाप है, कुटिल है, असत्य है वह अनृत है। अनृत दुर्बल है, ऋत बलवान है। ऋत की सदा जेय होती है। बुराई संसार में है पर मनुष्य उस पर विजय पा सकता है। ऋ०

१०-५३-८ में यही बताया है ।

ऋत शब्द से ही right शब्द बना है, जो इंगलिश भाषा में है ।

ऋ० २-२३-१७ में आता है 'ब्रह्मणस्पतिर्द्रहो हन्तामह ऋतस्य धर्तरि ।' कि प्रभु दुष्ट को मारते हैं और ऋत की रक्षा करते हैं । ऋत शब्द से ritual का (रिवाज-नियम-कानून), अर्थ लिया जाता है इसीलिए सायणाचार्य ने ऋत के अर्थ यज्ञ भी किये हैं । इस अर्थ में वेद में ऋत का शब्द बार-बार आता है । ऋ० १-८४-४ में 'ऋतस्य मादने' यज्ञ के स्थान पर ऐसा कहा है ।

विवाह की विधि और मृत्यु के समय जो रस्में की जाती हैं उनको भी ऋत कहा है । और वेद की आज्ञा है कि ऋत का विस्तार करो ।' (ऋ० १-३१-८) उनको rituals कहते हैं । समय बीतने पर ऋत का भाव केवल यज्ञों और संस्कारों का रह गया । संस्कार मनुष्य जीवन में १६ करने बताए हैं । और यज्ञ तो बहुत हैं । यह कर्म-काण्ड ऋत समझा जाने लगा—और समय पाकर इसका विस्तार हो गया । 'परन्तु वेद में ऋत का शब्द बार-बार आता है । जैसे ऋत वाकेन-ऋत वहनं-ऋतद्युम्न-ऋतंपिवन्तौ-मनो वा ऋतं (Jaimini उप:) निघन्टू में ऐसा लेख है कि 'ऋतं सत्यनाम' । वैदिक काल में ऋत का सम्बन्ध सत्य से था । ऋ० १२-१-१ में ऋत पृथिवी का आधारभूत बताया है । ऋत का शब्द eternal Divine laws के लिए और यज्ञ (sacrifice) के लिए भी आता है । और ब्रह्म और तप का वाचक भी है ।

Mr. Mcdonell says—'The word Rita is used to denote the order in the moral world as truth and right, as well as in the religious world as यज्ञ ।

अर्थात् ऋत के दो अर्थ हैं । स्थूल जगत् में यह सत्य का वाचक है और धार्मिक जगत् में यह यज्ञ का वाचक है । डॉ० कुलकर्णी (पी-एच० डी०) भी ऋत की बाबत लिखते हैं कि It is the dynamic—ethical and aesthetic aspect of satya अर्थात् ऋत सत्य ही का dynamic ethical विस्तृत रूप है । यही शब्द पारसियों की पुस्तक Zend Awastha में स्थि है ।

वेद के पाठकों को ऋत का वास्तविक स्वरूप जान लेना चाहिए । •

[पृष्ठ २१३ का शेष]

वर्ण में वे लोग ही होते हैं जो स्वतन्त्र रूप में अपना जीवन चलाने के अयोग्य हों । उनके लिये ही सेवा-कार्य माना गया है ।

सेवा-कार्य बहुत उच्च स्तर का भी हो सकता है और निम्न स्तर का भी । परन्तु जब सेवक को जिस भी काम में स्वेच्छा से और अपनी बुद्धि अनुसार कार्य करने की सामर्थ्य न हो तो वह सेवक शूद्र माना जाता है । ऐसे शूद्रों के हाथ में समाज की बागडोर देना वैदिक पद्धति नहीं है । •

गीता में वर्णाश्रम—एक पर्यालोचना

योगी विश्वात्मा बावराजी महाराज

सामाजिक सुव्यवस्था में हिन्दी विचार-धारा ने मानवीय जीवन व्यापार को चार भागों में विभाजित कर विश्व में एक संगठित समाज-रचना का आदर्श उपस्थित किया। इस प्रकार की समाज व्यवस्था शताब्दियों नहीं बल्कि लाखों वर्षों तक मनुष्य जाति के लिये वरदान सिद्ध हुई। ऋग्वेद काल से ही इस प्रकार के मानव जीवन व्यापार को उनके गुण कर्मानुसार चातुर्वण्य के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया गया था। भगवान् कृष्ण ने गीतोपदेश में इस प्रकार के वर्ण-व्यवस्था का कर्तृव्य स्वयं (ईश्वर) पर ही स्वीकार किया "**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्म विभागशः।**" यह याद रखना चाहिये कि गुण कर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था ही ईश्वरीय मंगलमय विधान की देन है, वर्तमान में प्रचलित जन्मानुसार वर्ण की मान्यता नहीं। आज जो वर्ण-व्यवस्था का स्थान जन्मतः जातिवाद ने ले लिया है और उसमें भी ऊँच-नीच, छुआछूत का असाध्य रोग मानवता की मृत्यु के रूप में सतत वृद्धि को ही प्राप्त हो रहा है। इस महारोग के निदानार्थ अपनाया गया सारा उपचार अपनी असफलता पर आँसू बहाता हुआ कराल काल के गाल में समाता जा रहा है। इतना ही नहीं बल्कि इन विविध प्रकार के उपचारों के परिणाम से रोग बढ़ता ही जा रहा है। गोस्वामी तुलसीदास की वह उक्ति अक्षरशः चरितार्थ हो रही है, जिसमें उन्होंने कहा है—**श्रुति पुराण बहु कहेउ उपाई, छुट न अधिक-अधिक अरुझाई।** वर्ण-व्यवस्था के विकृत रूप को सुधारने के लिये अपनाये गये सभी नुस्खे नाकामयाब होते रहे हैं। कारण कि यह रोग केवल किसी एक ही वर्ग विशेष के लोगों में नहीं है, समान रूप से सभी में व्याप्त है! इस रोग का उचित उपचार व्यक्ति के द्वारा नहीं कालक्रमानुसार ही सम्भव हो सकेगा, ऐसा ही कुछ प्रतीत होता है। क्योंकि वर्तमान युग में जनता के जीवन की बागडोर राजनैतिकों के हाथ में है और दलगत राजनीति के अखाड़े में नेता अपना दावा सही करने के लिए समाजहित की साधना को ताक पर

रखकर स्वदल हित में सब-कुछ करने को तैयार रहते हैं। प्राचीन धर्म निष्ठा की दुहाई देता हुआ एक बड़ा प्राचीन विद्या विशारद वर्ग इस विकृत वर्ण-व्यवस्था व जातिवाद के रूप में उत्पन्न हुए मानवता के लिए घातक रोग को ईश्वरीय वरदान सिद्ध करने में ही रत है। कुछ निष्पक्ष विचारक मानव हित में रोग-निवारणार्थ यदि कुछ कहते भी हैं तो उनकी आवाज नगारे में तूती के समान दबी ही रह जाती है! इन्हीं उपरोक्त कारणों से ही मैंने यह कहा है कि इस असाध्य रोग का निदान शायद कालक्रमानुसार ही सम्भव हो सकेगा।

अब वर्ण-धर्म के बाद आश्रम-व्यवस्था का भी थोड़ा पर्यालोचन कर लेना उचित होगा। आश्रम व्यवस्था को भी विद्वान उतना ही प्राचीन मानते हैं जितना कि वर्ण-व्यवस्था, किन्तु वैदिक साहित्य में इसकी महत्ता दिखाई नहीं देती। व्यवहार की दृष्टि से भी कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता। इसके लिये मर्यादा-पुरुषोत्तम श्री राम के जीवन में भी इसका महत्त्व नहीं रहा है। आश्रम-व्यवस्था के विषय में यह बात याद रहे कि मैं उसकी उपयोगिता या अनुपयोगिता की दृष्टि से नहीं लिख रहा हूँ। मुझे तो केवल यही बताना अभीष्ट है कि अतीत के इतिहास में इसका महत्त्व रहा है। ब्रह्मचर्य आश्रम को २५ वर्ष का माना गया है। श्री भगवान् राम का विवाह सम्बन्ध लगभग सोलह वर्ष की आयु में ही हो गया था। बाद में सुदीर्घ आयु प्राप्त करने पर भी उनके जीवन में वानप्रस्थ व संन्यास का जिक्र कहीं नहीं मिलता। एक सौ सत्तर वर्ष की आयु में महात्मा भीष्म ने युद्ध किया था, भगवान् कृष्ण एक सौ छब्बीस वर्ष की आयु में स्वधाम गये थे, किन्तु कहीं इसका वर्णन नहीं है जो उन्होंने वानप्रस्थावस्था एवं संन्यास का विचार तक भी किया हो। गीता हमारे सभी धर्म-शास्त्रों का निचोड़ है। यह पहले ही बता आया हूँ कि वर्ण-व्यवस्था के सम्बन्ध में भगवान् ने दो जगह अपना सिद्धान्त व्यक्त किया है। किन्तु आश्रम-व्यवस्था की चर्चा तक नहीं की है। ब्रह्मचर्य की चर्चा गीता में अवश्य है किन्तु वह आश्रम-रूप में नहीं, साधना-रूप में। आश्रम के सम्बन्ध में गृहस्थ व वानप्रस्थ का भी जिक्र नहीं है। संन्यास शब्द का प्रयोग कई जगह किया गया है। कुछ विद्वान इसे आँख मूँदकर संन्यास आश्रम के अर्थ में स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु आँख खोलकर देखने पर सम्पूर्ण गीता में न तो कहीं आश्रम-अर्थ में संन्यास शब्द का प्रयोग है, न आश्रम-धर्म की व्यवस्था की चर्चा ही।

गीता के अध्येता को यह समझ लेना चाहिये कि गीता में यद्यपि संन्यास आश्रम की प्रतिष्ठा नहीं है फिर भी गीता का वक्ता ऐसी किसी विचारधारा से परिचित अवश्य है जिसमें कि संन्यास के नाम पर कर्म तथा अग्नि का त्याग

कर दिया जाता है और भिक्षान्न से ही उदरपूर्ति की जाती है। गीता के वक्ता को यह भी ज्ञात है कि संन्यास के सही अभिप्राय को न समझने से ही इस प्रकार की समाज में गलत धारणायें बन गई हैं और यही कारण है कि वह अपने शरणागत शिष्य के हृदय से भी इस गलत धारणा-जन्य संस्कार को दूर करने के लिए उसके सही स्वरूप को व्यक्त करता है। गीता के शब्दों में संन्यास आश्रम नहीं, चित्त की एक विशिष्ट अवस्था है जिसमें व्यक्ति आकांक्षा और द्वेष से रहित हो जाता है, द्वन्द्वातीत हो जाता है, उसी को संन्यास कहते हैं। "**ज्ञेयः सःनित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति। निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुख बन्धात्प्रमुच्यते ।।**" वहाँ संन्यासी के लक्षण में द्वेषरहित होने की बात कही गई है, किन्तु द्वेष-मुक्त कैसे हुआ जा सकता है, इसके लिए आगे कहा है "**न कांक्षति रजोगुणसमुद्भवः**", "**द्वेषः क्रोधः**" द्वेष ही क्रोध है। आकांक्षा के विपरीत स्थिति में द्वेष का जन्म होता है। अतः आकांक्षा के अभाव में द्वेष के लिए स्थान ही नहीं रहता। द्वन्द्वातीत होने के लिए यही उत्तम उपाय है। अनुकूल की आकांक्षा प्रतिकूल के प्रति द्वेश इसी के प्रभाव में सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों की उत्पत्ति होती है। इस श्लोक में भगवान् ने संन्यासी की आन्तरिक अवस्था का वर्णन करते हुए बताया है कि आकांक्षा द्वेष और समस्त द्वन्द्वों से जो मुक्त है, उसी को तुम नित्य सत्य संन्यासी जानो, वह जगत् के सभी बन्धनों से सुखपूर्वक मुक्त हो जाता है।

संन्यासी के लक्षण में परमहंसोपनिषद् में भी यही कहा गया है "**सर्वान्कामान्परित्यज्य अद्वैते परमस्थितिः। ज्ञान दण्ड धृतो येन एक दण्डी स उच्यते**"। सम्पूर्ण कामनाओं का कर दिया है त्याग जिसने, हो गई है अद्वैत में परम स्थिति जिसकी, धारण कर रखा है ज्ञान रूप दण्ड जिसने, वही संम्बोधित हो दण्डी के नाम से। किन्तु गीतानाथ को संन्यासी की व्याख्या में इतना ही अभीष्ट नहीं है कि द्वन्द्वरहित हो जाय। अतः छठे अध्याय के प्रारम्भ में ही इस प्रश्न को सुलझाते हुए अर्जुन को बताया "**अनाश्रितः कर्मफल कार्यं कर्म करोति यः। स संन्यासी च योगी च न निरग्नि चाक्रियः ।।** "अर्थात् जो कर्म-फल का आश्रय त्याग कर करणीय कर्म को कुशलता के साथ करता है वही संन्यासी है, वही योगी है। यह बात ध्यान रखनी चाहिये कि उस समय में भी एक ऐसा वर्ग था जो कि अग्नि एवं कर्म का त्याग करके ही स्वयं को संन्यासी, योगी मानता था। अर्जुन ने भी अपने मन में प्रथम श्रेय का मार्ग वही चुना था '**श्रेयो भोक्तुं भैक्षमपीह लोके**'। उसी को लक्ष्य करते हुए प्रभु ने कहा है कि 'कर्म त्याग संन्यासी नहीं, फलाश्रय रहित कार्य कर्म का कर्त्ता ही संन्यासी है।'

कार्य, कर्म क्या है, इसके विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है, किन्तु मेरे

विचार से देश काल परिस्थिति अनुसार समाज को विकासमयी व्यवस्था में जो कुछ भी राम स्वर हो वही करणीय है। गीतानाथ के शब्दों में भी **''यज्ञ-दान-तप-कर्मसत्याज्य कार्यमेव तत्''** यज्ञ, दान और तप रूप कर्म कभी भी त्याज्य नहीं हैं, सदैव सभी के लिए करणीय हैं। गीता में यज्ञ, दान, तप आदि की अपनी एक विशिष्ट व्याख्या है, इसे पाठक अच्छी प्रकार ध्यान में रखें। सारांश यह कि आश्रमधर्म के रूप में गीता संन्यास को स्थान नहीं देती। हाँ, मानव जीवन की विशिष्ट अवस्था जो कि सर्वभूतहितरतकर्म योगनिष्ठा से युक्त है, उसे ही सही संन्यास का लक्षण मानती है।

इस विषय में एक बात मैं और बता देना उचित समझता हूँ कि काषाय वस्त्र धारण जो वर्तमान में संन्यासी का एक चिह्न माना जाता है, प्राचीनकाल में इसका स्वरूप इस प्रकार नहीं था। लोकसंग्रही ब्राह्मण स्वयं में ज्ञान-भाव एवं क्रिया शक्ति को धारण करता था। ऋग्वेद के एक मन्त्र से इसका अभिप्राय प्रकट होता है—**'तल्लोकं पुण्य प्रदेशं यत्र देवा सहाग्निना'**। ऋषि की दृष्टि में वही राष्ट्र पुण्य राष्ट्र है, जहाँ के देव (दिव्य गुण सम्पन्न विद्वान्) अग्नि युक्त हों, अभिप्राय यह कि जिस प्रकार अग्नि में प्रकाश, दाह तथा शक्ति निहित है उसी प्रकार जिस देश के विद्वान् नेता प्रकाश रूप ज्ञान, दाह रूप प्रेम, शक्ति रूप क्रिया-शक्ति से युक्त हैं, वही देश पुण्य देश मानना चाहिये। इसीलिए प्राचीन भारत के मनीषी जो सतत अपनी ज्ञान प्रेम क्रिया-शक्ति में युक्त हो 'सर्वभूतहिते रताः' के व्रत से दीक्षित होते थे, वे सदैव अग्नि के प्रतीक रूप काषाय वस्त्र को धारण करते थे, उन लोकसंग्रही मनीषियों में आजीवन ब्रह्मचारी भी थे और कुछ सपत्नीक व सन्ततिवान भी। जैसे पीत रंग वीरता का प्रतीक था, उसे सभी वीर पुरुष धारण करते थे; इसी प्रकार काषाय वस्त्र भी बोध, प्रेम युक्त सर्व जन-हिताय कर्मरत मनीषियों का परिचायक था। बाद में जिस प्रकार संन्यास शब्द की दुर्दशा हुई, उसी प्रकार इस काषाय रंग की भी। किन्तु मुझे केवल इस विषय में इतना कहना है कि जैसे कोई व्यक्ति कर्म तथा अग्नि के त्याग मात्र से ही संन्यासी नहीं होता, ठीक उसी प्रकार काषाय रंग भी संन्यास का सर्टिफिकेट नहीं है।

वैज्ञानिकों की खोज के अनुसार रंगों का व्यक्ति के मानस पट पर अपना विशिष्ट प्रभाव पड़ता है और ये रंग विभिन्न प्रकार की भावनाओं के उत्पादक एवं अवबोधक भी होते हैं। भारतीय मनीषी इन तथ्यों से सुपरिचित थे। अतः व्यक्ति की आन्तरिक अवस्थानुसार विविध रंगों के वस्त्रों को धारण करने का नियम भी बनाया था। किन्तु जिस प्रकार हर एक उपयोगी तत्त्वों का प्रयोग

मानव अपनी सुविधा के लिए सही व गलत तरीके से करता आ रहा है, उसी प्रकार इसका भी करता रहा है। अतः काषायवस्त्रधारी विवेकशील सेवाव्रती मनीषी भी हो सकता है और अकर्मण्य, प्रभावी व धोखेबाज भी। हमें गीता में बताये हुए वर्ण-व्यवस्था तथा संन्यासी के लक्षणों पर ही ध्यान देना है। इस सम्बन्ध में सही दृष्टि प्राप्त करने का बस यही एकमात्र उपाय है। दुर्भाग्यवश हम भारतीयों में अपने अतीत के मार्गदर्शक ऋषियों के संदेश को सुनने व समझने के लिए आज न तो रुचि दिखाई देती है और न आस्था ही। यही कारण है कि हम शताब्दियों से नित्य नये चमत्कारों से प्रभावित हो नित्य नये सम्प्रदायों के चंगुल में फँसते जा रहे हैं। मेरा निवेदन है कि श्रद्धा के साथ-साथ हमें स्वयं में सुबोध को भी जाग्रत करना है; जिससे हम सत्य को समझने में सक्षम हो सकें। गीता मानव धर्म की कुंजी है, यदि उसमें आस्थायुक्त हो मनन के साथ सत्य को समझने की चेष्टा की जाय तो केवल वर्णाश्रम धर्म के प्रति अपनाया गया गलत दृष्टिकोण ही नहीं बल्कि इसी प्रकार की अन्य विकृत मान्यताएँ, जो मानवता के लिए धर्म के नाम पर घातक सिद्ध हो रही हैं, उनका भी सदा के लिए अन्त हो सकता है।

('ऋतम्भरा' से साभार)

[पृष्ठ २०४ का शेष]

सरकार लाखों रुपये अछूतों में शिक्षा इत्यादि के कामों के लिए ईसाइयों को दे रही है और वे ईसाई दोषपूर्ण शिक्षा के साथ ईसाई धर्म का विष भी हिन्दू समाज के शुद्ध रक्त में अन्तःक्षेपण कर रहे हैं।

यद्यपि हम शिक्षा को सरकार का विषय नहीं समझते, परन्तु इस बात का तो हम विचार ही नहीं कर सकते कि सरकार किसी जाति के धर्म और मान्यताओं के विरोधी को धन देकर उसे शिक्षा प्रदान के कार्य पर नियुक्त करे।

सरकार जो कार्य अशिक्षित एवं निर्धन हिन्दुओं के लिये कर रही है, वैसा ही वह किसी मुसलमान अथवा ईसाई के लिये नहीं कर सकती। वह मुसलमानों के किसी निर्धन समुदाय में किसी ईसाई को धन देकर शिक्षा के कार्य पर नियुक्त करे और फिर उसको कहे कि अंजील का प्रचार करे। तब देखें कि सरकार और ईसाइयों की भी वहाँ क्या गत बनती है।

भारत सरकार ने सन् १९४७ से १९७० तक हिन्दू धर्म और संस्कृति को अपार हानि पहुँचायी है और इसकी मान्यताओं को भारी आघात पहुँचाया है।

(क्रमशः)

सुन्दरकाण्ड सुन्दर क्यों ? एक प्रत्याख्यान

□

श्री यशोदानन्दन शास्त्री

[सहयोगी पत्रिका कादम्बिनी के दिसम्बर १९७० अंक में 'सुन्दरकाण्ड सुन्दर क्यों ?' शीर्षक लेख में डॉ० दिवेकर ने प्रश्न प्रस्तुत कर स्वयं उसका समाधान करने का प्रयत्न किया है। प्रश्न सुन्दर है, किन्तु समाधान सन्तोष-जनक नहीं। प्रस्तुत लेख में श्री शास्त्रीजी ने उस पर कुछ प्रकाश डाला है। इस विषय के अन्य विद्वानों से भी निवेदन है कि वे इस पर पूर्ण प्रकाश प्रसारित कर सकें तो रामायण प्रेमी पाठकों एवं अनुशीलनकर्त्ताओं के प्रति उपकार होगा। —सम्पादक]

उपरिलिखित शीर्षक से दिसम्बर १९७० को कादम्बिनी पृष्ठ ४४ से ४८ पृष्ठ तक में डा० हरि रामचन्द दिवेकर (अनु० काशीनाथ जोशी) के नाम से एक लेख प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने यह दिखाने की चेष्टा की है कि यहाँ सुन्दर शब्द न तो स्थलवाचक है और न कालवाचक। इसमें रामायण के ऊपर शोध करने वाले प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का गम्भीरतापूर्वक मनन करके वे इस परिणाम पर पहुँचे कि सुन्दरकाण्ड में सुन्दर शब्द स्थल-वाचक नहीं, और न ही सुन्दर शब्द का यहाँ मनोहर अर्थ में प्रयोग हुआ है, बल्कि सुन्दर शब्द का अभिराम अर्थ अवैदिक है। इसका इस अर्थ में प्रथम प्रयोग बौद्ध कवि अश्वघोष ने सर्वप्रथम अपने सौन्दरानन्द संस्कृत काव्य में किया है। बौद्धकाल से पूर्व इस शब्द का अर्थ सुन्दर नेतृत्व में किया जाता था। चूँकि यहाँ श्री हनुमानजी ने सुन्दर नेतृत्व किया था, इस कारण इस काण्ड का नाम सुन्दर काण्ड पड़ा। इसमें उन्होंने सायणभाष्य का आश्रय लिया। साथ में कुछ प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के आधार पर लंकाकाण्ड होने का सन्देह किया। अस्तु।

अब देखना यह है कि सुन्दर शब्द स्थलवाचक है अथवा नहीं। यदि नहीं है तो ठीक, यदि स्थलवाचक है तो इसमें प्रमाण क्या? यदि डॉ० साहब ने मूल रामायणों को देखा होता और बाद में देशी-विदेशी विद्वानों के शोधग्रन्थों के आधार पर अपना मत देते तो कितना सुन्दर होता। आजकल एक ऐसी हवा चल पड़ी है कि इधर के निबन्ध ग्रन्थों को तो पढ़ लेना, किन्तु मूल ग्रन्थ को भूलकर भी न देखना। यही कारण है कि इस विदेशी लहर ने अपने प्राचीन साहित्य के प्रति अश्रद्धा पैदा कर दी है और साथ ही हिन्दू धर्म को बौद्ध धर्म का उच्छिष्ट बताकर भेद नीति का सहारा लिया है। रामचरितमानस में ज़रा सुन्दर शब्द को देखने का कष्ट उठाते तो उन्हें स्पष्ट ही मालूम हो जाता। सुन्दरकाण्ड में पहली चौपाई में वर्णन आता है—

सिन्धु तीर एक सुन्दर भूधर।
कौतुक कूदि चढ़्यो तेहि ऊपर॥

यहाँ पर सुन्दर भूधर का अर्थ सुन्दर नाम का पर्वत है। डॉक्टर साहब ने, सम्भव है कि यहाँ सुन्दर शब्द का अर्थ वैदेशिक प्रच्छन्न बौद्धिक दृष्टि से रमणीय समझा है, जिससे उन्हें अपने सामने पड़ा हुआ शब्द स्थल-वाचक नहीं सूझा। यह उनका दोष नहीं, विदेशीय शिक्षा-पद्धति का यह दोष है। बहुत से शिक्षाविद् अथवा दुराग्रही यह कहने पर उतारू हो सकते हैं कि यह सुन्दर शब्द रमणीय अर्थ न होकर स्थलवाचक शब्द है। श्री तुलसीदास के 'नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्' के शब्दों को ध्यान में रखिये। भक्त शिरोमणि श्री तुलसीदास ने इसमें कोई कपोल-कल्पित बात तो लिखी नहीं। प्राचीन पुराणों तथा रामायणी ग्रन्थों के आधार पर ही 'स्वान्तः सुखाय' सब-कुछ लिखा है। इस चौपाई को आप लोमशरामायण के निम्न श्लोक का पद्यानुवाद ही समझ लीजिये—

सुन्दरं भूधरन्त्वेकमासोदब्धितटेकपिः।
ध्यात्वापुनः पुनारामंकोतुकादारुरोह तम् ॥५॥
ततो गर्जद्हरिवरो बलेन महता युतः॥

—सुन्दरकाण्ड

इस पर भी बस नहीं। इन्होंने तो यही समझ लिया है कि सुन्दर शब्द कहीं स्थलवाची नहीं मिल सकेगा, इस प्रकार मानो हमने किला फतह कर लिया है। अभी तो यह सुन्दर शब्द श्री अश्वघोष बौद्ध कवि का मनोहर अर्थ में समझ रहे है। यदि आगे इन पाश्चात्योपजीवियों का बस चले तो यह कहना

[शेष पृष्ठ २४० पर]

दश वर्ष पूर्व

□

सम्प्रदायवाद की परिभाषा

काँग्रेश के कर्णधार जब-जब इस देश की दुर्दशा देखकर दो क्षण के लिए दुःखित होते हैं। तब-तब वे एक ही बात कहते हैं—सम्प्रदायवाद, जातिवाद, प्रदेशवाद, भाषावाद इत्यादि विश्रृंखलात्मक प्रवृत्तियाँ राष्ट्र को जर्जर किये जा रही हैं और इन प्रवृत्तियों का प्रबल प्रतिरोध होना चाहिये। किन्तु भारतवर्ष की विभीषिका का बारम्बार एक ही विश्लेषण करके भी काँग्रेस के नेता किसी को यह नहीं समझा पाते कि इस विभीषिका का प्रतिकार क्या है। कभी-कभी, कोई-कोई काँग्रेसी नेता एकाध टोटका बतला देता है। काँग्रेसके छुटभैये कुछ दिन तक उस टोटके को लेकर टाँय-टाँय करते रहते हैं। किन्तु अविकल आत्म-पोषण के अतिरिक्त करने-धरने को किसी भी काँग्रेसमैन के पास कुछ नहीं होता।

कुछ दिन पूर्व काँग्रेस के किसी नेता ने एक टोटका बतलाया था—राष्ट्र का 'भावनात्मक समन्वय।' इस टोटके को लेकर कुछ दिन टाँय-टाँय होती रही। कई स्थानों पर कई सौ प्रमुख काँग्रेसमैन एकत्र होकर कॉफी के कई हजार प्याले भी पी गये, और कई मन काजू खा गये। किसी ने पूछा तो उन्होंने कह दिया कि वे लोग 'भावनात्मक समन्वय' की समस्या पर से मिनार कर रहे हैं। किन्तु कॉफी—पान और काजू भक्षण का परिणाम एक ही निकला—कई एक होटल वालों ने कुछ कमाई कर ली। आज तक किसी को यह ज्ञात नहीं कि उससे मिनार ने समस्या का समाधान क्या किया और उसके फलस्वरूप कौन से कर्म का क्रमविकास हुआ।

अभी उस दिन एक नया टोटका लेकर कांग्रेस के भीतर विवाद उठ खड़ा हुआ। काँग्रेस के एक नेता ने निनाद किया कि देश में विश्रृंखला का विष-वमन करने वाले सम्प्रदायवादी राजनीतिक दलों का दमन होना चाहिए। कांग्रेस सरकार ने तुरन्त ही अपने लॉ-मिनिस्टर का परामर्श माँगा। और सुना जाता है कि भारतीय संविधान के अन्तर्गत इस नये टोटके का प्रयोग ही सम्भव नहीं।

अतएव काँग्रेस के नेता किसी अन्य टोटके की खोज कर रहे हैं। किन्तु काँग्रेस के मत में सम्प्रदायवाद की परिभाषा क्या है।

किन्तु इस देश के जनगण के निकट वह परिभाषा स्पष्ट है। उसी दिन से, जिस दिन से महात्मा गांधी कांग्रेस के कर्णधार बने थे। काँग्रेस के मत में सम्प्रदायवाद का एक ही अर्थ है—हिन्दुओं का राष्ट्रवाद। मुसलमानों के सम्प्रदायवाद से तो काँग्रेस सदा से ही समझौता करती आई है और करती रहेगी। ईसाइयों का सम्प्रदायवाद भी काँग्रेस के लिए सर्वथा स्वीकार्य है। और हिन्दू भावना से विमुख हो जाने वाले अकालियों तथा बौद्धों के सम्प्रदायवाद का पोषण करने में भी काँग्रेस ने कभी बाधा का बोध नहीं किया। किन्तु यदि देश के किसी भी अञ्चल में अथवा जनपरिवार में विशुद्ध हिन्दू-राष्ट्रवाद का उदय होता है तो काँग्रेस के नेताओं की नींद हराम हो जाती है। और इस देश के सारे वामपन्थी, गांधीवादी और सर्वोदयवादी भी एक-स्वर से काँग्रेस के साथ स्यापा करने बैठ जाते हैं।

किन्तु अब समय आ गया है कि हिन्दू समाज आँखें खोलकर काँग्रेस नामधारी इस एंग्लो-इंडियन और अर्द्धकम्युनिस्ट संगठन का सच्चा स्वरूप देख ले। हिन्दू-राष्ट्रवाद के पूर्णोदय के लिए काँग्रेस की पूर्ण पराजय नितान्त प्रयोजनीय है। **(शाश्वत वाणी, मई १९६१)**

●

[पृष्ठ २३६ का शेष]

के गुणानुवाद गाकर श्रद्धांजलि अभिव्यक्त कर रहा है। श्रद्धा को अभिव्यक्त करने के यही कुछ तौर-तरीके हैं। मेरी भावना है कि उस महापुरुष के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि तभी होगी जबकि उनके द्वारा प्रकाशित अन्य ग्रन्थों के साथ 'कल्याण' के प्रकाशन के प्रतियों की संख्या ड़ेढ़ लाख-दो लाख तक ही सीमित न रहकर कई गुनी बढ़ जाये। अरे जनसंख्या की दृष्टि से डेढ़-दो लाख की संख्या तो प्रतिशत की संख्या में ही नहीं ठहरती। अतः आज धर्मपरायण जनता को उनके जीवन की सबसे बड़ी सेवा-रूप में प्राप्त 'कल्याण' उपलब्धि के विकास में अपना सहयोग देकर श्रद्धांजलि अर्पित करनी चाहिए। इसी आत्मनिवेदन के साथ उस मुक्त पुरुष को प्रणाम करते हुए परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि उनके स्नेही जनों व परिवार के लोगों को इस महान् आघात के सहन करने की शक्ति प्रदान करे। ●

नीर-क्षीर विवेक

हंस

"बंग देश अर्थात् पूर्वी पाकिस्तान धधक रहा है। वहाँ मानवता सिसक रही है। नर-संहार हो रहा है। अत्याचार, अनाचार का कहीं अन्त दृष्टि-गोचर नहीं होता। निहत्थे देश-प्रेमियों पर गोली वर्षा हो रही है। संसार के इतिहास में ऐसा जघन्य कृत्य न आज तक हुआ और न कभी होगा। बंगला देश स्वाधीन होकर रहेगा। अब उसको कोई शक्ति रोक नहीं सकती।"

इस प्रकार के शीर्षकों एवं कथनों से न केवल भारत के अपितु संसार के समाचार-पत्र आजकल भरे रहते हैं। किसी एक पृष्ठ तक ही ऐसे समाचार सीमित नहीं रहते अपितु किसी भी समाचार-पत्र के किसी भी पृष्ठ पर आप इस प्रकार के समाचारों को पढ़ सकते हैं। जैसे कि सारे संसार का कारोबार ठप्प हो गया है और एक मात्र कार्य पाकिस्तान का नर-संहार करना और समाचार पत्रों का उसको बड़े-बड़े अक्षरों में प्रकाशित करना ही रह गया है।

सम्भवतया इसमें सन्देह न हो कि वहाँ नर संहार हो रहा है। विद्रोही जब विद्रोह करता है तो वह नर-संहार का आह्वान करता है। सत्ता जब उसको दबाती है तो वह साम-दाम-दण्ड-भेद सभी प्रकार से दबाती है। किन्तु इन सबमें दमन ही एक ऐसा अमोघ शस्त्र है जो सदा कारगर सिद्ध होता है।

कोई इस समस्या का ऐसा समाधान प्रस्तुत नहीं कर रहा है कि बंग देश के आन्दोलन को शान्त करने के लिए पाकिस्तान को किस प्रकार का पग उठाना चाहिये। पाकिस्तान के पग की सर्वत्र निन्दा हो रही है और पूर्वी बंगाल के आन्दोलन के समर्थन में ध्वनियाँ प्रतिध्वनित हो रही हैं। इस तथ्य को सबने भुला दिया है कि पूर्वी बंगाल पाकिस्तान का एक अंग है और वहाँ आन्दोलन होने पर पाकिस्तान सरकार उसका दमन कर रही है। दमन के लिए पाकिस्तान उसी नीति का आश्रय ले रहा है जिसका कि सत्तासीन व्यक्ति ले सकता है।

इस सबसे हमारा यह अभिप्राय नहीं कि पूर्वी पाकिस्तान में जो-कुछ हो रहा

है हम उसका समर्थन करते हैं। किन्तु हम इतना कहते हैं कि इस आन्दोलन का एकांगी अथवा एकपक्षी निरीक्षण-परीक्षण नहीं होना चाहिये। दोनों की समस्याओं को समझकर स्वतन्त्र बुद्धि से इस पर विचार कर समाधान प्रस्तुत किया जाना चाहिये और जो नर-संहार हो रहा है, उसके अवरोध का यत्न भी करना चाहिये।

भारत का अर्थात् इस देश के सर्वसाधारण वासियों का यह दुर्भाग्य है कि पूर्वी बंगाल की जनता को जिस प्रकार पश्चिमी पाकिस्तान की सत्ता ने दबाकर रखा है उसी प्रकार भारत के जनमानस को यहाँ के तथाकथित राजनीतक वर्ग ने भ्रष्ट कर दिया है। इस देश में अनुकरण की राजनीति की जड़ें इतनी सुदृढ़ हो गई हैं कि उस विषवृक्ष का उन्मूलन नितान्त कठिन हो गया है।

भारतवासियों का दूसरा दुर्भाग्य यह है कि वे प्रकृति से भावुक हैं। भावुकता के प्रवाह में वे इस प्रकार बह जाते हैं कि उचितानुचित का विचार किये बिना किसी भी आन्दोलन का अन्ध-समर्थन करने पर उतारू हो जाते हैं। पूर्वी बंगाल के आन्दोलन को भारत के प्रबल समर्थन में इन्हीं दो कारणों की प्रधानता है। देश का कोई समाचार-पत्र अथवा पत्रिका नहीं कि जिसने पाकिस्तान के अत्याचार की धज्जियाँ न उड़ाई हों। कोई नेता ऐसा नहीं है कि जिसने इस घटना पर जार-जार आँसू न बहाये हों। इस प्रकार के समाचार-पत्रों और नेताओं में उन सभी दलों और समूहों के पत्र एवं नेता भी सम्मिलित हैं जो स्वयं को राष्ट्रवादी एवं हिन्दुत्व-प्रेमी कहते हैं।

इस सब प्रक्रिया में शेख मुजीबुर्रहमान का जो जय-जयकार इस भारत में हो रहा है उतना तो शायद इन्होंने गांधी और नेहरू का भी नहीं किया होगा। तथाकथित हिन्दुत्वप्रेमियों ने भी गांधी नेहरू का जय-जयकार भले ही न किया हो परन्तु मुजीब के प्रति जो श्रद्धा उन्होंने व्यक्त की है वह कदाचित अपने पिछले पापों (अर्थात् गांधी और नेहरू की जय-जयकार न करने के पापों) का प्रायश्चित है।

हम समझते हैं कि भारत में इस आन्दोलन के सूत्रधार कम्युनिस्ट हैं। और इसमें भी कदाचित् किसी को सन्देह नहीं होगा कि इस आन्दोलन को भारत सरकार का सीधे भले ही न हो किन्तु किसी-न-किसी रूप में समर्थन अवश्य प्राप्त है। सरकार के समर्थन का कारण हम भली प्रकार समझ सकते हैं। अपने कुकृत्यों पर अथवा कमजोरियों पर आवरण डालने के लिए जनता को आन्दोलन में लगाये रहना यह सत्ताधीशों का परमधर्म होता है।

पाकिस्तान द्वारा भारत के विमान का अपहरण करवाकर उसको विध्वंस

कर देना इतनी बड़ी घटना है कि उसके आश्रय भारत सरकार यदि चाहती तो पाकिस्तान का विध्वंस कर सकती थी। पूर्वी बंगाल की ओर भारत के जनमत को मोड़ने की अपेक्षा यदि पाकिस्तान के इस संकट में घिरे रहने के सुअवसर से भारत सरकार पाकिस्तान से बदला लेकर संसार के सम्मुख उसका माथा नीचा और अपना माथा ऊँचा करने के सुअवसर से लाभान्वित होती। किन्तु स्वाभिमान की भावना हो तब न! भूखे पूर्वी बंगालियों के स्वदेश प्रेम के गीत गाने में ही आज का अधिकांश भारतवासी अपनी देशभक्ति की इतिश्री समझ रहा है और सरकार उसको इसके लिये प्रोत्साहित कर रही है।

भारतवासी जिस शेख मुजीबुर्रहमान के गुणानुवाद गा रहे हैं, वे भूल गये हैं कि यह वही मुजीबुर्रहमान है जिसने नोआखाली के नर-संहार में सुहरावर्दी के कंधे-से-कंधा मिलाकर दानवता का वह नग्न नृत्य किया और कराया था कि मानवता कराह उठी थी। गांधी जैसे मुस्लिमभक्त को भी दाँव पर लगे अपने नेतृत्व को बचाने के लिए नोआखाली जाकर मगरमच्छ के आँसू बहाने पड़े थे। नोआखाली में किये गये नर-संहार से पूर्वी बंगाल की रक्त से रंजित नदियों का रक्तवर्ण कदाचित अभी भी विद्यमान हो, किन्तु भारतवासियों के मनों से वह सब धुल गया है, मिट गया है।

नोआखाली की घटना को बीते दो दशक हो गये हैं। इस अवधि में कुछ व्यक्ति इधर-उधर हो गये होंगे। नोआखाली के नग्न नेता गांधी ही अब नहीं रहे। जो उसके बाद जन्मे हैं और आज तरुणाई प्राप्त कर चुके हैं उनके लिए वह आँखों देखी घटना न होने से उसका महत्त्व कम हो सकता है। किन्तु ६ मास पूर्व की घटना को भी क्या इस प्रकार भुलाया जा सकता है? प्रतिदिन पूर्वी पाकिस्तान से हिन्दू शरणाथी के रूप में भारत आते रहते हैं, यह भले ही सब सामान्य घटना हो, किन्तु ६ मास पूर्व साठ हजार हिन्दुओं का समूह शरणार्थी बनकर आया था जो अभी भी कलकत्ता की गलियों में मारा-मारा फिर रहा है उसको भी भुला दिया गया। तब कहाँ गया था वह मुजीब? क्यों नहीं उनकी रक्षा का कोई प्रयत्न किया गया?

स्पष्ट है कि उस घटना की ओर भारतवासियों का ध्यान बटाने के उद्देश्य से भारत सरकार देशवासियों का ध्यान पूर्वी बंगाल की घटनाओं की ओर मोड़ रही है। अन्यथा पाकिस्तान उप-उच्चायुक्त ने जब घोषणा की थी कि वह पश्चिमी पाकिस्तान की सत्ता को अस्वीकार करता है तो उसी समय उससे उच्चायुक्त का कार्यालय खाली कराकर उसमें शरणार्थियों को शरण दे देनी चाहिये थी। किसी को राजनैतिक शरण देना कोई बुरी बात भले ही न हो, अपने हिन्दू भाइयों को

शरण न देकर उनको दुत्कारा जाय यह कहाँ का न्याय है ?

पूर्वी पाकिस्तान में हिन्दुओं पर जो अत्याचार हुए हैं क्या उन सबके लिये मुजीबुर्रहमान भी दोषी नहीं है ? क्या जिन पूर्वी बंगालियों के लिए आज भारतवासी अपनी आन्तरिक वेदना का प्रकटीकरण कर रहे हैं उन्होंने हिन्दुओं के उस नर-संहार में भाग नहीं लिया था ? फिर इस तथ्य को इतनी जल्दी क्यों भुलाया जा रहा है ? समाचार-पत्र पढ़ने वाले पाठकों ने संसोपा के महामन्त्री जौर्ज फर्नान्डिस की लन्दन में मुजीब से भेंटवार्त्ता का विवरण पढ़ा होगा। उसमें उल्लिखत इस बात को कोई किसी प्रकार का रूप दे—"जब हिन्दुस्तान में एक मुसलमान मारा जाता है तो मेरा आन्दोलन दस कदम पीछे हट जाता है। उधर भी कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो साम्प्रदायिकता के आधार पर चढ़कर हमारे आन्दोलन को असफल बनाना चाहते हैं।" किन्तु हम यही कहेंगे कि मुजीबुर्रहमान पहले मुसलमान है, बाद में वह बंगाली हो सकता है या कुछ और भी। परन्तु कम्युनिस्टों के लिये तो मुसलमान और गैर-मुसलमान में किसी का भेद नहीं। यही कारण है उनकी ओर से उसको समर्थन प्राप्त हो रहा है। और प्रतिक्रियावादी जिन्होंने इस अवसर पर वास्तव में प्रतिक्रियावादिता का प्रमाण प्रस्तुत किया है उनके स्वर में समवेत संधान कर रहे हैं।

"ऐ पार बाँगला, ओ पार बांगला" में जिनको बन्धुत्व की गंध आती है उनकी बुद्धि पर हमें तरस आता है। मुजीबुर्रहमान का स्वप्न है कि इस प्रकार की आवाज उठाकर वह पूर्वी और पश्चिमी बंगाल को एक करके भारत और पाकिस्तान से पृथक एक तीसरा ही राज्य स्थापित करे। कम्युनिस्टों को इसमें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं हो सकती। क्योंकि उनका छोटा भाई भाशानी वहाँ इसके लिए सक्रिय है। भाशानी चीनी कम्युनिस्ट है और मुजीब रूसी। किन्तु उद्देश्य एक होने के कारण इस समय दोनों में पटरी बैठी हुई है। इधर भारत के कम्युनिस्टों की ओर से उन्हें पूर्ण समर्थन प्राप्त है ही।

"ऐ पार बाँगला, ओ पार बाँगला" में बन्धुत्व की गन्ध सूँघने वालों को हम बता देना चाहते हैं कि मुजीब दोनों बंगालों को मिलाकर तीसरा राज्य 'स्वर्णिम बांगला' के नाम से स्वतंत्र इस्लामी राज्य बनाना चाहता है। ६ मास पूर्व पाकिस्तान में जो चुनाव हुए हैं और जिसमें से कम्युनिस्टों का यह हीरो उभरा है उन निर्वाचनों में मुजीब ने अपने भाषणों में कहा है—"जहाँ शेष भारत और पश्चिमी पाकिस्तान में 'काकेशियन' वंश के लोग बसते हैं वहाँ आसाम, पश्चिमी बंगाल और पूर्वी बंगाल में केवल मंगोल वंश के लोग बसते हैं। 'हम पूर्ण रूपेण' एक अलग मानव वंश हैं। हमारा भारत के आर्यों व द्रविड़ों

से अथवा पश्चिमी पाकिस्तान के इरानियों एवं पठानों से कोई सम्बन्ध नहीं है। इन लोगों में और हम में एक समान-सी कोई बात नहीं है। हम स्वयं को पाकिस्तानी भी कहना नहीं चाहते, हम पाकिस्तानी नहीं हैं। हम केवल बंगाली हैं। इससे न कुछ अधिक हैं और न कम। बंगाली के सिवाय हम दूसरा कुछ भी बनना नहीं चाहते।"

इस प्रकरण में हम 'मदर इंडिया' अंग्रेजी मासिक के सम्पादक श्री बाबूराव पटेल के साहस का समर्थन करते हैं कि प्रवाह के विपरीत चलकर उन्होंने हिन्दुओं को सावधान करने का यत्न किया और अपने पत्र में विशद रूप में पूर्वी बंगाल काण्ड की विवेचना प्रस्तुत की। अन्त में हम श्री पटेल के निष्कर्ष को अपना निष्कर्ष भी मान कर मुजीब के विषय में उनकी धारणा को यहाँ उद्धृत करते हैं।

पूर्वी पाकिस्तान यदि मुजीब के नेतृत्व में पश्चिमी पाकिस्तान से अलग होना चाहे तो कोई भी पश्चिमी पाकिस्तान वाला उसे रोक नहीं सकता। न याह्या खाँ रोक सकता है और न उसकी सेना। पूर्वी पाकिस्तान पश्चिमी पाकिस्तान से अलग होगा तो उसमें भारत का क्या बिगड़ने वाला है। हमारी चिन्ता उससे भिन्न है। पश्चिमी बंगाल का पूर्वी पाकिस्तान में मिलाया जाना हमारे लिये चिन्ता का विषय है। भारत को जीतकर हमारे लाल किले पर चाँद का हरा झंडा गाड़ने की खुली धमकी देने वाले दुस्साहसी भुट्टो से भी 'संयुक्त स्वर्ण बंगाल' की योजना का नारा देने वाला मुजीब हमारी प्रादेशिक एकता के लिए अधिक खतरनाक है।

भुट्टो की चुनौती का सामना हम युद्ध के क्षेत्र में कर सकते हैं। और हमारे 'मित्र' पाकिस्तान से निबटने की खुली छूट हमें दे दें तो हम पश्चिमी पाकिस्तान को जीत भी सकते हैं। पर मुजीब की पश्चिमी बंगाल को पूर्वी बंगाल में मिलाने की शैतानी योजना का प्रतिकार हम किस प्रकार कर सकेंगे? पूर्वी और पश्चिमी बंगाल के हिन्दू और मुसलमान, बंगाली के नाते एकत्रित होकर एक अलग 'स्वर्ण बंगाल' निर्माण करना चाहें तो हम उन्हें कैसे रोक सकेंगे?

ऊपर से जनतन्त्री दिखाने वाले मुजीब की इस चुनौती का मुँहतोड़ उत्तर देकर बंगाल को भारत का अंग बनाये रखने का एक ही रास्ता हमारे लिए खुला है और वह यह कि हम पूर्वी बंगाल पर हमला करें और जीतकर उसको भारत में मिला लें। पर मुजीब द्वारा अपनी योजना कार्यान्वित करने से पूर्व ही हमको यह सब करना होगा। किन्तु दुर्भाग्यवश इस विषय में हम पहल नहीं करेंगे, क्योंकि हमारे देश के दुर्दैव से सत्ता की भूखी बन हमें कम्युनिस्ट विनाश की ओर ले जाने वाली इन्दिरा गांधी आज देशपर राज्य कर रही है। •

आध्यात्मिक जगत् के युग निर्माता पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

□

श्री धर्मनारायण आचार्य

माँ भारती की गोद में कई युग निर्माताओं ने जन्म लेकर गोद की शोभा बढ़ाई है। वर्तमान युग में श्री पोद्दारजी भी माँ भारती के एक ऐसे लाल थे, जो कि समष्टि के ही चिन्तन में गहरे डूबकर जगत 'कल्याण' के रूप में आविर्भूत हुए। भारतीय वाङ्मय परम्परा से लेकर अब तक के सांस्कृतिक सूत्रों को जिस तरह समाज के सामने प्रकाशित किया, उसका अब तक के इतिहास में मुकाबला नहीं। आने वाली सन्तति युगों तक भाईजी (श्रीपोद्दारजी) की सेवाओं के प्रति ऋणी रहेगी।

आध्यात्मिक जगत् के युग निर्माता पूज्य पोद्दारजी के पूर्वजों की मूल-भूमि राजस्थान के पुराने बीकानेर राज्य का रतनगढ़ नामक नगर है। राजस्थान वीरों और भक्तों की भूमि रही है, जहाँ वीरता में राणा प्रताप का व भक्ति में मीरां का नाम इस युग में लिया जाता है, वहाँ अब आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और कर्मयोगी के रूप में भाईजी का नाम सर्वप्रथम लिया जायेगा। 'कल्याण' के कर्मठ और सफल सम्पादक श्री पोद्दारजी का जन्म १७ सितम्बर १८९२ में हुआ। इनके पिता श्री भीमराज और माताश्री रिखीवाई थी। दैवयोग से इनकी माता का स्वर्गवास डेढ़ वर्ष बाद ही हो गया और इस तपोपूत के भौतिक शरीर का व आध्यात्मिक संस्कारों का लालन-पालन व पोषण दादी माँ रामकौर के चरण में होने लगा। घर के दीपक ही नहीं वर्तमान के इस परम उज्ज्वल प्रकाश को बड़े ही लाड़-प्यार से सार-सँभार किया गया जिसकी कृपा से इस महापुरुष ने बड़े होकर अपने कुल का ही उद्धार नहीं किया, वरन् देश-विदेश के लाखों जनों को उद्धार पथ पर अग्रसर भी कर दिया।

संत कृपा और गुरु दीक्षा

परमात्मा जो जिससे कार्य करवाना चाहता है वह उसके जीवन की रचना

उसी प्रकार करता है और आरम्भ से ऐसे संयोग बनाता है कि अन्य को तो वह प्रतिकूल परिस्थितियाँ दिखाई पड़ती हैं लेकिन साधक के श्रेयस्कर जीवन के लिए वे अनुकूल होती हैं। ऐसा ही कुछ श्री पोद्दारजी के जीवन-क्रम का घटना चक्र है। बाल्यकाल में ही माता-पिता का विद्रोह तक ही प्रतिकूल परिस्थिति स्थिर नहीं हो जाती अपितु ४ वर्ष की अवस्था में ही जन्म स्थान शिलांग में सन् १८९६ में एक प्रलयंकर भूकम्प आया। उस समय श्री पोद्दारजी मलबे के नीचे दब गये फिर भी प्राण-रक्षा हो गई। घटना-चक्र के कुछ ही दिनों बाद दादी माँ के साथ कलकत्ते आ गये और इस काल में इनका रतनगढ़ आना-जाना होता रहा। बाल्यकाल से ही दादी माँ के द्वारा प्राप्त सत्संग के वातावरण का लाभ मिलता था, जिससे इनका सम्पर्क निम्बार्क सम्प्रदाय के महात्मा वृजदासजी से हुआ और इन्हीं से दादी माँ ने इन्हें दीक्षा दिलाई। अपने तप, त्याग और सेवा के प्रताप से स्थानीय गौड़ीय सम्प्रदाय के महन्त मेहरदास एवं नाथपंथी महात्मा लक्खन नाथ के भी कृपापात्र बन गये, जिसके परिणाम स्वरूप श्री पोद्दारजी के हृदय में गीता और कृष्ण-भक्ति के गर्भस्थ अंकुर प्रस्फुटित हुए।

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी

अंग्रेजी राज्य के साम्राज्य को समाप्त करने का आन्दोलन देश में चल रहा था। उस समय भाईजी की आयु १३ वर्ष की थी। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के इस महायज्ञ में आप भी पीछे नहीं रहे और लार्ड कर्जन के बंग-भंग विधान की प्रतिक्रिया में चलाये गये आन्दोलन में इन्होंने सक्रिय भाग लिया और स्वदेशी वस्त्रों को पहनने की प्रतिज्ञा की, जिन पर अन्त तक भी दृढ़ रहे। सामाजिक सेवा, राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रियता और समाज सुधार जैसे कार्यों का सफल नेतृत्व देखकर उस काल के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता अरविन्द घोष और विपिनचन्द्र पाल के घनिष्ट सम्पर्क में आये और कई कोटि के नेता के स्नेहभाजन बन गये। तो स्वाभाविक था कि अंग्रेजी शासन की शनिदृष्टि इन पर पड़ ही गयी और पुलिस ने इनको राजद्रोही करार देकर गिरफ्तार कर लिया, जहां इन्हें २१ माह तक नजरबन्दी का जीवन बिताना पड़ा।

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के आन्दोलन में भाग लेने के कारण गृहस्थी सारी अस्त-व्यस्त हो गई और व्यापार में करीबन २०,००० रुपये का कर्ज भी हो गया जिसको कि चुकाने में करीबन २० वर्ष लगे। जीवन के ऐसे कुछ घटना-चक्रों में से गुजरने के कारण विभिन्न अनुभवों के आधार पर चिन्तन-मनन की धारा अपने स्वाभाविक स्वरूप की ओर झुकी और निश्चय किया कि जीवन सार्थक

बनाने के लिए बाह्य रक्त-रञ्जित क्रान्ति से तो आंतरिक अहिंसा पूर्ण आध्यात्मिक क्रान्ति की जावे जो सही रूप से स्थायी दुःख से निवृत्ति दिला सकती है।

कल्याण का सम्पादन

अविरल सत्संग के प्रभाव से मन धीरे-धीरे व्यापार से हट गया और अत्यधिक समय समाज-सेवा व साधु-सन्तों के सत्संग में लगने लगा। संवत् १६८३ चैत्र शुक्ल १,२,३ को दिल्ली में मारवाड़ी अग्रवाल महासभा का अधिवेशन हुआ और उसमें धार्मिक मासिक पत्र निकालने की चर्चा हुई। लगन के पक्के समय की अवस्था को समझने वाले भाईजी ने 'कल्याण' के प्रकाशन के दृढ़ निश्चय की सहमति सेठ जयदयालजी गोयन्दकाजी से प्राप्त कर प्रथम अंक का श्रावण शु० ११ सं० १६८३ को प्रकाशन कर दिया। १३ अंक निकलने के अनन्तर दूसरे वर्ष ही इस पवित्र कार्य में प्रेस का होना अति आवश्यक समझा गया। आखिर यह स्वप्न भी साकार हुआ और गीता प्रेस गोरखपुर की स्थापना हो गई।

'कल्याण' जैसा कि पत्र का नाम है और गीता जैसा प्रेस का नाम है दोनों ने अपने नाम के अनुकूल ही कार्य किया है। 'कल्याण' जन-जन के कल्याण में संलग्न रही। वहाँ की प्रेस ने गीता की ही नहीं सभी धार्मिक ग्रंथों की लाखों, करोड़ों प्रतियाँ छापकर अध्यात्म, संस्कृति, साहित्य और राष्ट्र की अद्वितीय सेवा की है। गीता प्रेस से निकलने वाली पुस्तकों के कम मूल्यों की तारीफ आज कौन नहीं करता। 'कल्याण' के इन ४४ वर्षों की सेवा से देश में धर्म, साधना, भक्ति, दर्शन, सदाचार, समाज सुधार-क्षेत्र में जितना कार्य इसके द्वारा हुआ है, उतना कोई अन्य पत्र प्रकाशन नहीं कर पाया।

पोद्दारजी के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता थी कथनी और करनी में एकता। सभी धर्मावलम्बियों के प्रति उदारता के व्यवहार के साथ आदरभाव की भावना। आपके मित्रगण न केवल सनातनी थे अपितु सिख, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि सभी थे। एक में वह स्वयंसिद्ध थे तो साथ ही परम साधक भी। जीवन का प्रत्येक क्षण सृष्टि की सेवा में लगा रहा।

ऐसे महापुरुष का यह भौतिक शरीर २२ मार्च १६७१ को पंच तत्वों में विलीन हो गया। आज वे कल्याण के रूप में देश-विदेश में विद्यमान हैं और रहेंगे लेकिन सनातन जगत् को जो यह हानि हुई है, वर्षों तक इसके अभाव की पूर्ति होना मुश्किल लग रहा है। धार्मिक जगत् आज कई रूप से उनके जीवन

[शेष पृष्ठ २२८ पर]

समाचार समीक्षा

विजय के बाद प्रथम पराजय

विगत मध्यावधि निर्वाचनों में इन्दिरा को जो अप्रत्याशित सफलता प्राप्त हुई थी उसकी विफलता का दौर प्रारम्भ हो गया है। नागपुर क्षेत्र के लोक-सभा निर्वाचन में इन्दिरा सरकार और इंडीकेट कांग्रेस के सर्वस्व समर्पण के बाद भी वह स्थान महा विदर्भ राज्य संघर्ष समिति के नेता और फारवर्ड ब्लाक के प्रत्याशी श्री जे० बी० धोते को प्राप्त हुआ है। सत्तासीन शंकालु कांग्रेस के प्रत्याशी ने सन्देह का लाभ उठाने के लिये पुनर्मतगणना की माँग की और उसकी माँग को स्वीकार कर मतगणना तो की गई किन्तु परिणाम में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ।

एक और भी पराजय

इन्दिरा सरकार के तथाकथित मित्र देश अर्थात् पाकिस्तान ने भारतीय विमान का जो अपहरण किया था उसका मुआवजा तो उसने नहीं दिया और मलवे की माँग कदाचित इन्दिरा ने ही नहीं की होगी। अस्तु !

पाकिस्तान ने उस विमान अपहरण की जाँच करवाई थी और उसमें पाया गया कि विमान का अपहरण स्वयं भारत ने करवाया था। २० अप्रैल के समाचार-पत्रों में पाठकों ने इस जाँच के निर्णय को पढ़ा होगा।

आयोग का कथन है कि नकली हथगोलों और बच्चों की खिलौना बन्दूकों से विस्फोट का वही काम किया जा सकता है जो असली हथगोलों और बन्दूकों से। जाँच आयोग के अनुसार विमान के अपहरणकर्ताओं के पास नकली हथगोले और बन्दूकें थीं। निर्णय का निष्कर्ष यही है कि अपहरण की व्यवस्था भारतीय गुप्तचर विभाग ने स्वयं की थी ताकि भारत और पाकिस्तान के बीच संघर्ष की स्थिति पैदा की जा सके। इसमें पाकिस्तान का कोई हाथ नहीं रहा है।

इस आयोग के प्रतिवेदन के बाद सम्भवतया भारत सरकार अपने मुआवजे की माँग को स्थगित कर देगी और आयोग के निर्णय को मान्य स्वीकार कर

लेगी। अन्यथा माँग दोहराने से पड़ोसी देश से हमारे सम्बन्ध बिगड़ सकते हैं। मित्र देश से सम्बन्ध बिगड़ना राजनैतिक समझदारी नहीं समझी जाती।

समाचारपत्रों की भर्त्सना

नव-निर्वाचित और नवगठित इन्दिरा सरकार में नव नियुक्त सूचना मन्त्री श्रीमती नन्दिनी शतपथी ने २० अप्रैल को इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मास कम्युनिकेशन के द्वितीय अधिवेशन के अवसर पर मध्यावधि चुनावों के दिनों में भारतीय समाचारपत्रों की प्रक्रिया की न केवल आलोचना की अपितु प्रताड़ना भी की।

उनका कथन था कि ऐसा प्रतीत होता था कि ये समाचार-पत्र जनता के लिए नहीं अपितु एक वर्ग विशेष के लिए कार्य कर रहे हैं। यही कारण है कि उनके समाचार आदि सत्य से सर्वथा परे और शालीनता रहित होते थे। उनकी दृष्टि में ऐसा प्रतीत होता था कि ये पत्र जनता को कुछ कहने की अपेक्षा नेताओं को कहना चाह रहे थे। इस प्रकार जन सामान्य से स्वयं को पृथक् कर रहे थे।

इस मन्त्रालय का कार्यभार सम्हालने के तुरन्त बाद श्रीमती शतपथी की यह षट्पदी समाचार-पत्र जगत में क्या खलबली मचायेगी यह तो भविष्य ही बतायेगा, किन्तु हम समझते हैं कि कतिपय क्रीत समाचार-पत्रों के अतिरिक्त अन्य सभी शतपथी के तथाकथित सत्पथ पर पदसंचार नहीं करेंगे। इन्दिरा प्रेस और उसका सहयोगी कम्युनिस्ट प्रेस भले ही उसका अनुसरण करता रहे। शतपथी को समझ लेना चाहिये कि समाचार-पत्र की अपनी विशेषता होती है, उसकी एक लीक होती है उस लीक का त्याग वही पत्र कर सकते हैं जिनको क्रय किया गया हो। शतपथीजी को चाहिये कि मन्त्रालय का भार सम्हालते ही इस प्रकार का प्रलाप न कर सत्पथ पर चलें।

कार और सरकार

कार, सरकार और बेकार, इन्दिरा परिवार के लिये ये शब्द बड़े महत्त्वपूर्ण हो गये हैं। कार बनाने वाले संजय अब सरकार बनाने की प्रक्रिया में पड़ गये हैं। वे अब मात्र स्वयंभू नेता नहीं रहे। उनको जन-समर्थन भी प्राप्त हो गया है। यदि विश्वास न हो तो बापूधाम और चाणक्यपुरी के उन झुग्गी-झोंपड़ी वालों से पूछ लीजिए कि वास्तव में नेता हैं कि नहीं जो उनके समीप प्रतिनिधि-मण्डल में जाकर उनसे अपना दुखड़ा रोकर के आये हैं। उन्होंने संजय

से सहायता की प्रार्थना की है ।

आश्चर्य की बात तो यह है कि संजय ने भी उनको आश्वासन दिया है कि वह उनके कार्य में अवश्य ही सहायता करेगा । आश्वासन देना नेता का प्रथम चिह्न है । अनर्गल प्रलाप तो संजय करता ही था अब आश्वासन भी देने लगा है ।

स्पष्ट है कि जिस प्रकार मोतीलाल नेहरू ने जवाहरलाल के लिये क्षेत्र तैयार किया, जवाहरलाल ने इन्दिरा के लिए क्षेत्र तैयार किया, उसी प्रकार अब इन्दिरा भी अपने 'कार' बनाने वाले बेटे को 'सरकार' बनाने का परमिट देने की तैयारी कर रही है । कार का परमिट कारगर हो या न हो किन्तु सर-कार बनाने का परमिट तो ऐसा है कि उसकी असफलता के लिए कोई स्थान नहीं ।

संजय अब कार भी बनायेगा और सरकार भी । धन्य हैं वे अनुगामी और धन्य हैं वे नेता । और अब धन्य होगी उनसे यह भारत धरा ।

गिरि और गिरा

गत मास भी हमने राष्ट्रपति गिरि के हिन्दी द्वेष की ओर संकेत किया था । उस घटना को सर्वथा अप्रत्याशित नहीं कहा जा सकता । देश का राजकाज देश की भाषा में हो, यह बात आज की नहीं, तब की है जब राष्ट्रीय आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ था । इसने १९५० में संविधान के अनुच्छेद ३४३ में मूर्तरूप पाया । विधान निर्माताओं ने यह निर्णय किया कि राजकाज हिन्दी में होगा । किन्तु अन्तरिम अवधि के लिए अंग्रेजी के प्रयोग की इजाजत देकर उसने १५ वर्ष की अवधि निर्धारित कर दी थी । यही अवधि अब सुरक्षा का मोहरा बन तो गई है किन्तु फिर भी कोई यह नहीं कहता कि अंग्रेजी अनन्तकाल तक बनी रहेगी ।

ऐसी अवस्था में यदि देश के सर्वोच्च आसन पर विराजमान राष्ट्रपति से कोई यह आशा करे कि वह अपने देश की किसी भाषा में बोलें तो इस माँग को व्यवधान कहकर दण्डित करने का 'व्यवधान' एक मार्क्सवादी कम्युनिस्ट के शब्दों में 'शाही तामझाम' बरकरार रखने का प्रयत्न होगा । इस आरोप से इनकार नहीं किया जा सकता कि आजादी के बाद जिन लोगों के हाथ में देश की बागडोर आई है उनमें राष्ट्र-भाषा का स्वाभिमान जागा ही नहीं और हिन्दी के लिए केन्द्रीय और प्रादेशिक स्तर पर भी जो-कुछ हुआ है उसके अधिकांश का उद्देश्य हिन्दी अनुवाद के बहाने कुछ लोगों की परवरिश करना है हिन्दी में मौलिक काम का क्षेत्र बढ़ाना नहीं ।

जो व्यक्ति राष्ट्रपति भवन के अंग्रेजी न जानने वाले कर्मचारियों से टूटी-फूटी हिन्दी बोल लेता हो, जो व्यक्ति मजदूर आन्दोलन का अगवा होने के नाते निम्नतम लोगों के सम्पर्क में रह चुका हो और जो स्वयं भी विश्वास करता हो कि देश का काम देश की भाषा में होना चाहिये उसके लिये अंग्रेजी अनिवार्य थी ऐसा कहना अपनी अंग्रेजी की गुलामी सारे देश पर थोपना है।

इससे भी अधिक अशोभनीय था राष्ट्रपति का व्यवहार। न केवल यहाँ अपितु मध्यप्रदेश में भी एक स्थान पर दीक्षान्त समारोह में भाषण देते हुए उन्होंने उसी अभद्रता का व्यवहार किया। "मैं राष्ट्रपति आज्ञा देता हूँ", "तुम निकल जाओ", इस प्रकार की भाषा साधारण व्यक्ति के मुख से भी शोभा नहीं देती, गिरि तो फिर भी राष्ट्रपति हैं। क्या गिरि महोदय अपनी गिरा की गरिमा पर कुछ गौर करेंगे? •

[पृष्ठ २२६ का शेष]

शुरू कर देंगे कि यह सुन्दर शब्द तो विदेश से आया है और रामायणों में विक्षिप्त किया गया है। इनके ऊपर तो भारतीय साहित्य को निकृष्ट प्रकट करने और अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन करने का भूत सवार है। पूर्ववर्ती साहित्य को देखने में यदि कष्ट होता था तो आधुनिक हिन्दी कोष को देख लेते, जैसा कि 'बृहत् हिन्दी कोष' के तृतीय संस्करण, पृष्ठ १५११ में सुन्दर शब्द के कई अर्थ लिखते हुए 'लंका का एक पर्वत' अर्थ भी लिखा हुआ है।

जो लोग यह कहते नहीं थकते थे कि यह काण्ड लंकाकाण्ड ही होना चाहिए। उनको मालूम होना चाहिये कि 'सुन्दर' लंका का एक पर्वत है। इसी लिए जोधपुर से प्राप्त सुन्दरकाण्ड की हस्तलिखित प्रतिलिपियों की २७ तथा २८वें अध्यायों की समाप्ति पर "लंकापर्वणि सीताया शुभनिमित्त दर्शनः" और लंकापर्वणि 'हनुमद्विकल्प' ऐसे दो नाम इस सर्ग को दिये हुए प्रतीत होते हैं।

सुन्दरता का दृष्टिकोण प्रत्येक का अपना-अपना होता है। प्राचीन काल से सुन्दरकाण्ड भक्तों में कार्य-सिद्ध करने के कारण यह अपने नाम में यथार्थ है। क्योंकि किसी भी रामभवत का जिससे मनोरथ सिद्ध हो, वह उसके लिए सुन्दर है। रसिकों को तो सुन्दरकाण्ड में सर्वत्र सुन्दरता दिखाई देती है। इसीलिये तो कहा है। यथा—

सुन्दरे सुन्दरी सीता, सुन्दरे सुन्दरी कथा।
सुन्दरे सुन्दरो रामः, सुन्दरे किन्नु सुन्दरः॥

अर्थात् सुन्दरकाण्ड में श्रीराम तथा माता सीता सुन्दर हैं, सुन्दरकाण्ड में सारी कथाएँ सुन्दर हैं। भला बताइए सुन्दरकाण्ड में क्या सुन्दर नहीं है? •

संरक्षक सदस्य

१. केवल एक सौ रुपये भेजकर शाश्वत संस्कृति परिषद के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बन कर रहेगा।

शाश्वत संस्कृति परिषद् का उद्देश्य

विशुद्ध भारतीय तत्त्व दर्शन पर सम्यक् गवेषणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उनके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख सभी समस्याओं का सुलझाव प्रस्तुत करना।

संरक्षक सदस्यों की सुविधाएं

१. परिषद् के नवीनतम प्रकाशन तथा आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। नवीन प्रकाशन हैं—इतिहास में भारतीय परम्पराएँ (मूल्य १० रुपये), हिन्दू का स्वरूप (मूल्य ०.५०) आगामी प्रकाशन हैं—ब्रह्मसूत्र हिन्दी विवेचना (मूल्य २० रु०) एवं अन्य।

२. परिषद् की पत्रिका शाश्वत वाणी आप जब तक सदस्य रहेंगे प्राप्त कर सकेंगे।

३. परिषद् के पूर्व प्रकाशत ग्रन्थ (सूची इसी अंक में अन्यत्र देखें) आप २५ प्र० श० छूट के साथ प्राप्त कर सकेंगे।

४. जब भी आप चाहेंगे एक मास पूर्व सूचना देकर अपनी धरोहर वापस ले सकेंगे। धन मनीआर्डर द्वारा भेज सकते हैं। किन्तु छः मास के भीतर ही धरोहर वापस माँगने वाले महानुभावों को वार्षिक शुल्क के पाँच रुपये तथा निर्मूल्य दिये गए प्रकाशनों का मूल्य काटकर ही राशि वापस की जा सकेगी।

शाश्वत संस्कृति परिषद्

३०/९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे)-नई दिल्ली-१

शाश्वत संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं विकास आर्ट प्रिंटर्स शाहदरा-दिल्ली-३२ में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित

वर्ष ११—अंक ६ जून, १९७१ रजि क्र० ६६८९/६०

विक्रमी संवत् २०२८ ईसवी सन् १९७१ सृष्टि संवत् १,९६,०८,५३,०७०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणा: रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणी:॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

परामर्शदाता

प्रो० बलराज मधोक
श्री सीताराम गोयल

सम्पादक
अशोक कौशिक

वर्ष ११ अंक ६

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१
फोन : ४७२६७

मूल्य
एक अंक रु० ०·५०
वार्षिक रु० ५·००

सम्पादकीय

पुनरावलोकन की दिशा

विगत अंक में हमने यह स्पष्ट करने का यत्न किया था कि काँग्रेसी सरकार ने हिन्दू समाज को अपार हानि पहुँचाई है। काँग्रेसी सरकार ने उस महापाप का पोषण ही किया है जो ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तान में शिक्षा पद्धति के प्रचलन और अन्य उपायों से आरम्भ किया था। हमने अपने पूर्व लेखों में यह स्पष्ट करने का यत्न किया है कि ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तान के हिन्दू समाज को न केवल इस देश में अपितु विदेशों में भी, लांछित एवं अपमानित करने का यथाशक्ति यत्न किया। ब्रिटिश सरकार का इण्डोलौजी का विभाग अभी भी योरोप में हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाज को कुख्यात करने में यत्नशील है। इस देश की वर्तमान काँग्रेसी सरकार भी, जो ब्रिटिश सरकार की मानसपुत्री ही है, वही सब कुछ कर रही है जो इसकी पूर्वाधिकारिणी ब्रिटिश सरकार कर रही थी।

अतः हमारी धारणा है कि भारत का हिन्दू समाज आज अनाथों की भाँति रह गया है। यह कहा जा सकता है कि भारत की काँग्रेसी सरकार में भी तो जन्मतः अधिकांश

हिन्दू ही हैं। किन्तु तथ्य इसके विपरीत हैं। भारत में हिन्दुओं का नहीं अपितु अहिन्दुओं का राज्य है।

किसी के हिन्दू परिवार में उत्पन्न होने मात्र से हम उसे हिन्दू नहीं मान सकते। हिन्दुओं के कुछ लक्षण हैं और जो उन लक्षणों से परिपूर्ण हैं, वे ही हिन्दू कहे जा सकते हैं। ये लक्षण हैं धर्म और संस्कृति। इन लक्षणों अर्थात् धर्म और संस्कृति के विषय में हम अनेक बार इन पृष्ठों में अपनी व्याख्या प्रस्तुत कर चुके हैं। उन्हीं लक्षणों के आधार पर हम देश के अधिकांश निवासियों को हिन्दू मानते हैं। उस कसौटी पर कसने पर हम अनुभव करते हैं कि आज भारत में जिनके हाथों में यहाँ की शासन सत्ता है वे हिन्दू नहीं अपितु अहिन्दू हैं, न केवल इतना वरंच वे हिन्दू विरोधी हैं।

प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि जब भारत में प्रजातन्त्र है तो राज्यसत्ता अहिन्दुओं के हाथ में किस प्रकार आ गई? इसके उत्तर में हम यही कह सकते हैं कि ब्रिटिश सरकार ने अपने शासन काल में कुछ नारे प्रचलित किये थे। उनमें से एक यह भी था 'राजनीति धर्म और संस्कृति से निरपेक्ष संस्थान है।' किन्तु यह नितान्त छलना थी। भारत में पग रखने के समय से प्रारम्भ कर उसके प्रस्थान करने के पल पर्यन्त ब्रिटिश सरकार यहाँ के लोगों पर अपना धर्म और अपनी संस्कृति थोपने का यत्न करती रही। किन्तु वह कहती यही रहती थी कि उसका राज्य धर्म और संस्कृति निरपेक्ष राज्य है। यह छलना चलती रही और सत्ता हस्तान्तरण के अवसर पर उन लोगों के हाथ में सत्ता समायी जो अन्य बातों के साथ-साथ इस मिथ्यावाद में भी ब्रिटिश सरकार के उत्तराधिकारी सिद्ध हुए। काँग्रेस सरकार ने ब्रिटिश सरकार के अन्य दुर्गुणों के साथ यह दुर्गुण भी ग्रहण किया और कहा कि उनका राज्य धर्म और संस्कृति से निरपेक्ष है। परन्तु स्वयं न केवल इन दोनों विषयों पर अपना अधिकार रखा, अपितु इस निरपेक्षता के नाम पर हिन्दुओं के धर्म और संस्कृति को समूल नष्ट करने के प्रयास में विद्यार्थियों को प्रश्रय देने में अत्यधिक तत्परता व्यक्त की।

हिन्दू समाज धर्म और संस्कृति में राजा को हस्तक्षेप की अनुमति प्रदान नहीं करता। यही कारण है कि ब्रिटिश काल में और तदनन्तर काँग्रेस-काल में इस छलना-सम्पन्न नारे से सम्मोहित होकर हिन्दू समाज काँग्रेस सरकार का अन्धानुयायी बन गया है। भारत की भोली-भाली जनता यह नहीं समझ सकी कि ब्रिटिश सरकार की भाँति काँग्रेस सरकार भी अपनी सारहीन संस्कृति और तत्वरहित धर्म को जन-जन के मन पर प्रतिस्थापित कर रही है। मुख से तो सरकार यही कहती है कि वह धर्मनिरपेक्ष है, परन्तु व्यवहार में वह एक विशेष

प्रकार का धर्म और संस्कृति जन-मानस पर अंकित कर रही है। भारत की सरलचित्त प्रजा नारे की उच्चता का तो अनुभव करती है। परन्तु सरकार के उस आचरण से सर्वथा अनभिज्ञ है जो कि उस नारे के सर्वथा विपरीत है।

वर्तमान सरकार के मतानुसार धन सम्पदा ही देश की उन्नति का मापदण्ड है। जिस प्रकार हिन्दू धर्म में कहा जाता है—सत्य बोलना, चोरी न करना क्रोध न करना, शुद्धता इत्यादि धर्म के लक्षण हैं, इसी प्रकार वर्तमान सरकार का अर्थोपलब्धि ही मुख्य धर्म है। और वह इस धर्म का स्कूलों, कालेजों, रेडियो, टेलिविज़न इत्यादि सब सरकारी साधनों से प्रचार एवं प्रसार करने का यत्न कर रही है। दिन रात देश के आबाल-वृद्ध नर-नारी, सबके कानों में यही कूक लगाई जा रही है और यही इस देश की सरकार का मुख्य लक्ष्य भी है।

हिन्दू समाज इसे ही मुख्य लक्ष्य नहीं मानता। इसे लक्ष्य प्राप्ति का एक साधनमात्र माना जाता है। अतः हमारा यह आरोप है कि कांग्रेसी सरकार इस देश और जाति के धर्म को विकृत करने का यत्न कर रही है और साथ ही यह कहती भी नहीं थकती कि सरकार और समाज को धर्म निरपेक्ष होना चाहिये।

हिन्दू सिद्धान्त और परम्पराओं के अनुसार सरकार और समाज के घटकों को मत-मतान्तर, पंथ अथवा रिलिजन निरपेक्ष होना चाहिये। हिन्दू के इस स्वभाव का लाभ उठाकर हिन्दू समाज के धर्म को विकृत करने में संलग्न इस सरकार को हिन्दू विरोधी सरकार ही मानना उपयुक्त होगा।

सरकार द्वारा दिन-रात रेडियो पर धर्म शब्द की मजहब अथवा रिलिजन से तुलना कर उसका अनर्थ किया जाता है। हमारा यह मत है कि सरकार की यह एक सुनिश्चित घृणित योजना है जिसके द्वारा हिन्दू समाज को अपने धर्म से पतित करने का यत्न किया जा रहा है, ताकि कांग्रेस का कुशासन स्थायी रह सके।

शासक, मजहब अथवा सम्प्रदाय निरपेक्ष तो हो सकता है, परन्तु वह धर्म निरपेक्ष नहीं हो सकता। धर्म निरपेक्ष होने का अर्थ है अधर्मयुक्त होना। क्योंकि धर्म और अधर्म दो ही प्रकार के कार्य हैं, कोई तीसरा मध्यमार्ग नहीं।

वर्तमान सरकार, पूर्णतया अधर्ममय कार्य एवं व्यवहार को छिपाने के लिये स्वयं को धर्मनिरपेक्ष घोषित करती है और जनता को भ्रम में डालने के लिए धर्म के अर्थ मजहब के रूप में करती है।

हमारा कथन है कि हिन्दू समाज मजहबी बातों में राज्य का हस्तक्षेप नहीं चाहता। परन्तु वह धर्म को मजहब से सर्वथा पृथक् मानता है। मजहब है पूजा-पद्धति, सम्प्रदाय के चिह्न अर्थात् रीति-रिवाज। इनके आधार पर राज्य की

स्थापना अथवा प्रचलन कदापि नहीं होना चाहिये। किन्तु धर्म तो इससे पृथक् है। और वर्तमान भारत सरकार हिन्दू समाज की राज्य के मजहब से पृथक् रखने की रुचि से लाभ उठाकर हिन्दू समाज को धर्मनिरपेक्ष कर रही है।

राज्य और समाज का मुख्य लक्ष्य धन-सम्पदा की प्राप्ति घोषित करके सरकार सबसे बड़े अधर्म का प्रचार कर रही है। सत्य, अस्तेय आदि वास्तविक धर्म के लक्षण को गौण बता देने से पूर्ण हिन्दू समाज का पतन हो रहा है।

केवल यही नहीं कि सरकार ने अर्थोपलब्धि को ही सर्वोपरि स्वीकार कर उसने अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ ली हो। सरकार की ओर से आर्थिक विचार से सब घटकों में समानता उत्पन्न करने का प्रयास भी हिन्दू समाज के धर्म और संस्कृति का विरोध करना ही है। हिन्दू समाज यह मानता है कि सभी मानव बुद्धि और परिश्रम आदि में एक समान नहीं होते तथा अर्थोत्पत्ति होती है बुद्धि और परिश्रम से। इस प्रकार अर्थोपलब्धि समान नहीं हो सकती। कृत्रिम उपायों से आर्थिक समानता उत्पन्न करना कर्म और कर्म-फल के सिद्धान्त के विरुद्ध है।

हिन्दू समाज मानता है कि समाज की व्यवस्था में नैतिक, धार्मिक और सामाजिक, चाहे कोई भी विषय क्यों न हो, उनका निश्चय एवं निर्णय विद्वानों के मतानुसार होना चाहिये। वर्तमान प्रजातान्त्रिक प्रणाली में सभी वयस्कों को समान मताधिकार मिलने से इस व्यवस्था का खण्डन होता है। हिन्दुओं की सामाजिक व्यवस्था में जन साधारण के मत का आदर तो किया जाता है, परन्तु उनका निश्चय विद्वानों द्वारा ही व्यक्त होता है। प्रजातान्त्रिक प्रणाली में विद्वान उसे समझा जाता है जिसे जनता का बहुमत प्राप्त हो। हिन्दू विचारधारा में विद्वान को उसके गुणों से पहचाना जाता है न कि दूसरों के आरोपण से। और उसका मत ही जनता का मत माना जाता है।

ऐसे ही अन्य अनेक विषय हैं जिनमें वर्तमान सरकार न केवल हिन्दू धर्म और संस्कृति का विरोध करती देखी जाती है अपितु वह हिन्दू धर्म और संस्कृति को स्कूल और कालेजों में प्रचलित शिक्षा पद्धति के द्वारा विनष्ट कर रही है। हमारी यह सुनिश्चित धारणा है कि वर्तमान काँग्रेसी सरकार हिन्दू विरोधी सरकार है। तदपि उसे दिगभ्रन्त हिन्दुओं का बहुमत प्राप्त है, इसमें भी सन्देह नहीं। इसका एक कारण तो हमने बताया है कि सरकार द्वारा धर्म निरपेक्षता का निनाद कर हिन्दू समाज को धोखा दिया जा रहा है। हिन्दू विचार से सैक्युलर का अर्थ शब्दकोष में निहित अर्थ के अनुसार "नॉन एक्सलैरियेस्टिक" अर्थात् पन्थनिरपेक्षता मानता है। परन्तु वर्तमान सरकार इसे धर्म निरपेक्ष बना

रही है। इस प्रकार वह धोखे से हिन्दुओं को अपने पक्ष में कर रही है।

इसके अतिरिक्त सारे देश में वास करने वाले अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन-जातियों के जनों को अनेकानेक प्रकार के प्रलोभनों से पथ-भ्रष्ट कर उनके माध्यम से सरकार अपने पक्ष में बहुमत प्राप्त कर रही है। निर्वाचनों के लिये ऐसे नियमोपनियम बनाये गए हैं जिनसे सरकारी पदों पर आसीन अधिकारियों को प्रलोभनों द्वारा निर्वाचनों के निर्णय को विकृत अर्थात् अपने पक्ष में करने में सरकार सफल हो रही है।

इस स्थिति में फिर प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि सैक्युलर के अर्थ पन्थनिरपेक्षता है तो फिर धर्म क्या है? हमने अपने पूर्व लेख में हिन्दू संस्कृति के लक्षण स्पष्ट किये थे। उन लक्षणों का सम्बन्ध मुख्यतया विचारों से है। धर्म तो कर्म के रूप को कहते हैं। यद्यपि कर्म की गति गहन है। तदपि हिन्दू धर्मशास्त्रों ने कर्म का विश्लेषण कर इसकी गति को स्पष्ट और सरल रूप में प्रस्तुत करने का यत्न किया है।

कर्म और विकर्म इसके दो रूप हैं। इसे ही धर्म और अधर्म भी कहा जाता है। कर्म को धर्म अर्थात् करणीय कर्म ही कहा गया है। और जो करने योग्य नहीं है, उसे अधर्म का नाम दिया है। यद्यपि कर्म अनेकों हैं तदपि उन सभी को उक्त दो श्रेणियों में ही समाहित समझना चाहिये और इन दो श्रेणियों के कर्मों में भेद-भाव करने के लिये एक सरल सूक्त वर्णन किया है। वह सूक्त है 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत' जो व्यवहार अपने लिये रुचिकर न हो वैसा व्यवहार दूसरे के साथ भी न किया जाय।

धर्म और अधर्म में इसी विभिन्नता से सैक्युलर शब्द का प्रादुर्भाव हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचारों तथा परम्परा से मोह होता है। जब तक ये विचार और परम्परा किसी दूसरे के विचार और परम्परा पर आघात न करें तब तक वे सैक्युलर हैं। किसी भी समाज में राज्य सर्वाधिक बल का केन्द्र होता है, इसी कारण राज्य को सैक्युलर माना गया है। परन्तु वर्तमान राज्यतन्त्र तो राज्य बल से अपने विचार और नीति जनता पर थोपकर हिन्दू समाज की मुख्य धारा को ही विलीन करने में संलग्न है। किन्तु उक्त मापदण्ड के आधार पर तो राज्य को न तो शिक्षा में हस्तक्षेप करना चाहिये और न ही रेडियो, टेलिविजन इत्यादि पर सरकार का एकाधिकार होना चाहिये।

हिन्दू धर्म के विशेष रूप को संक्षेप में हम इस प्रकार मान सकते हैं:

१. विचार प्रसार, व्यक्तिगत व्यवहार और रीति-रिवाज में सरकार का हस्तक्षेप न हो।

[शेष पृष्ठ २४९ पर

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

□

श्री आदित्य

पाकिस्तान में गत २५ मार्च से घोर युद्ध चल रहा है। यह कहा जाता है कि यह गृह-युद्ध है। पाकिस्तान सरकार का यही मत है। ऐसा प्रतीत होता है कि संसार के सब बड़े-बड़े देश भी यही मानते हैं। यही कारण है कि भूमण्डल के किसी देश ने अभी तक बंगला देश को मान्यता नहीं दी।

भारत की संसद ने भी सर्वमत से बंगला देश के व्यवहार की सराहना तो की है; इस पर भी भारत सरकार ने अपने को स्वतन्त्र देश घोषित करने वाले इस देश की मान्यता नहीं दी।

अमेरिका और इंग्लैण्ड ने तो पाकिस्तान को दिये जाने वाले अस्त्र-शस्त्र भी बन्द नहीं किये। यह समाचार है कि अमेरिकन सीनेट की शस्त्रास्त्रों पर नियंत्रण रखने वाली कमेटी ने यह कहा है कि जब तक पाकिस्तान में स्थिति सामान्य नहीं होती तब तक अमेरिका को इसे शस्त्रास्त्र नहीं देने चाहियें। इस समाचार का क्या परिणाम होता है, अभी देखना है। इंग्लैण्ड की सरकार का यह मत है कि शस्त्रास्त्र देने बन्द नहीं करने चाहियें। बन्द करने से भूमण्डल में शक्ति सन्तुलन बिगड़ जायेगा।

ऐसी स्थिति में भारत बंगला देश को मान्यता दे अथवा न दे, यह एक जटिल प्रश्न बन गया है। इसकी जटिलता इस कारण है कि भारत देश की विदेश नीति का दिवाला निकल चुका है। भारत का किसी भी देश के साथ सैनिक गठबन्धन नहीं है। भारत अपनी इस नीति को "non-alignment" की नीति कहता है। हम समझते हैं कि यह नीति कारण है कि भारत देश अपने मन की ठीक और मानवता युक्त बात को भी नहीं कर सकता।

भारत में एक महात्मा हुए थे और उनके गुरु एक महापण्डित प्रधान मंत्री हुए थे। महात्मा जी के महात्मापन का प्रभाव मूर्ख हिन्दुओं पर अभी भी है और देश के महापण्डित प्रधान मंत्री की नीति अभी भी चलती है। इन दोनों

महापुरुषों की नीतियों का ही परिणाम है कि भूमण्डल में सब देश हमारे मित्र होते हुए भी हमारे मित्र नहीं हैं। कारण यह है कि हमने किसी का मित्र बनना स्वीकार नहीं किया। हम बातें बनाना ही अपना कर्त्तव्य मानते हैं और वह भी मूर्खता पूर्ण।

रही सही बात सन् १९६२ में चीन के आक्रमण के समय हो गयी। जब हम चीन से पराजित होने लगे तो हमने हाय-तोबा मचायी और अमेरिका तथा इंग्लैण्ड हमारी सहायता पर आ गये। एकाएक चीन का आक्रमण समाप्त हो गया। बस हमने सहायता भेजने वालों और सहायता के लिए युद्ध में कूदने को तैयार देशों को आँखें दिखानी आरम्भ कर दीं। सहायता देने वाले मूर्ख बन गये।

परिणाम यह हुआ कि सन् १९६५ में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया तो हम अकेले थे। उस समय चीन पाकिस्तान की सहायता पर था। अन्य सब देश तटस्थ बन गये। कारण यह कि हम तटस्थ रहना चाहते हैं। चीन ने पाकिस्तान की सहायता की थी। एक काल्पनिक आरोप लगाकर अन्तमेत्थम दे दिया था।

पाकिस्तान का भारत ने डटकर मुकाबला किया। परिणाम यह हुआ कि वे देश जो पहले तटस्थ रहने का बहाना बना हमसे सहानुभूति भी प्रकट करना नहीं चाहते थे, अब शान्ति-शान्ति की कूक लगाने लगे। उनके पिट्ठू संयुक्त राष्ट्र संघ ने आज्ञा दे दी कि युद्ध बन्द करो अन्यथा वह हस्तक्षेप करेगा।

विवश हमको युद्ध बन्द करना पड़ा। युद्ध भारत ने आरम्भ नहीं किया था। इसको आरम्भ करने वाला पाकिस्तान था। भारत हार नहीं रहा था। यदि युद्ध में किसी का पासा प्रबल था तो भारत का था। परन्तु युद्ध बन्द करने पर हमें सब कुछ वापस करना पड़ा और पाकिस्तान ने जो माल, जहाज इत्यादि अपने अधिकार में किये थे, वे सब अपने पास रहने दिने। हमने ताशकन्द समझौता माना, परन्तु उसका पालन पाकिस्तान ने नहीं किया।

यह सब क्यों हुआ? इस कारण कि हमारी विदेश नीति दोषयुक्त है और हम अभी भी भूमण्डल में एक तटस्थ देश के रूप में रहना चाहते हैं। हमारा कोई मित्र नहीं और हम किसी के मित्र नहीं।

हमारी सरकार बच्चों की सी बात करती है। शक्ति संचय नहीं करती और किसी दूसरे से सहायता लेने की इच्छा नहीं रखती।

अब तो चीन ने ऐटम और हाईड्रोजन बम्ब बना लिये हैं और हम सरकारी रूप में अभी भी घोषणा कर रहे हैं कि ऐटम बम्ब नहीं बनायेंगे। भूमण्डल में

ऐटम बम्ब बनाने वाले देश हैं रूस, अमेरिका, फ्रांस, इंग्लैण्ड और चीन। हम न तो स्वय ऐटम बम्ब बना सके हैं और न ही हम किसी ऐटम शक्ति वाले देश से मैत्री करना चाहते हैं।

इसमें मूल कारण है कि हम महात्मा गांधी की अव्यावहारिक नीति को गले लगाये हुए हैं। आत्मबल तो हममें है नहीं। हमारी सरकार नास्तिक सैक्युलर और अनात्मवादी है। जो आत्मा के अस्तित्व को मानता ही नहीं, उसमें आत्मबल कहाँ से आयेगा? हम तटस्थ हैं; इस कारण भूमण्डल के सब देश हमसे तटस्थ हैं।

जैसे अज्ञानी संसार की ठोकरें खाता रहता है, वैसे ही अनात्मवादी भारत सरकार 'बे यारो मददगार' है। यही कारण है कि पड़ोस में लाखों की हत्या कर डाली गयी है, लाखों बेघर कर दिये गये हैं और हम उनकी विपत्ति को अनुभव करते हुए भी कुछ कर नहीं सकते।

भारत की कांग्रेसी सरकार दोहरी पापी है। एक तो यहाँ की कांग्रेसी सरकार ने पाकिस्तान बनना स्वीकार किया और अल्पमत की धौंस से भयभीत हुई। दूसरे, पाकिस्तान उनके हाथ में दिया जो खूंखार दरिन्दों का सा व्यवहार रखते थे। इसके साथ कांग्रेस ने दूसरा पाप यह किया है कि हम दुर्बल हैं। हमने संसार में किसी को मित्र बनाना स्वीकार नहीं किया। स्वयं शक्ति संचय नहीं की और उनको मित्र बनाकर रखा है जो संसार में किसी के मित्र नहीं बनना चाहते। जो पालक बनना अपना अधिकार मानते हैं।

ऐसी स्थिति में भारत बंगला देश को न तो मान्यता दे सकता है और न ही वहाँ के स्वतन्त्रता प्रिय वीरों की सहायता कर सकता है।

वे लोग जिन्होंने इन्दिरा गांधी की सरकार को बहुमत से राज्यासीन किया है, उनको अपने मुख पर लगाम देनी चाहिए। उनका कोई अधिकार नहीं कि बंगला देश की मान्यता का आग्रह करें। उनको यह समझ लेना चाहिये कि उनकी सरकार बंगला देश को मान्यता नहीं दे सकती। तो फिर देश में हाय-तौबा मचाकर भोले-भाले देशवासियों को मूर्ख न बनायें।

उनको यह भी समझ लेना चाहिये कि भारत में ही इन्दिरा सरकार के करोड़ों की संख्या में सहायक हैं जो बंगला देश को मान्यता देने के पक्ष में नहीं हैं। यदि उन्होंने यहाँ कुछ भी ऐसी स्थिति उत्पन्न की जिससे पाकिस्तान से तनातनी में वृद्धि हुई तो पाकिस्तान पूर्वी बंगाल से हाथ खाली कर भारत के साथ दो-दो हाथ करने का यत्न करेगा। इस बार परिस्थिति सन् १९६५ से अधिक भयंकर होगी।

काँग्रेस सरकार ने हिमालय समान भयंकर भूलें की हैं और उन सब भूलों का सामूहिक परिणाम यह है कि हम बंगला देश में हो रहे घोर अत्याचार को निस्सहाय मूर्खों की भाँति देख रहे हैं।

पिछले चौदह-पन्द्रह वर्षों से भूमण्डल की ऐसी स्थिति बन रही है कि प्रजातन्त्रवाद एक धोखे की टट्टी सिद्ध हो रहा है। तानाशाहों का मुकाबला प्रजातन्त्र नहीं कर सका। कोरिया, पूर्वी जर्मनी, स्वेज नहर क्षेत्र, बलगारिया, दक्षिणी वियतनाम, कम्बोडिया और अब पूर्ण पाकिस्तान में प्रजातन्त्रवादियों की करारी हार हुई है। इन देशों पर तानाशाही ने आक्रमण किया तो भूमण्डल की प्रजातान्त्रिक शक्तियाँ नपुंसकों की भाँति मुख देखती रही हैं। एक दो स्थानों पर अमेरिका ने सहायता की तो प्रजातान्त्रिक देशों ने अमेरिका की ही निन्दा आरम्भ कर दी।

पूर्वी बंगाल के मामले में भी प्रजातांत्रिक शक्तियाँ याह्या खाँ के सैनिक शासन की सहायक हो रही हैं।

ऐसी अवस्था में पृथ्वी पर मानव समाज का भगवान ही रक्षक है।

●

पृष्ठ २४५ का शेष]

२. सामाजिक, नैतिक और आर्थिक कर्मों में राज्य का हस्तक्षेप केवल तभी हो जब इनके द्वारा किसी दूसरे के सामाजिक, नैतिक एवं आर्थिक हितों में बाधा पहुँचाने का यत्न किया जा रहा हो।

३. विद्वानों की परख उनके गुणों से हो न कि मतदान द्वारा। और समाज व्यवस्था विद्वानों के अधीन हो।

४. आत्मा, बुद्धि और शरीर के विषय में विकास करने की सबको समान रूप से स्वीकृति हो।

५. धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्राप्ति में कोई परस्पर बाधक न हो।

हम समझते हैं कि वर्तमान सरकार मानव की इन आधारभूत स्थापनाओं, मान्यताओं एवं स्वतन्त्रताओं में ही बाधक सिद्ध हो रही है। हिन्दू इससे उद्धार पाने के लिये कितना प्रयत्नशील है यही आज का ज्वलन्त प्रश्न है। यदि हिन्दू अब भी सरकारी धर्मनिरपेक्षता के इस भ्रम-जाल से मुक्त न हुआ तो उसका नाम शेष होने में अधिक समय नहीं लगेगा।

●

माण्डूक्योपनिषद्

□

श्री प्रभाकर

अभी तक हमने इस उपनिषद् के प्रथम छः मन्त्रों की व्याख्या की है। हमारा मत है कि यह उपनिषद् जगत् की रचना के विषय पर लिखा गया है। यद्यपि उसका रचयिता ओंकार (परमात्मा) ही माना है, जगत् उसका ही (व्याख्यान) वर्णन है। (यत् च अन्यत त्रिकालातीतं) जगत् से अन्य जो त्रिकाल के अतीत है अर्थात् जगत् रचना से पूर्व और पश्चात् भी उस ओंकार की ही महिमा का वर्णन है। तो भी ओंकार के अतिरिक्त और कुछ नहीं, ऐसा नहीं कहा गया। न ही इसका खण्डन किया गया है। हाँ, इस ओर संकेत है कि ओंकार के अतिरिक्त कुछ है।

दूसरे मन्त्र में ब्रह्म शब्द से यह प्रकट किया गया है। वहाँ लिखा है (सर्वं ह्येतद् ब्रह्म) यह (जगत्) सब ब्रह्म है।

जगत् ओंकार का व्याख्यान है और इस मन्त्र में लिखा है कि यह सब (जगत्) ब्रह्म है। हम इसी मन्त्र की व्याख्या में ब्रह्म के अर्थ बता चुके हैं। (इदं त्रिविधं ब्रह्म) यह ब्रह्म तीन प्रकार का है। ऐसा श्वेताश्वतर उपनिषद् (१-९-१२) में लिखा है।

अतः जगत् का निमित्त कारण ओंकार (परमात्मा) होते हुए भी जगत् में तीनों प्रकार का ब्रह्म उपस्थित है।

इस ब्रह्म (जगत्) के वर्णन में आगे के तीन मन्त्र (३, ४, ५) हैं। जगत् के वर्णन में बताया है कि इसका एक पाद जाग्रत स्थान है, दूसरा स्वप्न स्थान है और तीसरा सुषुप्ति स्थान है। इन तीनों स्थानों की व्याख्या हम पूर्व लेखों में कर आये हैं।

इस उपनिषद् के छठे मन्त्र में लिखा है कि सुषुप्ति अवस्था में वह एक ईश्वर ही प्रज्ञानघन (केन्द्रित चेतना), आनन्दमय तथा आनन्द भुक् है।

हमने यह कहा है कि ये तीन पाद जगत् के हैं और परमात्मा इन पादों का

(निमित्त) कारण है।

श्री स्वामी शंकराचार्य के दादा गुरु श्री गौड़पादाचार्य ने इस उपनिषद पर अपनी व्याख्या श्लोकबद्ध लिखी है। उन श्लोकों को कारिकायें कहते हैं।

शंकरपंथी इन कारिकाओं को अति उदात्त और मर्मस्पर्शिनी कहते हैं। वे इनकी गणना संसार के सर्वोत्कृष्ट साहित्य में मानते हैं। यह कहा जाता है कि ये कारिकायें अद्वैत सिद्धान्त की आधार शिला हैं। यहाँ तक कहा जाता है कि इन कारिकाओं का ध्यानपूर्वक अनुशीलन कर लिया जाये तो अद्वैतवाद के ज्ञान के लिये पर्याप्त है।

कुल कारिकायें २१५ हैं और ये चार प्रकरणों में विभक्त हैं। श्री स्वामी शंकराचार्य ने इन कारिकाओं पर भी अपना भाष्य लिखा है और उसे माण्डूक्य उपनिषद् के भाष्य के साथ सम्बद्ध कर दिया है। अतः हम संक्षेप में इन पर भी अपने विचार लिख रहे हैं।

उपनिषद् के उक्त छः मन्त्रों के साथ कारिकाओं के प्रथम प्रकरण की नौ कारिकायें सम्बद्ध मानी जाती हैं। ये कारिकायें इस प्रकार हैं।

बहिष्प्रज्ञो विभुर्विश्वो ह्यन्तःप्रज्ञस्तु तैजसः।
घनप्रज्ञस्तथा प्राज्ञ एक एव त्रिधा स्मृतः ॥१॥

विभु विश्व बहिष्प्रज्ञ है, तैजसः अन्तःप्रज्ञ है तथा घन-प्रज्ञ प्राज्ञ है। वह एक ही तीन प्रकार से कहा गया है।

दक्षिणाक्षिमुखे विश्वो मनस्यन्तस्तु तैजसः।
आकाशे च हृदि प्राज्ञस्त्रिधा देहे व्यवस्थितः ॥२॥

दक्षिण नेत्र के द्वार में विश्व रहता है। मन के भीतर तेज रहता है और आकाश में दृष्टि (हृदय का स्वामी)। इस प्रकार देह में प्राज्ञ तीन प्रकार से ठहरा हुआ है।

विश्वो हि स्थूलभुङ्नित्यं तैजसः प्रविविक्तभुक्।
आनन्दभुक्तथा प्राज्ञस्त्रिधा भोगं निबोधत ॥३॥

विश्व निश्चय से स्थल पदार्थों को भोगने वाला है। तेजस् नित्य है, वह पृथक्-पृथक् हुए का भोग करता है और आनन्द का भोग होता है। तीन प्रकार के ज्ञान का भोग जानो।

स्थूलं तर्पयते विश्वं प्रविविक्तं तु तैजसम्।
आनन्दश्च तथा प्राज्ञं त्रिधा तृप्तिं निबोधत ॥४॥

स्थूल पदार्थ विश्व को तृप्त करते हैं। सूक्ष्म पदार्थ तेजस को तृप्त करते हैं और आनन्द तथा प्राज्ञ की तीनों प्रकार की तृप्ति समझो।

त्रिषु धामसु यद्भोज्यं भोक्ता यश्च प्रकीर्तितः ।
वेदैतदुभयं यस्तु स भुञ्जानो न लिप्यते ।।५।।

तीनों (अवस्थाओं) में जो भोज्य और भोक्ता कहे गये हैं वह (परमात्मा) दोनों को जानता है जिनका वह भोक्ता हुआ भी उनमें लिप्त नहीं होता ।

प्रभवः सर्वभावानां सतामिति विनिश्चयः ।
सर्वं जनयति प्राणश्चेतोंऽशून्पुरुषः पृथक् ।।६।।

यह निश्चय है कि जो सत् (विद्यमान) हैं वे ही उत्पन्न होते हैं। सब कुछ पृथक्-पृथक् उत्पन्न किया गया है चेतन प्राणमय अशून्य पुरुष से ।

विभूतिं प्रसवं त्वन्ये मन्यते सृष्टिचिन्तकाः ।
स्वप्नमायासरूपेति सृष्टिरन्यैर्विकल्पिता ।।७।।

कुछ दूसरे सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में यह मानते हैं कि (भगवान्) के चिन्तन से हुई है । दूसरे कल्पना करते हैं कि स्वप्न मायारूप है ।

इच्छामात्रं प्रभो सृष्टिरिति सृष्टौ विनिश्चिताः ।
कालात्प्रसूतिं भूतानां मन्यन्ते कालचिन्तकाः ।।८।।

कुछ तो सृष्टि को प्रभु की इच्छामात्र मानते हैं। कई लोग काल की उपज समझते हैं।

भोगार्थं सृष्टिरित्यन्ये क्रीडार्थमिति चापरे ।
देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा ।।९।।

कुछ लोग सृष्टि भोग के लिये मानते हैं। कुछ इसे क्रीड़ा (प्रभु की लीला) समझते हैं। वास्तव में यह (देव) परमात्मा का स्वभाव है। कारण यह कि पूर्ण-कामा को इच्छा लगाव (इत्यादि) कुछ नहीं हो सकता ।

इतनी कारिकाओं में तो अद्वैतवाद कहीं आया नहीं। जैसे उपनिषद् में यह नहीं लिखा कि बिना उपादान कारण के ही परमात्मा से जगत् बना है। वैसे इन कारिकाओं में भी यह कहीं नहीं लिखा कि उपादान कारण के बिना परमात्मा ने जगत् निर्माण किया है । परमात्मा निर्माता है। केवल यह माना है ।

परन्तु शंकरवादी इनसे यह अर्थ निकालते हैं कि सब कुछ परमात्मा में से ही उत्पन्न हुआ है ।

इन कारिकाओं को माण्डूक्य उपनिषद् की व्याख्या में भी नहीं कहा जा सकता । ये स्वतन्त्र रूप से जगत् रचना पर वक्तव्य स्वरूप हैं। दोनों में भेद भी है और समानता भी। यह ठीक है कि उपनिषद् के कुछ शब्द कारिकाओं में दोहराये गये हैं, परन्तु यह तो कोई भी उपनिषदादि ग्रन्थ पढ़ने वाले सृष्टि-रचना का वर्णन करते हुए उन शब्दों का प्रयोग कर सकते हैं।

तनिक पहली कारिका के भाव की ओर देखें। उसमें लिखा है कि 'विभुर्विश्वं बहिष्प्रज्ञ' है।

यहाँ विभु विश्व का अर्थ ही समझने की बात है। विभु का अर्थ है कि सर्वव्यापक। इसका अर्थ दूर-दूर तक पहुँचा हुआ भी है। इसका प्रयोग बहुत मात्रा में, सुदृढ़ इत्यादि भावों में भी किया जाता है। यहाँ इन कारिकाओं में इसका प्रयोग या तो सर्वव्यापक अर्थों में अथवा बहुत दूर-दूर तक फैले हुए के अर्थों में हो सकता है।

यदि तो विश्व सर्वव्यापक के अर्थ में माना जाये तो वह ब्रह्माण्ड ही हो सकता है। परन्तु उस अवस्था में वह रचा गया तथा तीन रूपों में नहीं माना जा सकता। निर्मित और स्वरूपवान वस्तु सीमा वाली होती है। अतः हमारा मत है कि गौड़पादाचार्य का 'विभु विश्व' से अभिप्राय न तो परमात्मा से है और न ही ब्रह्माण्ड से। 'विभु विश्व' का विशेषण होने से सकल रचित जगत् से ही है जो दूर-दूर तक फैला हुआ है। इससे ब्रह्माण्ड अथवा परमात्मा से अभिप्राय नहीं।

अब इस कारिका का अर्थ करें तो यह इस प्रकार बन जाता है कि रचित जगत् बहिष्प्रज्ञ है। अर्थात् इसमें चेतनता बाहर (प्रत्यक्ष) में है। तेज (परमात्मा की शक्ति) अन्तःप्रज्ञ अर्थात् इसके भीतर से क्रियाशील है।

आगे लिखा है कि घन प्रज्ञ प्राज्ञ है। शब्द है (घन प्रज्ञस्तथा प्राज्ञ) घन केन्द्रित (concentrated knowledge) चेतनता तथा प्राज्ञ है। प्राज्ञ का अर्थ हम कर चुके हैं। यह है (प्र + अज्ञ) सर्वधा अज्ञानयुक्त। अर्थात् जब चेतनता केन्द्रित हो जाती है तो जगत् प्राज्ञ (अज्ञानयुक्त) हो जाता है।

यह कथन अयुक्त नहीं। न ही इस कथन से कहीं यह झलकता है कि जगत् परमात्मा का परिवर्तित रूप ही है।

अब तनिक दो अन्तिम (आठवीं और नवीं) कारिका देखें। उनका आशय यह है कि सृष्टि रचना में उद्देश्य भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न प्रकार से मानते हैं। कुछ लोग इसमें ईश्वर की इच्छा मानते हैं। कुछ तो काल की गति मानते हैं, कुछ भोग के लिये सृष्टि रचना का प्रयोजन समझते हैं। कई लोग इसे लीला मानते हैं, परन्तु कारिका लेखक कहता है कि यह परमात्मा का स्वभाव है कि वह सृष्टि की रचना करे।

यहाँ भी कारिका लिखने वाले ने अपना मत लिखा है। यह माण्डूक्य उपनिषद् का मत नहीं है।

[शेष पृष्ठ २५७ पर]

आनुवंशिकता (Genetics)

श्री गुरुदत्त

वंश परम्पराओं के चलने की प्रक्रिया को आनुवंशिका कहते हैं और इसके ज्ञान को जैनेटिक का नाम दिया गया है।

गौरवर्णीय माता-पिता की सन्तान भी गौरवर्णीय होती है। नीली अथवा काली आँखों वाले की सन्तान भी उसी रंग की आँखों वाली होती है। लम्बे माता-पिताओं की सन्तान भी लम्बे कद की होती है और ठिगने माता-पिताओं की सन्तान भी ठिगनी। यह कहा जाता है कि माता-पिता की सन्तान में जो कुछ परिवर्तन होता है, वह इस कारण कि माता और पिता भिन्न-भिन्न परिवारों और आनुवंशिक गुणों वालों में से होते हैं। यदि एक ही परिवार में विवाह हो, माता-पिता एक ही परिवार के हों तो सन्तान के शारीरिक गुणों में अन्तर न पड़े।

भारतीय शास्त्रों में तो इसे योनि और रेतस् के गुणों के कारण माना है। उदाहरण के रूप में ब्रह्म सूत्रों में इसके सम्बन्ध में दो सूत्र आते हैं। एक है :—

रेतः सिग्योगोऽथ ॥ (ब्रह्मसूत्र—३-१-२६)

इसका अभिप्राय है कि (शरीर) का रेतस् के योग (संयोग) से सम्बन्ध है। और दूसरा सूत्र है :—

योने : शरीरम् ॥ (ब्रह्मसूत्र —३-१-२७)

योनि में शरीर का निर्माण होता है।

यदि वर्तमान विज्ञान की भाषा में लिखे तो यह कहा जायेगा कि प्राणी के शरीर का निर्माण दो प्रकार से होता है। एक को 'जीनोटाइप' (g notypc) कहते हैं और दूसरे को 'फिनोटाइप' (phenotype)।

'जीनोटाइप' आनुवंशिकता को ब्रह्मसूत्रकार ने रेतस् कहा है और 'फिनोटाईप' को योनिज कहा है।

योनि को उद्गम स्थान माना है और रेतस् का अभिप्राय रज एवं वीर्य

अर्थात् स्त्री में उत्पन्न 'ovum' और पुरुष में उत्पन्न 'spermatazoa' कहते हैं।

अभिप्राय यह कि प्राणी का शरीर रेतस् है और वातावरण से बनता है। इसे एक वैज्ञानिक ने इस प्रकार लिखा है:—The characteristic of the individual, external and internal, structural are physiological and behavioral. अर्थात् व्यक्ति के बाह्य और अभ्यान्तरिक शरीर के लक्षण दैहिक और व्यावहारिक हैं।

हमारा मत है कि यही बात सूत्रकार ने उक्त सूत्रों में वर्णन की है। आज शरीर क्रिया विज्ञान के क्षेत्र में इस विद्या पर भारी खोज हो रही है। इस (आनुवंशिकता) विद्या को आजकल की भाषा में 'genetics' कहते हैं। यह शब्द 'genes' से प्राप्त किया गया है।

डाक्टर खुराना और उसके कुछ साथियों के एक आविष्कार से विज्ञान के क्षेत्र में भारी रुचि का निर्माण हुआ है।

आनुवंशिकता (genetics) में यह ज्ञात हो चुका था कि शरीर की आधारभूत इकाई (gene) एक जीवित कोषिका (living cell) नहीं, वरंच कोषिका की केन्द्रिका (nucleus) में उपस्थित क्रोमोज़ोम्स के भीतर एक प्रकार के गोलाकार पिण्ड हैं जिनका नाम 'gene' रखा गया है। इनकी संख्या भिन्न-भिन्न जन्तुओं की कोषिका में भिन्न-भिन्न है। मनुष्य की एक कोशिका की केन्द्रिका में कई लाख जीन होते हैं।

ये जीन एक प्रकार के रासायनिक द्रव्य में विद्यमान होते हैं। इस द्रव्य में दो रासायनिक पदार्थ प्रतीत किये गए हैं। इनके संक्षिप्त नाम R. N. A. और D. N. A. लिखे जाते हैं।

डाक्टर खुराना और उसके साथियों ने यह खोज की है कि R. N. A. और D N. A. रासायनिक द्रव्यों से 'जीन' निर्माण किये जा सकते हैं और उन जीन को ऐसे ढंग पर स्थित किया जा सकता है जैसे कि एक विशेष प्रकार के 'virus' में देखे गये हैं।

इससे आज के युग के वैज्ञानिकों की कल्पनायें आकाश में उड़ने लगी हैं। ये लोग यह अनुमान लगाने लगे हैं कि निकट भविष्य में ये वैज्ञानिक R. N. A. तथा D. N. A. रासायनिक द्रव्यों से जहाँ दैहिक तथा व्यावहारिक आनुवंशिक गुणों में हेर-फेर कर सकेंगे, वहाँ प्राणी के शरीर को सुन्दर तथा विकार युक्त भी बना सकेंगे। इसके साथ यह आशा भी व्यक्त की जा रही है कि प्राणी का निर्माण भी रासायनिक द्रव्यों से किया जा सकेगा।

इससे वैदिक सिद्धान्त कि शरीर और जीवात्मा का सम्बन्ध पूर्व जन्म के कर्मों से है, असिद्ध हो सकेगा। एक वैज्ञानिक किसी उष्मायित्र (incubator) में कुछ रसायनिक पदार्थों को डाल देगा और नियत समयोपरान्त इस यन्त्र में से मानव बच्चा बनकर निकल आयेगा। न केवल यह कि एक बच्चा बन जायेगा, वरंच इसके साथ ही यह भी वैज्ञानिक के अधीन होगा कि वह बच्चा गोरा हो, अथवा काला हो, दो हाथ और टाँग वाला हो अथवा अष्टभुजी हो, वह क्रूर स्वभाव वाला हो अथवा शम, दम का पालन करने वाला हो, वह क्षत्रिय स्वभाव का हो अथवा वैश्यवृत्ति वाला हो।

ये सब कल्पनायें सिद्ध हो सकेंगी अथवा नहीं, कहना कठिन है। परन्तु रासायनिक द्रव्यों R. N. A. तथा D. N. A. से जीन की उत्पत्ति कर उसे एक सरल आकार के 'वायरस' के जीनों के ढंग पर स्थापित कर लेने से ये सब आशाएँ कल्पित होने लगी हैं।

हमारे सामने प्रश्न यह है कि ये आविष्कार हमारे वैदिक सिद्धान्तों का विरोध करते हैं अथवा समर्थन करते हैं? नास्तिक लोगों के विचार से तो वैदिक सिद्धान्त असिद्ध होंगे।

हमारा विचार है कि जो कुछ अभी तक पता किया गया है और जिसकी वर्तमान आविष्कार से सम्भावना की जा रही है, वह वैदिक सिद्धान्तों का समर्थन ही करते हैं, विरोध नहीं।

अतः यह ज्ञानवर्धक होगा यदि यहाँ जीवन सम्बन्धी और शरीर सम्बन्धी वैदिक सिद्धान्तों का वैदिक शास्त्रानुसार अनुशीलन कर लिया जाये और फिर देखा जाये कि वर्तमान विज्ञान से कहाँ उसका समन्वय है और कहाँ विरोध।

वैदिक जीवन सिद्धान्त हैं—

(१) शरीर अन्न (भोजन) से बनता है। अन्न रासायनिक द्रव्यों का संयोग ही है।

(२) शरीर में कार्य-शक्ति (प्राण) परमात्मा की दी हुई है, परन्तु वह भी शरीर में अन्न के द्वारा ही आती है।

(३) शरीर-पिण्ड और प्राण दोनों का निर्माण प्राकृतिक शक्तियों से होता है। इन दोनों को शरीर निर्माण में और उसके कार्य में कारण माना है।

(४) इन दोनों (शरीर और प्राण) से पृथक जीवात्मा है। जीवात्मा का लक्षण चेतना है और शरीर एवं प्राण के लक्षण कर्म हैं।

(५) कर्म और चेतना के लक्षण पृथक्-पृथक् हैं। कर्म तो गति का सूचक है, परन्तु चेतना उस गति का काल, देश और दिशा का निश्चय करती है।

(६) चेतना के इस गुण को दर्शन शास्त्रों में ईक्षण करना कहा गया है।

यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैज्ञानिक गर्भ से बाहर शरीर निर्माण करने में सफल हो रहे हैं, परन्तु यह तो प्रकृति में भी होता है। कई जन्तुओं के शरीर माँ के पेट से बाहर कहीं किसी वनस्पति के पत्तों पर अथवा भूमि के किसी अनुकूल स्थल पर रेतस् (रज तथा वीर्य के संयोग से निर्माण होते देखे जाते हैं।

प्रश्न यह है कि क्या इस प्रकार निर्मित प्राणी में जीवात्मा आता है अथवा नहीं? यदि किसी माता के बाहर रेतस् के संयोग से निर्मित शरीर में जीवात्मा आ जाता है तो वैज्ञानिक के उष्मायित्र (incubator) में क्यों नहीं आ सकेगा?

अभिप्राय यह कि वैदिक सिद्धान्त जो हमने उक्त छः पदों में अंकित किया है, वह अटल है। वैज्ञानिक खोज उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन उत्पन्न नहीं कर सकेगी।

[पृष्ठ २५३ का शेष]

इसी प्रकार का प्रश्न श्वेताश्वतर उपनिषद् में भी उठाया गया है। वहाँ कुछ ब्रह्मवादी लोग विचार करते हुए प्रश्न करते हैं कि जगत् का कारणभूत ब्रह्म कैसा है? शब्द हैं 'किं कारणं ब्रह्म'।

इसके उत्तर में उपनिषद्कार कहता है:

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्।
संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुः खहेतोः॥

(श्वे०—१-२)

काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा, भूत और पुरुष (प्रकृति) में कारण है अथवा नहीं? ये कारण विचारणीय हैं। (अर्थात् नहीं हैं)। क्योंकि ये आत्मभाव से रहित हैं। तो फिर क्या यह आत्मा (जीवात्मा) ही सबका कारण है? (उसमें तो आत्मभाव है) नहीं। कारण यह कि वह सुख-दुःख का भागी है।

उपनिषद्कार कहता है कि जगत् का कारण स्वभाव भी नहीं है।

हमारा मत है कि कारिकाओं के लिखने वाले गौड़पादाचार्य ने यह बात भी अपने मन से लिख दी है कि (देवस्यैष स्वभावोऽयम्) यह परमात्मा के स्वभाव से ही होता है।

माण्डूक्य उपनिषद् में भी इस बात का कहीं उल्लेख नहीं है।

भारतीय इतिहास का एक पक्ष

□

श्री सचदेव

अभी तक इस लेख श्रृंखला में हमने बताया है :—

(१) इतिहास का आरम्भ जगत् रचना के आरम्भ से होता है।

(२) भारतीय इतिहास में विकासवाद को उस रूप में नहीं माना जाता जिस रूप में यूरोपीय विद्वान मानते हैं। इसमें सब जातियाँ आरम्भ से ही पूर्ण उत्पन्न हुई हैं। प्रत्येक जाति में अपने घटकों की सामर्थ्य में परिवर्तन हुआ है।

(३) युग गणना को माना जाता है और जगत् रचना को आरम्भ हुए १,६७,२६,४८,६६८ वर्ष हो चुके हैं। पृथ्वी दूसरे मन्वन्तर में बनी थी। इसे बने लगभग एक अरब सत्तावन करोड़ वर्ष हो चुके हैं। इस पर मानव सृष्टि हुए भी लगभग १२ करोड़ वर्ष हो चुके हैं।

(४) इतिहास का तिथि काल किसी एक प्रारम्भिक काल बिन्दु का निश्चय करने के उपरान्त ही लिखा जा सकता है।

(५) भारतीय इतिहास में दो प्रारम्भिक काल बिन्दु हो सकते हैं। एक तो महाप्लावन की घटना और दूसरा महाभारत युद्ध के उपरान्त युधिष्ठिर का राज्यारोहण काल। जलप्लावन, सत्युग और त्रेता युग के सन्धि-काल के समय हुआ था और युधिष्ठिर का राज्यारोहण कलियुग के आरम्भ में।

(६) महाप्लावन के उपरान्त मनु की सन्तान से दो वंश चले। एक सूर्यवंश और दूसरा चन्द्रवंश। दोनों वंशों का भारतीय ढंग पर इतिहास मिलता है।

(७) मनु के काल से राम के पुत्र लव-कुश तक की रामायण में उल्लिखित वंशावली हमने दी है और उसमें यह भी बताया है कि यह वंशावली नहीं हो सकती। इसे नामावली ही मानना चाहिए।

वर्तमान लेख में हम मनु वंशियों की नामावली देना चाहते हैं। महा-

भारत में चन्द्र वंश की दो नामावलियाँ हैं। यद्यपि दोनों को वंशावलिय ही कहा है, इस पर भी उन वंशावलियों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे वंशावलियाँ नहीं नामावलियाँ हैं।

यह भी कहा जा सकता है कि किसी वंश के मुख्य-मुख्य पुरुषों का उल्लेख भारतीय प्रथा के अनुसार वंशावली ही कहलाती हैं।

इस विषय की हम वंशावलियाँ लिखने के उपरान्त व्याख्या करेंगे। महाभारत में उल्लिखित वह वंशावली जो महर्षि कृष्ण द्वैपायन के नाम से दी गयी है, इस प्रकार है :

मनु→इला→पुरुरवा→आयु→नहुष→ययाति →पुरु→जन्मेजय →प्रवीर →प्राचिन्वान→संयाति→अहंयाति→सार्वभौम→जयत्सेन→अवाचीन→अरिह→ महाभौम→अयुतनामी →अक्रोधन→देवातिथि→अरिह →ऋक्ष→पतिनार→तेसुं →इंलन →दुष्यन्त→भरत→भुमन्यु→सुहोत्र →हरित्र→विकुण्ठन→अजमीढ़— संवरण—कुरु—विदुर — अनश्वान—परीक्षित —भीमसेन—प्रतिश्रवा—प्रतीम —शांतनु—विचित्रवीर्य—धृतराष्ट्र—दुर्योधन – पांडु—युधिष्ठिर—परीक्षित।

वैशम्पायन के नाम से दी गयी वंशावली इस प्रकार है। यह पुरु से आरम्भ होती है।

पुरु—प्रतीर—मनस्य (मनस्वी)—ऋचेय (अनाधष्टि)—पतिनार— तेसुं—इंलिन—दुष्यन्त—भरत—भुमन्यु—सुहोत्र—अजमीढ़—ऋक्ष—संवरण —कुरु—अश्ववान—परीक्षित—धृतराष्ट्र—प्रतीय—शान्तनु।

यह वंशावली महर्षि व्यास द्वारा दी गयी वंशावली से छोटी है। इस वंशावली के अन्त में यह श्लोक है—

एवंविधाश्चाप्यपरे देवकल्पा महारथाः।
जाता मनोरन्ववाये ऐलवंशविवर्धनाः॥

(महाभा० आदि० ९४।९४)

अर्थात्—ऐसे ही अनेक देवतुल्य महारथी मनु वंश में उत्पन्न हुए थे, जो इला के वंश को बढ़ाने वाले थे।

इससे यह प्रकट होता है कि उक्त राजाओं-महाराजाओं के अतिरिक्त अन्य भी कई इसी वंश में राज्य करने वाले हुए हैं।

और भी देखिये। वैशम्पायन द्वारा दी गयी वंशावली में सुहोत्र से इक्ष्वाकु वंश वाली कन्या से अजमीढ़ उत्पन्न हुआ।

पाठ इस प्रकार है :

ऐक्ष्वाकी जनयामास सुहोत्रात् पृथिवीपतेः।
अजमीढं सुमीढं च पुरुमीढं च भारत॥

(महाभा० आदि० ९४-३०)

अर्थात्—इक्ष्वाकु वंश की कन्या से सुहोत्र के तीन पुत्र हुए। अजमीढ़, सुमीढ़ और पुरुमीढ़।

परन्तु व्यास द्वारा दी गयी वंशावली में महाभारत आदि पर्व के अध्याय ९५ श्लोक ३४, ३५, ३६ में पाठ इस प्रकार है:

सुहोत्रः खल्विक्ष्वाकुकन्यामुपयेमे सुवर्णां नाम। तस्यामस्य जज्ञे हस्ती; य इदं हास्तिनपुरं स्थापयामास। एतदस्य हास्तिनपुरत्वम्।

इक्ष्वाकु कुल की कन्या सुवर्णा से सुहोत्र ने विवाह किया और उससे हस्ती नामक पुत्र हुआ।

हस्ती खलु त्रैगर्तीमुपयेमे यशोधरां नाम। तस्यामस्य जज्ञे विकुण्ठनो नाम।

हस्ती ने त्रिगर्त राज की पुत्री यशोधरा से विवाह किया और उसके गर्भ से विकुण्ठन नामक पुत्र हुआ।

विकुण्ठनः खलु दाशार्हीमुपयेमे सुदेवां नाम। तस्यामस्य जज्ञे अजमीढ़ो नाम।

विकुण्ठन ने दशार्ह कुल की कन्या सुदेवा से विवाह किया और उसके गर्भ से अजमीढ़ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

वैशम्पायन की वंशावली में अजमीढ़ के पिता का नाम सुहोत्र लिखा है।

सुहोत्र से पूर्व और सुहोत्र के उपरान्त ये वंशावलियाँ परस्पर मिलती हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि भारतीय परम्परा यह है कि पुराणों में वंशावलियाँ नहीं दी गयीं। ये नामावलियाँ हैं। उनमें सामान्य राजाओं के नाम छोड़ दिये गये हैं और पुत्र का अर्थ वंशोत्पन्न से भी है।

इस विषय में यह भी विचारणीय है कि सूर्यवंश की वंशावली मनु के काल से लेकर राम-पुत्र लव के काल तक की है। यदि भारतीय युग-गणना को स्वीकार करें तो यह वंशावली तेरह लाख वर्ष तक फैली हुई है। इतने लम्बे काल में केवल ३६ पीढ़ियाँ नहीं मानी जा सकतीं। यदि रामायण में दी गयी वंशावली को नामावली न मानें तो दो में से एक बात माननी पड़ेगी। या तो युग-गणना को गलत मानना होगा अथवा वंशावलियों को नामावलियाँ मानना होगा।

भारतीय परम्परा और उक्त कथन से यही कहा जा सकता है कि युग-

गणना तो ठीक है, परन्तु वहाँ दिये गये नाम केवल नामावलियाँ हैं।

त्रेतायुग का इतिहास सत्युग से अधिक ज्ञात है। कारण यह कि अनुपात से त्रेतायुग हमारे काल के समीप है। सत्युग दूर है। त्रेता से द्वापर का इतिहास अधिक ज्ञात है। वह इसी कारण कि द्वापर समीप है। कलियुग का इतिहास तो और भी समीप होने से पूर्व के तीनों युगों से अधिक ज्ञात है।

यह बात इससे भी पता चलती है कि वायु पुराण में त्रेतायुग को २४ भागों में बाँटा है और द्वापर को त्रेता से छोटा होने पर भी २८ भागों में बाँटा है।

त्रेतायुग के चौबीस विभाग वर्षों की अवधि से नहीं लिखे गये। त्रेतायुग में जो महान राजा हुए हैं और जिन्होंने युग-प्रवर्तक कार्य किये हैं, उनके विचार से युग के विभाग हुए हैं।

इसी प्रकार चन्द्रवंश की वंशावली मनु से लेकर परीक्षित के काल तक की है। उसमें ४३ नाम गिनाये हैं और इनका काल मनु से लेकर परीक्षित तक है। यह दो युगों का काल है। युग-गणना के हिसाब से यह काल २१,६०,००० वर्ष बनता है। इस कारण यदि इस गणना को ठीक मानें तो उक्त ४३ नामों वाली वंशावली नहीं हो सकती।

अतः यह एक पक्ष है कि भारत में इतिहास उस ढंग से पढ़ने को नहीं मिल सकता जैसा कि पठानों अथवा मुग़लों का राज्य है। भारतीय इतिहासज्ञों का विचार है कि उतने लम्बे काल का इतिहास लिखने के लिए वह शैली अपनानी उपयुक्त नहीं, जिस पर भारत में मुग़ल, पठान अथवा मराठा इतिहास लिखा गया है।

देश स्वतन्त्र रहे

□

श्री कृष्ण मित्र

होशियार पहरेदारो ! इस धरती के अवतारो !
रंग बदलती राजनीति के अम्बर के उज्ज्वल तारो ।
ध्वजा फहरती रहे, अमर अपना गणतन्त्र रहे,
जीवन रहे, रहे न रहे, पर देश स्वतन्त्र रहे ।।

दल से देश महान् है, उज्ज्वल एक निशान है,
और देश के संचालन को निर्मित एक विधान है।
यह महानता बनी रहे, सुख की चादर तनी रहे,
और देश की गौरव गरिमा, स्वाभिमान से सनी रहे ।
जन-जीवन को शक्ति मिले, शंकित मन को मुक्ति मिले,
बलिवेदी पर बलिदानों का गुँजित मन्त्र रहे ।
जीवन रहे, रहे न रहे, पर देश स्वतन्त्र रहे ।।

राजनीति की हलचल में, दलबन्दी की दल-दल में ।
इतनी पावनता भर दो तुम, जितनी है गंगाजल में ।
मानव के अधिकारों का, सुलझे हुए विचारों का ।
इतना करो प्रचार, समर्थन हो न सके विकारों का ।
समता की भावना जगे, उर में सद्कल्पना उगे,
नूतन आविष्कार बने, नित नूतन यन्त्र रहे ।
जीवन रहे, रहे न रहे, पर देश स्वतन्त्र रहे ।।

ऐसे भी कुछ काम हैं, बड़े सुखद आयाम हैं.
तन-मन की सुधियाँ विसरा दें, ऐसे मधुमय जाम हैं।
सुन्दर वातावरणों में, उन्मादक उपकरणों में,
जीवन प्रतिबिम्बित कर लें हम अपने आचरणों में।
उपवन में पतझार न हो, मानवता बीमार न हो,
मन्दिर के पावन आँगन में अर्चित मन्त्र रहे।
जीवन रहे, रहे न रहे, पर देश स्वतन्त्र रहे।
होशियार पहरेदारो !

●

दस वर्ष पूर्व (शाश्वत वाणी, जून १९६१)

विदेशी शासकों का स्वदेशीकरण

भारतीय इतिहास की साधारण पाठ्यपुस्तकों में १९४७ से पूर्व के इतिहास को तीन युगों में विभक्त किया जाता है—हिन्दू-युग, मुसलमान युग तथा ब्रिटिश युग। तृतीय युग के विषय में तो यह सिद्धांत सर्वसम्मत है कि उस काल में एक विदेशी सत्ता भारत पर शासन कर रही थी। किन्तु द्वितीय युग के विषय में अनेक वर्षों से एक विकट विकृति का पोषण होता आ रहा है। हिन्दुओं से बारम्बार यह आग्रह किया जाता है कि वे लोग उस युग में शासन करने वाले मुसलमान बादशाहों को विदेशी शासक न मान कर स्वदेशी सम्राट ही मान लें। और जो भी हिन्दू इस आग्रह को अस्वीकार करता है उसी को 'साम्प्रदायिक, दुर्बुद्धि से दूषित' बतलाकर उसकी भर्त्सना की जाती है। रक्त के नाते हिन्दू माता-पिता की सन्तान किन्तु मनोभाव के नाते मुसलमान डा० ताराचन्द और कम्युनिस्टाचार्य सुन्दरलाल इत्यादि कई-एक स्वधर्म-द्रोही लोग इस मत के प्रचण्ड प्रचारक रहे हैं। और 'स्वाधीन' भारत का 'शासन' अधुना इस प्रकार के 'पण्डितों' का प्रबल पोषण कर रहा है।

इस घोर अनाचार का एकमात्र कारण यही है कि (भू० पू०) प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू स्वयं इस भ्रांति का प्रचार करने वालों में अग्रगण्य हैं। पाश्चात्य इतिहासकारों की निर्लज्ज नकल उतारकर और उस नकल के ऊपर मार्क्सवाद का मुलम्मा चढ़ाकर उन्होंने 'ग्लिम्पसेज ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री' नाम की एक कपोलकल्पित कहानी भी लिख मारी है। इस नानी की कहानी के अनेक संस्करण हो चुके हैं और प्रधानमंत्री के चतुर चाटुकारों ने उनको एक 'गम्भीर इतिहासवेत्ता' के पद पर प्रतिष्ठित करके इस सर्वथा हास्यास्पद तथा शिशुगण के लिये भी अपाठ्य ऊटपटाँग पुस्तक को इस देश के विश्वविद्यालयों में एक सन्दर्भग्रंथ के नाते निर्दिष्ट कर दिया है।

किन्तु मुसलमान आततायी-तन्त्र का स्वदेशीकरण करते समय नेहरू केवल

एक ही प्रमाण प्रस्तुत करते हैं—मुसलमान बादशाहों ने हिन्दू स्त्रियों से विवाह किये थे। अफगानों का स्वदेशीकरण करते हुए वे लिखते हैं—"हम देखते हैं कि भारत ने धीरे-धीरे इन नृशंस योद्धाओं को नम्र बना दिया है और सुसंस्कृत कर लिया है। वे लोग यह अनुभव करने लगे हैं कि वे भारतीय ही हैं, विदेशी आक्रमणकारी नहीं। वे लोग इस देश की स्त्रियों से विवाह करते हैं और धीरे-धीरे विजित तथा विजेता के बीच का विभेद विलुप्त होने लगता है।"···नेहरू अन्ततः यह निष्कर्ष निकालते हैं कि हिन्दू स्त्रियों से विवाह करते रहने के फलस्वरूप पन्द्रहवीं शताब्दी आते-आते मुसलमान शासक पूर्ण प्रकारेण भारतीय शासक बन चुके थे। ···और नेहरू ही तो इस प्रसंग में एकाकी नहीं हैं। पाश्चात्य शिक्षा के प्रताप से इस देश में उनके समान स्वधर्मद्रोही, स्वजातिद्रोही और स्वदेश-द्रोही हिन्दुओं की संख्या दिन-प्रतिदिन प्रवर्द्धमान है···

आश्चर्य की बात यदि कोई है तो यही कि हिन्दूराष्ट्रवाद ने अभी तक भी अपनी दृष्टि से भारत का इतिहास लिखने का कोई प्रबल यत्न नहीं किया, और हिन्दू जाति के बालकों को उन्हीं विद्यापीठों में पढ़ना पड़ रहा है, जहाँ नेहरू के समान मिथ्यादृष्टि लोगों की व्यर्थ बकवाद को वेद-वाक्य समझ कर पढ़ाया जाता है।···

हिन्दू जनसाधारण ने कभी भी मुसलमान बादशाहों को स्वदेशी शासक नहीं माना। अकबर के समान उदार शासक के सम्बन्ध में भी हिन्दू जनसाधारण का मानस सदैव सशंक रहा है। हिन्दू जनसाधारण ने कभी यह नहीं माना कि हिन्दू स्त्रियों को बलात् अपने हरम में डालने वाले मुसलमान बादशाह इसी कृत्य के कारण स्वदेशी हो गये। इसके विपरीत हिन्दू जनसाधारण तो सदा ही उन हिन्दुओं की भी निन्दा करता रहा है, जिन्होंने लोभ या भय के वशीभूत होकर अपनी कन्याएँ मुसलमान बादशाहों के हरम में भेजी थीं। सोमनाथ के समान अनेकानेक देवालयों का ध्वंस करने वाले और भीषण नरमेध करने वाले महमूद गजनवी को हिन्दू जनसाधारण ने सदा ही इस्लाम की परधर्म-विद्वेषी प्रवृत्ति का प्रतीक माना है। न ही हिन्दू जनसाधारण ने कभी यह स्वीकार किया कि इस्लाम भारत में किसी भी प्रकार की प्रगति का सन्देश लेकर आया था। **हिन्दू जनसाधारण की दृष्टि उन मकबरों और मीनाकारी किये हुए मद्य-पात्रों की ओर कभी नहीं गई जिनको लेकर नेहरू जैसे विकृतबुद्धि लोग विभोर हो उठते हैं। हिन्दू जनसाधारण की दृष्टि तो सदा ही उन मन्दिरों पर निविष्ट रही है जिनके स्थानों पर और जिनके ईंट पत्थरों को लेकर मस्जिदें बनी हुई हैं। जामा मस्जिद की सीढ़ियों के नीचे दबी हुई हिन्दू देव-मूर्तियों का नेहरू जैसे नास्तिकों के लिये भले ही कोई महत्व न हो, हिन्दू जनसाधारण तो उस आततायी आचरण को कभी भी नहीं भूल सकता।** ●

एकमात्र राष्ट्रीय मुसलमान की पुण्यतिथि पर

"इस्लाम खतरे में"

□

कट्टरपंथी

भारत विभाजन के लिए यद्यपि नेशनल कांग्रेस के तत्कालीन 'अभिनेता प्रकार के' नेता उत्तरदायी हैं। अभिनेता प्रकार के कहने का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार अभिनेता केवल एक पात्र का अभिनय करता है और स्वयं वास्तविकता से दूर होता है वैसा ही अभिनय कांग्रेस के महान् आत्मा ख्यात नेता ने किया। जो कहा करता था कि पाकिस्तान मेरी लाश पर ही बन सकता हैं। तदपि पाकिस्तान बना और लाश पर बनने का चीत्कार करने वाला अजा-स्तन-पान द्वारा अपनी लाशरूपी देह को पुष्ट करता रहा। कालान्तर में पाकिस्तान को पुष्ट करने के प्रयत्न में भले ही वह शरीर लाश बन गया हो किन्तु पाकिस्तान के विरोध में वह महान् आत्मा-युक्त-शरीर शरीर के रूप में ही विद्यमान रहा। 'नेता' हम इसलिए कहते हैं कि भारत-विभाजन रूपी भयंकर भूल एवं अपराध करने पर भी भारत की अधिकांश जनता ऐसी विश्वासघाती आत्माओं की जय-जयकार करती रही, उनके उंगली निर्देश पर नर्तन करती रही। अतः उनके नेता होने में सन्देह नहीं किया जा सकता।

हमारा मन्तव्य इस समय इन तथाकथित नेताओं के विकृत मस्तिष्क की व्याख्या करना नहीं अपितु यह प्रकट करना है कि भारत विभाजन का मूल स्रोत कहाँ था। मूल स्रोत था मुस्लिम लीग नामक संगठन तथा उसके कर्णधार जिन्ना और लियाकत। जिन्ना और लियाकत को उन अभिनेता प्रकार के नेता सदा 'कायदे आजम' और 'नवाबजादा' के नाम से ही सम्बोधित करते थे किन्तु इसके उत्तर में न कायदे आजम ने और न नवाबजादा ने ही कोई आदर प्रकट किया। वे सदा औपचारिक 'मिस्टर' शब्द का ही प्रयोग करते रहे। दुर्योधन को युधिष्ठिर कहने से क्या उसकी दुष्टता दूर हो गई थी? अस्तु!

भारत विभाजन हुआ, लीगी सब पाकिस्तान में जाकर बस गये हैं, इस

प्रकार का आत्म सन्तोष भारतवासियों को होने लगा। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया उस छिन्न मस्तक किन्तु मूलयुक्त मुस्लिम लीगी ठूंठ में से फिर कौंपलें फूटने लगीं और आज वह इस सैक्युलर भारतभूमि पर एक लहलहाता हुआ वृक्ष के समान खड़ा है। उसकी जड़ें सुपुष्ट हो गई हैं और इन्दिरा गांधी के संरक्षण एवं आशीर्वाद से वह साम्प्रदायिकता रूपी लांछन से मुक्त भी हो गया है।

किन्तु हमारा संकेत आज उस देशघाती मुस्लिम लीग की ओर भी नहीं है। उससे भी महाविनाशकारी एक संगठन भारत में जड़ पकड़ गया है। उसका नाम है 'जमाइत इस्लामी हिन्द।' यह पाकिस्तान के 'जमाइत इस्लामी' की भारतीय शाखा है। 'दावत' दैनिक, 'क्रान्ति' साप्ताहिक और 'जिंदगी' मासिक। ये तीन इसके मुखपत्र हैं और विष-वाण भरा अंग्रेजी साप्ताहिक 'रेडियेंस' इसके सहयोगी के रूप में मुखपत्र नहीं अपितु प्रमुख पत्र का कार्य करता है। अलहसनात-नूर-हादी-हिजाब-दवाम-तलू-नरीमन प्रभृति भारत भर से प्रकाशित होने वाले दैनिक, साप्ताहिक और मासिक इसके प्रबल समर्थक हैं।

जमाइत इस्लामी के प्रवर्तक मौलाना मौदूदी का फरमान है कि इस्लाम संसार में इसलिए नहीं आया कि हुकूमत कुफ्र की हो और मुसलमान अधीनस्थ बन कर रहें बल्कि इसलिए आया है कि हुकूमत इस्लाम की हो आर गैर-मुस्लिम मातहत बनकर रहें। सितम्बर १९७० में अपनी जमायत के स्थापना दिवस पर मौदूदी ने जो स्पष्टोक्ति की थी उसे कश्मीर के जमाइती पत्र तलू ने अपने दिसम्बर १९७० के अंक में प्रकाशित किया है। उस भाषण के कुछ विषबाण हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं। भाषण स्वयं में स्पष्ट है उसके लिए किसी प्रकार की समीक्षा की आवश्यकता नहीं। मौदूदी फरमाते हैं :—

मैंने २२ वर्षों तक सपने संजोये तब जाकर एक स्कीम तैयार हुई और इसी स्कीम ने जन्म दिया 'जमाइत इस्लामी' को। आज पहली बार मैं जमाइत इस्लामी की इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को व्यक्त कर रहा हूँ जिसे मैंने इससे पहले कभी नहीं किया था। और आज भी इसलिए वक्तव्य देने के लिए विवश हूँ कि कहीं मैं इसे अपने साथ अपनी कबर में ही न लेता चला जाऊँ।

मैं तब १७ वर्ष का एक नौजवान लड़का था। मेरे दिल में एक दुख था कि मुसलमानों की एक रही सही सल्तनत, जो दुनिया में बाकी रह गई थी, यानि तुर्कों की वह सल्तनत मिट रही है और मुसलमानों के सब पवित्र स्थान खतरे में पड़ गये हैं...

हिन्दू कौम के लिए एक राष्ट्र वाली बात लाभप्रद थी क्योंकि वह बहुमत में थी। वे यह समझते थे कि भारत के समस्त जनों को एक राष्ट्र घोषित

करें जो प्रजातन्त्र स्थापित होगा उसका सारा लाभ उन्हीं को होगा और अन्त में मुसलमान उनके गुलाम बनकर रह जावेंगे। मेरे दिमाग में यह बात किसी तरह नहीं उतरती थी कि मुसलमान और गैर मुसलमान मिल कर कोई एक राष्ट्र भी बन सकते हैं। मैं सोचा करता था कि यदि भारत कभी अंग्रेजों के अधिकार से छूट गया तो स्वतन्त्र भारत में तो मुसलमान संवैधानिक सुरक्षा की पाण्डुलिपि को हाथ में लिये फिरेंगे और हिन्दू जो चाहेंगे करेंगे और कोई भी शक्ति मुसलमानों को बचा न सकेगी।

शुद्धि आन्दोलन पर भी मैंने गौर किया। एक युग था कि मुसलमान सारे संसार में इस्लाम की तबलीग करते थे। आज नौबत यह है कि भारत की इस सरजमीन में किसी की यह हिम्मत भी हो रही है कि वह मुसलमान को हिन्दू बनाने का न केवल यत्न करें अपितु बनाना भी आरम्भ कर दें।

मेरी दृष्टि में मुसलमान उस कौम का नाम है जिसका अपना एक विशिष्ट मिशन है। हर मुसलमान स्वयं में एक धर्मप्रचारक है। मुसलमान फिर से यही बनें। वरना एक कौम की हैसियत से भारत में इनकी कुशल नहीं। इस्लाम संसार में इसलिए नहीं आया कि हुकूमत कुफ्र की हो और मुसलमान 'जिम्मी' बन कर रहें। अपितु इस्लाम इसलिए आया है कि हुकूमत इस्लाम की हो और गैर मुस्लिम उसके मातहत बनकर रहें। जिहाद का असल मकसद यह है कि कुफ्र पर इस्लाम गालिब हो।

सन् १९२९ में पहली बार मुसलमानों को सम्बोधित कर यह बात कही गई कि 'आजादी की जंग लड़ी जायगी, तुम साथ आओ तो तुम्हें साथ लेकर और तुम न आये तो तुम्हारे बगैर।' जब यह बात कही गई तो मैंने महसूस किया कि इस मुल्क में मुसलमानों की खैर नहीं। मेरी नजर निजाम की तरफ गई। मैंने देखा कि निजाम की हुकूमत का किला रेत पर खड़ा है। हैदराबाद में ८५ फीसदी हिन्दू और सिर्फ १५ फीसदी मुसलमान। मैंने वहाँ के लोगों को समझाने की कोशिश की 'खुदा के लिए इस्लाम के प्रचार प्रसार के लिए कुछ तो करो।' किन्तु मैंने अनुभव किया कि निजाम की हुकूमत गोया एक अफीम है, जिसे खाकर मुसलमान अचेत पड़े हैं। यह स्थिति थी जब मैंने १९३२ में हैदराबाद से 'तरजुमान-उल-कुरान' निकालना आरम्भ किया।

सन् १९३७ की बात है। मैं दिल्ली से हैदराबाद जा रहा था। रेल के डिब्बे में एक मशहूर हिन्दू-नेता डाक्टर खरे से मेरी भेंट हो गई। उस डिब्बे में और भी बहुत से मुसलमान थे। **मैंने देखा कि वे मुसलमान डाक्टर खरे से इस प्रकार बातें कर रहे थे जैसे एक महकूम कौम के अफराद एक हाकिम कौम**

के फर्द से करते हैं। यह दृश्य मेरे लिए असहनीय था। हैदराबाद पहुँचा तो मेरी रातों की नींद उड़ गई।

सन् १९३७ में ही मेरी लाहौर में अल्लामा इकबाल से भेंट हुई। उन्होंने मुझे परामर्श दिया कि भविष्य में दक्षिण में मेरे लिए इस्लाम के लिए कार्य करने के अवसर कम होते जावेंगे अतः उचित यही है कि मैं लाहौर में आकर बसूं। उनके परामर्श से सन् १९३८ के मार्च में मैं हैदराबाद को सदा के लिए छोड़कर लाहौर में आ बसा। उस समय मेरे सामने सबसे प्रथम कार्य था मुसलमानों को किसी प्रकार उनका अपना राष्ट्रीय व्यक्तित्व और विभिन्नता भुलाने न दूं तथा उनको गैर मुस्लिम कौम में विलीन होने से बचाऊँ। **पहले मुसलमानों को मुसलमान बने रहने देने की फिकर थी फिर दूसरों को मुसलमान बनाने की फिकर। मैंने मुसलमानों को आह्वान किया, 'तुम मात्र एक कौम नहीं हो, तुम्हारा उद्देश्य भी केवल एक कौमी राज्य स्थापित करने का नहीं होना चाहिए अपितु तुम्हारा उद्देश्य एक इस्लामी राज्य स्थापित करने का होना चाहिए।' और इस इस्लामी हुकूमत को स्थापित करने के लिए एक सुसंगठित संगठन जमाइत इस्लामी की स्थापना की आवश्यकता हुई।**

विभाजन के विषय में मैं सोचा करता था कि यदि देश-विभाजन हो गया तो जो देश मुसलमानों के हिस्से में आयेगा उसको मुसलमानों की काफिराना हुकूमत बनने से कैसे बचाया जाय और उसे इस्लामी हुकूमत के रास्ते पर कैसे डाला जाय। यह अवसर था जब मैंने सुनिश्चित रूपेण यह निर्णय किया कि 'जमाइत इस्लामी' के नाम से एक संगठन स्थापित किया जाय। मुसलमानों में फिर उन्हीं प्रचारात्मक गुणों (गुबल्लिगाना औसाफ) को ताजा किया जाय जिनके कारण हिन्द में करोड़ों गैर मुस्लिम इससे पहले मुसलमान हो चुके थे। और जिनकी बदौलत ही मुस्लिम बाहुल्य के आधार पर पाकिस्तान की स्थापना सम्भव हुई...

जमाइत का प्रारम्भ १९४१ में ७५ सदस्य और ७४ रुपये १४ आने की पूंजी से हुआ था। (दो आने की कमी रह गई थी अन्यथा सदस्य संख्या और पूंजी में किसी प्रकार का अन्तर नहीं रहता। तब मौदूदी साहब कहते ७५ सदस्यों और ७५ रुपयों से संस्था स्थापित की गई थी। —सम्पादक)

मैंने स्पष्ट रूप से मुसलमानों को बताया था कि अब तक हिन्दू कौमपरस्ती दो टाँगों पर खड़ी है। इसकी एक टाँग है अंग्रेजों के मुकाबले में आज़ादी की जद्दो-जिहद और दूसरी टाँग है मुसलमानों की दुश्मनी।

अगस्त १९४७ के आखिर में जमाइत के सदस्यों की कुल संख्या ६२५ थी।

इनमें से २४० हिन्दुस्तान में रह गये । ३८५ पाकिस्तान में या तो पहले से विद्यमान थे या बाद में चले आये थे। पाकिस्तान में जमाइत इस्लामी के कामों की शुरूआत १३८५ सदस्यों से हुई थी । आरम्भ में ही हमने 'जमाइत इस्लामी हिन्द' और 'जमाइत इस्लामी पाकिस्तान' की व्यवस्था को एक दूसरे से बिलकुल अलग कर दिया था ।

२६ वर्ष पूर्व जमाइत ने अपना जो नसबुलफेन मुकर्रर किया था वही आज भी है। इसलिए यह बदगुमानी भी नहीं की जा सकती कि अब वह इस मुल्क में इस्लामी निजाम कायम करने के सिवा और कोई रास्ता भी अख्तियार कर सकती है ।

मौदूदी का भाषण स्वयं में स्पष्ट है । भारत में जमाइत की गतिविधियों का जिन लोगों को ज्ञान है वे जानते हैं कि अपनी जाति के लोगों पर किस प्रकार का प्रभाव वह स्थापित कर रही है । प्रारम्भ में जिन पत्र-पत्रिकाओं का हमने उल्लेख किया है उनमें भारत एवं हिन्दुओं के विषय में कितना विषवमन होता है यह उनके पढ़ने वाले भलीभाँति जानते हैं ।

क्या निष्प्राण हिन्दू जाति को प्राणवान बनाने के लिए कोई 'मौदूदी प्रकार का' व्यक्ति आगे आएगा ? प्रचलित हिन्दू कहलाने वाले संगठन एवं संस्थाएँ सेक्युलरिज्म के प्रवाह में बह गये हैं । वे इतने प्रतिक्रियावादी हो गये हैं कि स्वयं को समाजवादी, सेक्युलर और प्रजातांत्रिक सिद्ध करने में ही अपने समय का अपव्यय करना अपना परमधर्म बना बैठे हैं। सेक्युलरिज्म के नाम पर धर्मद्रोह बढ़ता जा रहा है । समय रहते यदि हिन्दू न चेते तो 'मुअल्लिगाना औसाफ' वाले खंडित भारत को पुनः विखण्डित करने में सफल हो जाएँगे ।

किंकर्तव्यविमूढ़ हिन्दू को 'क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्तोतिष्ठ परंतप !' कहने वाले सुदर्शन धारी की प्रतीक्षा है ।

हमारे धर्म-प्रेमी अभ्यागत

(एक भेंटवार्ता)

□

श्री गौरीशंकर शर्मा 'भावुक'

अमेरिका निवासी, पश्चिमी जर्मनी के श्री हिंसकेरी जो आजकल अपनी धर्म-पत्नी सहित 'अन्तर्राष्ट्रीय कृष्ण चेतना समाज' के तत्त्वाधान में यहाँ आये हुए हैं, के निवास स्थान पर कुछ प्रश्न लेकर जब पहुँचा तो मुझे उनकी बैठक को देखकर उस प्राचीन भारतीय आश्रम की याद हो आई, जहाँ पर बैठकर हमारे ऋषि-मुनिगण तपश्चर्या किया करते थे। श्री चैतन्य महाप्रभु के तैलचित्र की छाया में पालथी लगाये, सुन्दर शिखा सहित मुण्डित मस्तक वाले, उस उनत्तीस वर्षीय गौरवर्ण, चन्दन-तिलकधारी, यज्ञोपवीत धारण किये सीधी-सीधी धोती पहने उस व्यक्ति को जो शुद्ध संस्कृत में, शान्त-चित्त से ईश्वर स्तुति में तन्मय था; मैंने सुदूर से ही नमस्कार किया। उनके ठीक सामने श्री सागर महाराज स्वामी, जिन्होंने भेंटवार्ता में अपना पूर्ण सहयोग दिया था, बैठे थे और उन्हीं के पास श्वेत परिधान में श्रद्धा-मूर्ति श्रीमती हेलेना केरी अपने पति के सामने विनीत भाव से सर झुकाये विराजमान थीं। मैंने देखा कि इस छोटी-सी जगह पर भारत अपनी संस्कृति की सुदृढ़ शक्ति सहित एक नये रूप में अपने नवजीवन की अँगड़ाई ले रहा था। अपने आपको ब्रह्ममय करके विश्व कल्याण हेतु हमारे सम्मुख बैठी उस सौम्य मूर्ति से मैंने प्रश्न किया—

"आपने भगवान् की पूजा के लिये 'सनातन धर्म' को ही क्यों स्वीकार किया ? अन्य धर्मों के बारे में आपकी क्या राय है ?"

उत्तर—जब हम लोग अमेरिका में थे, पच्चीस वर्ष की उम्र में मैंने श्री प्रभुपाद स्वामी के दर्शन किये। हम नहीं जानते थे कि स्वामीजी हिन्दू हैं या कोई और। परन्तु उनके चेहरे पर हमने एक अपूर्व आनन्द एवं सन्तुष्टि की छटा देखी। हमें ऐसा लगा कि इस पुरुष में पूर्णता है। स्वामीजी के पूर्णत्व ने

हमें सनातन धर्म की ओर आकृष्ट किया और तब हमने श्री मद्भागवत, चैतन्य चरितामृत, ईशोपनिषद्, ब्रह्मसंहिता इत्यादि तथा छैवों गोस्वामियों द्वारा रचित साहित्य एवं अन्य वैष्णव साहित्य का अध्ययन किया। शरीर और आत्मा दो अलग अलग वस्तु हैं। सांसारिक कार्यकलापों की बजाय सम्पूर्ण संसार का ज्ञान कराकर उससे मुक्ति दिलाने वाला धर्म सनातन धर्म ही सच्चा पथ-प्रदर्शक है। रही बात अन्य धर्मों की सो, धर्म तो एक ही होता है। जिस प्रकार शब्द-कोष होता है, वैसे ही धर्म होता है। शब्दकोष छोटे-बड़े और कई भाषाओं के होते हैं। जिसको जो शब्दकोष अच्छा लगता है उसके लिये वही उत्तम है।

प्र०—अपने समाज और समुन्नत वैज्ञानिक विश्व की हलचल से परे अध्यात्म की आराधना से आपको कैसा लगता है ?

उ०—विज्ञान ? विज्ञान है ही कहाँ ? जिसे आप विज्ञान कहते हैं वह एक भ्रम-जाल है, मिथ्या है। सिनेमा के पर्दे पर जिस हलचल को देखकर दर्शकगण भाव-विभोर या क्रुद्ध हो उठते हैं, क्या यह उनका भ्रम नहीं है ? वास्तविकता क्या है, यह सभी जानते हैं। पर्दा स्थिर रहता है। केवल छाया और प्रकाश के माध्यम से पर्दे पर उत्पन्न होने वाली विचित्रता तो मात्र क्षण-भंगुर है। नित्य नहीं है। उसी प्रकार विज्ञान की दशा है। सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र क्या करता है। छोटी चीजों को कई गुना बड़ी बनाकर दिखाता है। परन्तु प्रस्तुत वस्तु के अति सूक्ष्म रूप को सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र नहीं दिखा पाता ! वस्तु की वास्तविकता का ज्ञान कराने वाला होता है—अध्यात्म ज्ञान, जिसकी सहायता से विश्व का वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है, जिसे प्राप्त कर लेने के बाद एक अनुपम आनन्द की अनुभूति होती है। और इसके लिए गीता में बताये गए ज्ञान-चक्षु की जरूरत है। इसे हम तीसरा नेत्र कह सकते हैं। बिना इस नेत्र के खुले हमें ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती ! सम्पूर्ण विश्व ही ब्रह्म है। जिसे आप विज्ञान कहते हैं वह भी ब्रह्ममय है और जिसे आप विज्ञान नहीं कहते हैं वह भी ब्रह्ममय है, फिर विलगता का तो प्रश्न ही कहाँ उठता है।

प्र०—मनुष्य को क्या करना उचित है ? सब कर्त्तव्य-कर्म को छोड़-छाड़कर 'राम-धुन' में संकीर्तन या जीविकोपार्जन के लिए कुछ कार्य ? अगर भगवन्नाम' में अपने को व्यस्त कर दिया जाये तो फिर आवश्यकताओं की पूर्ति कैसे होगी ?

उ०—मनुष्य को भगवान की पूजा उपासना करना ही उचित है। चैतन्य महाप्रभु ने आज से पाँच सौ वर्ष पहले उपदेश दिया था कि प्रभु का नाम ही सर्वोपरि है। आप अपना कर्तव्य करते रहिये। गीता में भगवान कहते हैं—हे

अर्जुन! तू सब कर्मों को मेरे अर्पण करके कर। सब कर्तव्य कर्मों को मेरे ही कर्तव्य-कर्म जानकर कर। मुझ वासुदेव के सिवा इस संसार में और कुछ भी नहीं है।

एक बार नारद मुनि ने भगवान से सर्वश्रेष्ठ भक्त के बारे में जिज्ञासा की थी! भगवान विष्णु ने एक देहाती किसान का नाम बताया और कहा कि अमुक व्यक्ति ही मेरा इस समय सर्वश्रेष्ठ भक्त है। इस पर नारद को कुछ अनमना-सा लगा। नारद ने कहा—प्रभु! यह कैसे संभव है? नारदजी सोचते थे कि भगवान उन्हीं का नाम बतायेंगे परन्तु भगवान ने कुछ भी कहने की बजाय कहा कि, हे नारद! तुम स्वयं जाकर देख आओ! नारद ने देखा कि वह किसान प्रातःकाल उठने से लेकर रात्रि सोने के समय तक अपने काम में व्यस्त रहता है। केवल रात्रि काल बिस्तर पर सोते समय 'श्री कृष्ण हरिनाम' का सिर्फ एक बार मात्र उच्चारण करके प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो जाता है। नारद ने भगवान को पूरी बात बताकर कहा कि भगवन वह तो दिन-भर व्यस्त रहता है, काम करता है और सोते समय एक बार मात्र आपका नाम लेता है। मैं तो दिन भर आपका भजन कीर्तन करता हूँ, फिर वह किसान सर्वश्रेष्ठ भक्त कैसे हुआ? इस पर भगवान ने नारद को सुबह आने के लिए कहा। दूसरे दिन सुबह भगवान ने नारद को दूध से ऊपर तक भरा एक पात्र दिया और कैलाशपुरी स्थित शंकर बाबा के घर जाकर उस पात्र को ऐसे ही रूप में पार्वती को दे देने को कहा! साथ में यह भी कह दिया कि देखो नारद, पात्र से दूध की एक बूंद भी जमीन पर नहीं गिरे। इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना। और नारद उस पात्र को लेकर कैलाशपुरी पार्वती को देने गये! सकुशल पात्र पहुँचाने के बाद नारद ने सन्तोष की साँस ली और दौड़े-दौड़े भगवान विष्णु के पास आये! प्रशंसा पाने की लालसा में नारद ने तुरन्त दूध से भरे पात्र को सकुशल जैसा का तैसा पहुँचाने की बात कही। भगवान ने कहा नारद! पात्र पहुँचाने में तुम्हें जितना समय लगा है उस बीच तुमने कितनी बार मेरे नाम का स्मरण किया? इस बात पर नारद चौंके! कहा, अगर आपके नाम का सुमिरन करता तो पात्र से दूध गिर जाता। मुझे तो ध्यान ही नहीं आया कि आपका नाम लूं। भगवान बोले—नारद! जिस तरह तुम मेरे कार्य को करने में व्यस्त थे उसी तरह वह किसान भी व्यस्त है। वह प्रत्येक कार्य को मेरा कार्य समझकर करता है और इसीलिए वह मेरा सर्वश्रेष्ठ भक्त है। प्रत्येक कार्य में कर्तापन का अभाव होना चाहिये।

जीविकोपार्जन के लिये प्रत्येक आदमी कुछ न कुछ कार्य अवश्य करता है। आप क्या कार्य करते हैं? इस प्रश्न का जवाब दें।

मैंने कहा—जैसे सब लोग कहीं न कहीं यथा सम्भव कार्य करते ही हैं वैसे ही मैं भी एक कार्यालय में कार्य करता हूँ।

उन्होंने बताया—आप जिस भाई के यहां कार्य करते हैं, वहाँ आपको जो पारिश्रमिक मिलता है वह कहाँ से आता है? वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भगवान की ही देन है। एक कारखाने का मालिक हजारों मजदूरों को वेतन देता है। हजारों कारखानों का काम कच्चे माल से चलता है। हजारों तरह का कच्चा माल प्रकृति से प्राप्त होता है। और प्रकृति एकमात्र उस परमपिता की सम्पत्ति है। प्रत्येक जीवमात्र भी ईश्वर की उस प्रकृति का ही तो अंग है, जिसके माध्यम से ईश्वर की उपस्थिति का भान होता है, जो सत् चित् और आनन्दस्वरूप है।

प्र०—भारत और भारत की जनता के बारे में आप क्या कहना चाहते हैं? क्या आपने भारत और भारतीय लोगों के बारे में जैसा सोचा था उसी के अनुरूप पाया है?

उ०—(उन्होंने हँसकर, बड़े मृदुस्वभाव से कहा) हाँ, हमने जैसी कल्पना की थी, हमें भारत और भारत के लोग उसी के अनुरूप मिले हैं। हमने सोचा था कि भारत अपने आध्यात्मिक-ज्ञान को भुला चुका है और भुला रहा है। यहाँ आकर हमने यही पाया! एक भारतीय होने के नाते प्रत्येक आदमी को प्रत्येक दिन की अपनी दैनिक दिनचर्या में 'भगवन्नाम' का एक कार्यक्रम और जोड़ लेना चाहिये। जैसा कि चैतन्य महाप्रभु ने कहा था, अपने कर्तव्य कर्म का पालन करते हुए, हमें श्रीकृष्ण नाम अवश्य रटना चाहिये! श्रीकृष्ण पूर्ण हैं। अलग-अलग देवी और देवता उसके अन्तर्गत विभागीय इकाइयों के अध्यक्ष मात्र हैं। प्रत्येक भारतीय को अपना धर्म पालन करते हुए इसका प्रचुर प्रचार एवम् प्रसार करना चाहिये।

श्रीमती हेलेना केरी, जिन्होंने अपना नामकरण अब हेमवती देवदासी कर लिया है, साक्षात् देवी स्वरूपा है। बड़ी दृढ़ता के साथ उन्होंने बताया कि भारत में अनाज की कमी है और उस पर भी नियन्त्रण चल रहा है, फिर भी अध्यात्म ज्ञान का बाहुल्य है। ठीक इसी प्रकार हमारे पाश्चात्य देशों में अनाज की कोई कमी नहीं है, परन्तु अध्यात्म ज्ञान की कमी है, जिसकी भूख ही आज हमें यहाँ खींच लाई है।

अन्त में श्री हिंस केरी ने जो अब हंसदत्त स्वामी हैं; कहा—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना
अमानिनां मानदेन कीर्तनीयो सदाहरिः।

अर्थात् तृण के समान लघुता को प्राप्त करो, जिसे अदना सा आदमी भी रौंदकर चला जाता है, फिर भी वह शान्त रहता है। तुम तरुवर के समान सहिष्णु बनो जिसकी घनी छाया में बटोही विश्राम करता है और जाते समय टहनी तोड़कर ले जाता है, फिर भी तरुवर शान्त रहता है। तुम अपने अनादर करने वाले का भी आदर करो क्योंकि अमान करने वाले को मान देना ही तुम्हारा धर्म है, और सदैव हरि के नाम का सुमिरन करते रहो।

अन्त में उन्होंने पूछा—कुछ और भी प्रश्न शेष हैं ? मैं चुप था। उनके बचनामृत को सुनकर मैं तृप्त था। देश विदेश में घूम-घूमकर 'हरे कृष्ण' और 'हरे राम' की धुन लगाने वाले इन कृष्ण-भक्तों की इस दार्शनिकता पर मुझे विचित्र आनन्दानुभूति के साथ-साथ ईर्ष्या भी थी। वाह रे भारत ! जो काम तुम्हारे सपूतों को करना है, वही काम तुम्हारे विदेशी अनुयायी कर रहे हैं। फिर भी मुझे सन्तोष है। हमारी संस्कृति महान् है। हमारे लिये कौन देशी है, कौन विदेशी है। 'उदार चरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्' का उद्घोष करने वालों का हृदय समुद्र के समान है। हाँ वे लोग धन्यवाद के पात्र अवश्य हैं, जो हमें अपने भूले हुए गौरव और भूली हुई शक्ति की याद दिलाने हमारे घर पर चलकर आये हैं। ०

समाचार समीक्षा

□

पराजय की शृंखला :

१९७१ वर्षीय लोक सभा निर्वाचनों की अप्रत्याशित किन्तु अप्रामाणिक सफलता के बाद नई कांग्रेस को उसी प्रकार अप्रत्याशित विफलता एवं पराजय का मुख भी देखना पड़ रहा है। दिल्ली नगर निगम के निर्वाचन इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। चुनाव अधिकारियों एवं मतगणकों की यथाशक्ति चेष्टा के बाद भी दिल्ली नगर निगम में नई कांग्रेस बहुमत प्राप्त नहीं कर सकी। दिल्ली के मतदाताओं को निगम के निर्वाचनों में जहाँ नई कांग्रेस से यह शिकायत रही कि उसने अवैध मतों का प्रयोग किया वहाँ उन्होंने अपनी आँखों से देखा कि मतगणना के अवसर पर गणकों ने इन्दिरा कांग्रेस के प्रत्याशियों की विजय के लिये जनसंघ को प्राप्त मतपत्रों को अपने आसनों में छिपाने का कुकृत्य भी किया। यह भी सुना गया कि पुलिस लाइन के लगभग १७०० कर्मचारियों को उच्चाधिकारियों ने अपने सामने खड़े होकर इन्दिरा कांग्रेस के प्रत्याशियों के नाम के सम्मुख मोहर लगाने के लिये विवश किया।

कांग्रेस इस प्रकार के कुकृत्यों के लिये कितनी उत्तरदायी है अथवा इस प्रकार के दुष्कर्मों में वह किस प्रकार सिद्धहस्त है इसका प्रमाण निवर्तमान निगम के इन्दिरा कांग्रेस के एक उग्र सदस्य श्री हरीशकुमार गौड़ के उस वक्तव्य से प्राप्त होता है जो उन्होंने निगम की अन्तिम बैठक के अवसर पर १९-५-७१ को निगम में दिया। उनका कथन था कि इन्दिरा कांग्रेस दल की ओर से हमें निर्देश दिया जाता था कि निगम को कुख्यात करने में अपनी शक्ति का यथासम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिये। न केवल इतना उनका कथन यह भी था कि इस प्रक्रिया में निगमासीन दल को तो बदनाम किया ही जाय यदि आवश्यक समझें तो निगम के उन अधिकारियों की टाँग भी खींची जा सकती है जिनको इस कार्य के लिये वे उपयुक्त समझते हों। और उनका कहना था कि ऐसा उन्होंने स्वयं भी, इंदिरा कांग्रेस के निर्देश पर, अनेक बार किया है। भरे सदन

में इस प्रकार का रहस्योद्घाटन करते हुए उन्होंने अपने पूर्व कृत्यों के लिये पश्चात्ताप प्रकट किया।

सरकारी तन्त्र को भी इन्दिरा कांग्रेस ने कितना भ्रष्ट किया है इसका प्रमाण लोक सभा के मध्यावधि निर्वाचन एवं दिल्ली नगर निगम के सद्यःसम्पन्न निर्वाचन हैं। जिस प्रकार श्री एस० के० पाटिल ने मुख्य चुनाव आयुक्त श्री सैन वर्मा के निलम्बन की माँग की उसी प्रकार निगम के निर्वाचनों में भ्रष्टाचरण करने वाले निगम अधिकारियों एवं पुलिस अधिकारियों के निलम्बन की भी माँग की जानी चाहिये। लोक सभा के १९७१ वर्षीय निर्वाचनों के प्रसंग में सेन वर्मा की आलोचना तो बहुत की गई किन्तु उनके निलम्बन की माँग सार्वजनिक रूप से श्री पाटिल ने उठाई है। इसके लिये पाटिल बधाई के पात्र हैं और इस माँग को समर्थन मिलना चाहिये।

राजभाषा हिन्दी :

भारत को स्वतन्त्र हुए २४ वर्ष बीत रहे हैं। गणतन्त्र घोषित किये भी २० वर्ष हो रहे हैं। अर्थात् २ दशाब्दी। इन वर्षों में देश की किस दिशा में क्या दशा हुई है इसकी ओर हम समय-समय पर संकेत करते रहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि भौतिक क्षेत्र में देश ने उन्ननि की है। और इसमें भी सन्देह नहीं कि उस उन्नति का मूल्य हमने नैतिकता के रूप में चुकाया है। अर्थात् ज्यों-ज्यों देश भौतिक उन्नति करता गया त्यों-त्यों नैतिकता का ह्रास होता गया।

हिन्दी को राजभाषा घोषित किये बीस वर्ष बीत चुके हैं। किन्तु व्यवहार एवं वर्तनी में हिन्दी का स्थान कहीं भी नहीं है। इन्दिरा कांग्रेस में तो सेठ गोविन्ददास हिन्दी में बोलने के लिये और हिन्दी के पक्ष में मत डालने के लिये 'गांधियन-त्रे' (यहाँ पर हम अंग्रेजी की इस वर्तनी का जानबूझ कर प्रयोग कर रहे हैं) अर्थात् कथनी और करनी में अन्तर का मार्ग ग्रहण कर वे सत्तासीन प्रधान मन्त्रियों से अनुमति प्राप्त कर हिन्दी के ध्वजाधारी भी बन जाते हैं और प्रधानमन्त्री की दृष्टि में भी भले रहते हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दी के इस 'एकमात्र नेता' ने आज तक हिन्दी के उन्नयन, प्रचलन आदि के लिये अन्य कुछ भी नहीं किया। राजनीतिक क्षेत्र में रुष्ट होकर वे निजलिंगप्पा कांग्रेस को छोड़कर इंदिरा कांग्रेस में जा सकते हैं किन्तु हिन्दी के लिये वे इंदिरा कांग्रेस को भी छोड़ने का साहस नहीं जुटा पाते। ऐसे नेताओं की निरन्तर भर्त्सना की जानी चाहिये।

पुरानी काँग्रेस अर्थात् सिण्डीकेट की स्थिति इससे भी गई बीती है। वहाँ

कोई हिन्दी का नाम लेने वाला नहीं है। हाँ विगत बम्बई अधिवेशन में महासमिति में जब मोरारजी भाई हिन्दी में बोलने के लिये खड़े हुए तो उनकी बहुत आलोचना प्रत्यालोचना हुई। मोरारजी भाई अड़े भी रहे और उन्होंने प्रत्युत्तर में भी बहुत कुछ कहा। किन्तु इसके अतिरिक्त वहाँ भी कुछ नहीं हुआ। हिन्दी विरोध की दिशा प्रबल होती रही। अधिवेशन में अंग्रेजी छाई रही।

केन्द्रीय सरकार ने अब एक नया नाटक रचा है। हाल ही में राष्ट्रपति ने एक आदेश जारी कर केन्द्रीय मन्त्रालयों के हिन्दी नामों की सूची प्रसारित कर उनके प्रयोग का निर्देश किया गया है। यह ठीक ऐसे समय पर किया गया है जबकि संसद का सत्र प्रारम्भ होने में ४८-७२ घटे ही अवशिष्ट थे। सरकार के मनोनुकूल ही इस पर प्रतिक्रिया हुई। सभी विपक्षी एवं देशद्रोही दलों ने इस आदेश का प्रबल विरोध किया, उसके लिये आन्दोलन की धमकी दी और अब तो द्रमुक के नेता ने स्पष्ट कह दिया है कि जब तक इस बात का निर्णय नहीं हो जाता वे इस विवाद में कदापि भी भाग नहीं लेंगे और इस प्रकार वे अपना हिन्दी विरोध जारी रखेंगे।

हम समझते हैं कि सरकार ने हिन्दी के विरोध में सोच समझकर यह षड्-यन्त्र रचा है। देशद्रोहियों से, उन देशद्रोहियों से जिनके साथ इंदिरा कांग्रेस चुनाव गठबन्धन करती है अर्थात् द्रमुक और कम्युनिस्ट एवं लीग, उनसे हिन्दी का विरोध कराकर सम्भवतया हिन्दी भाषा को उसके प्रतिष्ठित पद से च्युत कराने के लिये कृतसंकल्प है। दक्षिण भारतीयों एवं बंगालियों ने प्रबल स्वर में हिन्दी का विरोध किया है। यद्यपि कहते वे यही हैं कि वे 'हिन्दी का नहीं अपितु हिन्दी के थोपे जाने का विरोध करते हैं। किन्तु तथ्य किसी से छिपा नहीं है।

संसद के दोनों सदनों का बजट सत्र प्रारम्भ होते ही दोनों सदनों में जिस प्रबल मात्रा में बंगला देश का समर्थन हुआ उससे द्विगुणित मात्रा में हिन्दी का विरोध व्यक्त किया गया है। विरोध की पराकाष्ठा यह है कि द्रमुक सदस्य स्वयं जिन सदनों को अब तक 'राज्य सभा और लोक सभा' कहते आये हैं अब उन्होंने घोषणा की है कि वे 'अपर हाउस और हाउस ऑफ पीपुल' शब्दों का प्रयोग करेंगे।

हिन्दी का यह विरोध किसी एक व्यक्ति एवं दल ने नहीं किन्तु अनेक व्यक्तियों और जनसंघ एवं संसोपा को छोड़कर सभी राजनीतिक दलों अर्थात् दोनों कांग्रेस दल, तीनों कम्युनिस्ट पार्टियाँ, मुस्लिम लीग, स्वतन्त्र पार्टी, प्रसोपा, द्रमुक सभी ने एक स्वर से राष्ट्रपति के आदेश के विरुद्ध विरोध एवं आक्रोश के माध्यम से हिन्दी के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है। हमारा बारबार यही कहना है

कि हिन्दी को सदा सर्वदा के लिए राजभाषा के पद से हटाने के लिए सरकार ने इस आन्दोलन की स्वयं योजना की है। आज जवाहरलाल नेहरू द्वारा दिये गये आश्वासनों की दुहाई दी जा रही है। जवाहरलाल नेहरू का पहला आश्वासन दस वर्ष के लिये था कुछ दिनों में बढ़कर वह पन्द्रह वर्ष के लिये हो गया था और सन् १९६२ में वह अनिश्चित अवधि के लिये कर दिया गया था। जिस प्रकार अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए देश के मानदण्डों के साथ नेहरू खिलवाड़ किया करता था उसी प्रकार आज उसकी पुत्री भी न केवल देश के मानदण्डों अपितु समस्त देश को ही दाँव पर लगाने के लिए उद्यत है।

जब तक नेहरू वंश का राज है तब तक रसातल की ओर गतिमान इस देश की नौका को कोई नहीं उबार सकता। आवश्यकता है नेहरू वंश का दुःशासन समाप्त करने की।

संगठन काँग्रेस विघटन के कगार पर :

१९६९ में काँग्रेस के विघटन के बाद से ही इंडीकेट और सिण्डीकेट का संतुलन बिगड़ता गया है। तदपि इण्डीकेट की स्थिति निरन्तर सुदृढ़ होती जा रही है। इसका श्रेय इण्डीकेट के नेताओं को नहीं अपितु सत्ता को प्राप्त है। कहावत भी है कि 'चढ़ते सूर्य को नमस्कार किया जाता है।' तदपि देश में कुछ ऐसे भी लोग थे जिन्हें संगठन काँग्रेस से कुछ आशायें थीं। यद्यपि हमने इस विचार की सदा आलोचना की है और कहा है कि एक न एक दिन सब एक ही में विलीन होने वाले हैं। अस्तु,

यद्यपि अभी यह स्थिति नहीं आई कि जब इसकी औपचारिक घोषणा कर दी जाय कि सिण्डीकेट इण्डीकेट में विलीन हो गया है। तदपि सत्य यही है कि सिण्डीकेट के अधिकांश सदस्य इण्डीकेट में चले गये हैं, शेष जा रहे हैं और कुछ विद्रोह कर रहे हैं। जिन प्रदेशों में सिण्डीकेट सत्तारूढ़ थी वहाँ राष्ट्रपति का शासन स्थापित हो चुका है और जहाँ वह संविद में सम्मिलित है वहाँ भी ऐसा ही कुछ होने वाला है।

द्विविधा की नीति पर व्यंग्य करते हुए सिण्डीकेट के बम्बई अधिवेशन के अवसर पर महासमिति में श्री गुरुपाद स्वामी ने एक चुटकुला सुनाया—'एक बार ब्रिटेन में जब ग्लैडस्टोन और डिजरैली का राजनीतिक नक्षत्र नभ में ऊँचाई पर चढ़ा हुआ था तो किसी ने एक लड़की से प्रश्न किया कि इन दोनों में से वह किस के साथ विवाह करना पसन्द करेगी ? लड़की ने उत्तर दिया कि विवाह तो वह ग्लैडस्टोन के साथ ही करेगी, क्योंकि वह एक अच्छा पति सिद्ध

हो सकता है किन्तु भागेगी वह डिजरिली के साथ, क्योंकि वह बड़ा रोमांटिक प्रेमी सिद्ध हो सकता है। वास्तव में सिण्डीकेटी सदस्यों की आज यही स्थिति है। आस्था तो उन्होंने सिण्टीकेट में व्यक्त रखी है और रोमांस कर रहे हैं इण्डीकेट के साथ।

श्रीमती तारकेश्वरी सिनहा के मुख से सिण्डीकेट की कटुआलोचना की कड़वाहट अभी मिटी नहीं होगी कि अब श्री संजीव रेड्डी ने भी उसी मार्ग का अनुसरण किया है। राम सुभगसिंह और एस० के० पाटिल प्रभृति अनेक व्यक्ति आज सिण्डीकेट की आलोचना में रुचि प्रकट कर रहे हैं। श्री नीलम संजीव रेड्डी स्वयं वैयक्तिक रूपेण न सही किन्तु उनको काँग्रेस विघटन का प्रतीक माना जा सकता है। काँग्रेस विघटन तभी से प्रारम्भ हुआ जब सिण्डीकेट ने इंदिरा गांधी की इच्छा के विरुद्ध रेड्डी को राष्ट्रपति पद का प्रत्याशी घोषित किया। यद्यपि तब इंदिरा ने स्वयं रेड्डी के नामांकन पत्रों पर हस्ताक्षर किये थे किन्तु बाद में स्थिति ने कुछ और मोड़ लिया था। आज श्री रेड्डी ने न केवल काँग्रेस कार्यकारिणी से त्याग पत्र की घोषणा की है अपितु उन्होंने नेतृत्व की असफलता की ओर भी संकेत किया है।

हम समझते हैं कि जितने शीघ्र सिण्डीकेट का विघटन हो और अवशिष्ट सदस्य इण्डीकेट में सम्मिलित हों उतना ही अच्छा है। इससे देश में राजनैतिक स्थिरता के कुछ लक्षण प्रकट होने लगेंगे। यद्यपि इससे एक बहुत बड़ी हानि यह भी होगी कि इंदिरा की मादकता अपनी चरम सीमा पर पहुँच जावेगी और हम समझते हैं कि वही उसको डुबाने वाली भी सिद्ध हो सकती है।

इसे हमारी ओर से इण्डीकेट का समर्थन न समझा जाय। यह तो केवल स्थिति का अपनी दृष्टि से विश्लेषण मात्र है।

'क्वचिदपि कुमाता न भवति':

गत मास एक दिन सहसा समाचार पत्र में पढ़ने पर विदित हुआ कि नई दिल्ली नगरपालिका के सरकारी अध्यक्ष, नई काँग्रेस के परम भक्त श्री श्रीचन्द छावड़ा का स्थानान्तरण हो गया है। न केवल इतना अपितु यह भी कि नई नियुक्ति का अभी शीघ्रता में निर्णय नहीं किया जा सका है अतः तुरन्त पद से मुक्त होने के लिए उनको अवकाश पर जाने के लिए कह दिया गया है।

समाचार कुछ विचित्र था। किन्तु दो-चार दिन बाद रहस्य प्रकट हुआ। जैसा कि गत मास इसी स्तम्भ में हमने संकेत किया था कि इन्दिरा-पुत्र संजय गाँधी अब स्वयंभू नेता हो गये हैं, उसी प्रकरण में यह रहस्य निहित था। जिस

शिष्ट मण्डल के संजय गाँधी से मिलने का हमने संकेत किया या उसी शिष्ट मण्डल के आधार पर संजय गाँधी ने शिमला में विराजमान अपनी मातेश्वरी को सूचना दी कि नगरपालिकाध्यक्ष श्री छावड़ा ने समाज के उस वर्ग को बेघरबार कर दिया है जिसके कन्धे पर चढ़ कर वे (संजय गाँधी) सरकार और कार दोनों बनाने के स्वप्न देख रहे थे। किन्तु श्री छावड़ा ने उनको बेकार कर दिया है।

हुआ यह कि ६ अप्रैल १९७१ को तत्कालीन आवास मन्त्री और इंडीकेट के प्रबल स्तम्भ श्री इन्द्र कुमार गुजराल ने एक बैठक आयोजित की जिसमें यह निर्णय लिया गया कि चाणक्यपुरी के इर्द-गिर्द जो अनधिकृत झुग्गी-झोपड़ी हैं उनको तत्काल गिरा दिया जाय। उस बैठक में उपराज्यपाल, मुख्य कार्यकारी पार्षद्, महापौर और उप-महापौर, दिल्ली विकास प्राधिकरण के उपाध्यक्ष और दिल्ली से निर्वाचित सभी संसद सदस्य, विद्यमान थे। नई दिल्ली नगरपालिका की उपाध्यक्ष कुमारी सुरेन्द्र सैनी ने इसका यह कहकर विरोध किया कि अब जब कि दिल्ली नगर निगम के निर्वाचन निकट हैं, ऐसे अवसर पर यह कार्य राजनीतिक रुख ले लेगा। किन्तु गिराने का उन्होंने भी विरोध नहीं किया था। १८ अप्रैल को नगरपालिकाध्यक्ष ने आदेश का पालन कर लगभग १००० झोंपड़ियों को गिरा दिया। और यहीं से उनकी गिरावट भी आरम्भ हो गई।

बैठक में विद्यमान अन्य सदस्य तो क्या स्वयं श्री गुजराल जो नगरपालिकाध्यक्ष भी रह चुके है और संजय गाँधी और इन्दिरा गाँधी की प्रमुख कठपुतलियों में से हैं, उन्होने भी इस विषय में अपना मुख नहीं खोला।

संजय गाँधी ने घटना की सूचना टेलीफोन द्वारा शिमला स्थित अपनी मातेश्वरी को दी और उन्होंने वहीं से श्री छावड़ा के स्थानान्तरण का आदेश प्रसारित करवा दिया। देवी इन्दिरा ने न तो इस विषय में सम्भवतया किसी से परामर्श किया और न ही विगत वर्षों में श्री छावड़ा द्वारा काँग्रेस और इंडीकेट के संकेत पर किए गये नर्तन पर ही किसी प्रकार का ध्यान दिया। ज्ञातव्य है कि विगत वर्षों में अपने पद पर रहते हुए श्री छावड़ा काँग्रेस का अन्ध समर्थन करते रहे हैं। किन्तु पुत्र की प्रार्थना को माँ किस प्रकार ठुकरा सकती है। 'कुपुत्रो जायत क्वचिदपि कुमाता न भवति' पुत्र कुपुत्र सिद्ध हो सकता है किन्तु माता कभी कुमाता नहीं हो सकती।

•

कुछ अत्यन्त रोचक व प्रेरणाप्रद पुस्तकें

जो प्रत्येक को पढ़नी चाहियें

श्री सावरकर साहित्य

आजन्म कारावास (सम्पूर्ण)	१५.००
1857 War of Independence	35.00
प्रतिशोध (नाटक)	४.००
मोपला-गोमान्तक	३.००
अमर सेनानी सावरकर	२.५०
हिन्दुत्व	२.००
हिन्दुत्व के पंच प्राण	२.००

श्री बलराज मधोक साहित्य

जीत या हार	३.००
हिन्दू राष्ट्र	१.५०
श्यामाप्रसाद मुखर्जी : जीवनी	६.००
भारत की सुरक्षा	४.००
भारत और संसार	६.००
भारत की विदेश नीति	४.००
भारतीय जनसंघ एक राष्ट्रीय मंच	१.५०
Indian Nationalism	1.50
What Jana Sangh Stands For	1.50
Nationalism Democracy and Social Change	1.50
Kashmir Centre of New Alignments	15.00
India's Foreign Policy And National Affairs	3.00

डा० रामलाल वर्मा

दिल्ली से कालीकट	१.००

श्री तनसुखराम गुप्त

हिन्दुत्व का अनुशीलन	४.००

श्री गुरुदत्त साहित्य

अन्तिम यात्रा	१.००
समाजवाद : एक विवेचन	१.००
गांधी और स्वराज्य	१.००
भारत में राष्ट्र	१.००
वन्दे मातरम् (नाटक)	२.००
भारत गांधी नेहरू की छाया में	४.००
देश की हत्या (उपन्यास)	४.००
भग्नाश ,,	३.००
छलना ,,	७.००
धर्म, संस्कृति और राज्य	८.००
जमाना बदल गया (नौ भाग)	२०.००
महर्षि दयानन्द	२.००
श्रीमद्भगवद्गीता:एक अध्ययन	१५.००
India in the Shadow of Gandhi and Nehru	20.00

श्री पी० एन० ओक

ताजमहल	३.००
भार० इतिहास की भयंकर भूलें	४.००
कौन कहता है अकबर महान् था	१०.००
भारत में मुसलिम सुल्तान	१०.००
Some Blunders of Indian Historical Research	15.00

HANSRAJ BHATIA

Fatehpur Sikri is a Hindu City	10.00
फतेहपुर सीकरी हिन्दू नगर	६.००

श्री गुरुदत्त का सम्पूर्ण साहित्य हमारे सदन से उपलब्ध है। १० रुपये की पुस्तकों पर डाक व्यय फ्री; २० रुपये की पुस्तकों पर १० प्रतिशत छूट।

भारती साहित्य सदन सेल्स

३०/९०, कनाट सरकस, (मद्रास होटल के नीचे), नई दिल्ली-१

संरक्षक सदस्य

१. केवल एक सौ रुपये भेजकर शाश्वत संस्कृति परिषद के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बन कर रहेगा।

शाश्वत संस्कृति परिषद् का उद्देश्य

विशुद्ध भारतीय तत्त्व दर्शन पर सम्यक् गवेषणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उनके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख सभी समस्याओं का सुलझाव प्रस्तुत करना।

संरक्षक सदस्यों की सुविधाएं

१. परिषद् के नवीनतम प्रकाशन तथा आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। नवीन प्रकाशन हैं—इतिहास में भारतीय परम्पराएं (मूल्य १० रुपये), हिन्दू का स्वरूप (मूल्य ०.५०) आगामी प्रकाशन हैं—ब्रह्मसूत्र हिन्दी विवेचना (मूल्य २० रु०) एवं अन्य।

२. परिषद् की पत्रिका शाश्वत वाणी आप जब तक सदस्य रहेंगे प्राप्त कर सकेंगे।

३. परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ (सूची इसी अंक में अन्यत्र देखें) आप २५ प्र० श० छूट के साथ प्राप्त कर सकेंगे।

४. जब भी आप चाहेंगे एक मास पूर्व सूचना देकर अपनी धरोहर वापस ले सकेंगे। धन मनीआर्डर द्वारा भेज सकते हैं। किन्तु छः मास के भीतर ही धरोहर वापस माँगने वाले महानुभावों को वार्षिक शुल्क के पाँच रुपये तथा निर्मूल्य दिये गए प्रकाशनों का मूल्य काटकर ही राशि वापस की जा सकेगी।

शाश्वत संस्कृति परिषद्

३०/९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे)-नई दिल्ली-१

शाश्वत संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं विकास आर्ट प्रि० शाहदरा-दिल्ली-३२ में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित

वर्ष ११—अंक ७ जुलाई, १९७१ रजि क्र० ६६८६/६०

विक्रमी संवत् २०२८ ईसवी सन् १९७१ सृष्टि संवत् १,९६,०८,५३,०७०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

भारतीय संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

सम्पादक
अशोक कौशिक

व्यवस्थापकीय-कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१

वर्ष ११ अंक ७

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर,
दिल्ली-७

सम्पादकीय

अनर्थकारी अर्थ-व्यवस्था

विगत २४ वर्षों से भारत पर काँग्रेस का एकछत्र एवं निरंकुश शासन विद्यमान है। इस अवधि में देश की कितनी प्रगति हुई है उसका यदि लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाय तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि प्रगति की अपेक्षा देश अवगति की ओर अग्रसर हुआ है। राष्ट्रीय एवं नैतिक चरित्र का पतन हुआ है। स्वाभिमान एवं गौरव गरिमा का ह्रास हुआ है। देश ऋण-भार से दब गया है। विदेशों में भारतियों को लांछित होना पड़ता है और स्वदेश में स्वयं को वे प्रताड़ित एवं पीड़ित अनुभव करते हैं। सत्तारूढ़ दल के सदस्यों एवं कतिपय उनके सहायकों के अतिरिक्त देश का प्रत्येक व्यक्ति, वह फिर झुग्गी-झोंपड़ी-वासी हो अथवा भव्य भवनवासी, सेवक हो या स्वामी, श्रमिक हो अथवा मालिक स्वयं को अपने ही देश में पीड़ित, शोषित और असुरक्षित भी अनुभव करता है।

इस स्थिति के लिये उत्तरदायी अनेक कारणों में से एक प्रमुख कारण है घाटे की अर्थ-व्यवस्था। विगत २४ वर्षों से हम निरन्तर अनुभव करते आ रहे हैं कि वर्षानुवर्ष हमारे देश का जो बजट बनाया जाता है वह सदा घाटे का

बजट होता है। हमारी काँग्रेस सरकार एवं काँग्रेस पार्टी ने यह एक प्रकार की परम्परा-सी प्रस्थापित कर दी है। २४ वर्षों के इस सुदीर्घ काल में कोई बजट ऐसा नहीं प्रस्तुत किया गया जो लाभ का बजट हो।

भारत के सामान्यजन को यह तथ्य स्मरण हो अथवा न हो किन्तु यहाँ का अर्थशास्त्री एवं नेतृवर्ग जानता है कि भारत जब स्वतन्त्र हुआ था तो उस समय भारत के भाग का २००० करोड़ रुपया अंग्रेज यहाँ छोड़ कर गये थे। और नेहरू परिवार का करिश्मा देखिये कि १८ वर्ष की अवधि में अर्थात् १९६६ में मुद्रा के पुनर्अवमूल्यन के अवसर पर भारत पर २६०० करोड़ का कर्जा चढ़ चुका था। और आज भारत इतना ऋणी बन गया है कि उस ऋण का यदि हमको एकमुश्त व्याज भुगताना पड़े तो उसके लिए भी हमको ऋण लेना पड़ जावेगा।

इस घाटे की अर्थ-व्यवस्था के लिए और इस बढ़ते हुए ऋण के अम्बार के लिये देशवासियों को सान्त्वना दिलाई जाती है कि "विकासशील देश" को यह सब सहन करना ही पड़ता है। हम काँग्रेस सरकार और काँग्रेस दल, दोनों से ही पूछते हैं कि कोई देश कितने वर्षों तक विकासशील बना रहता है। जिस देश की विकासशीलता २४ वर्षों में समाप्त नहीं हुई, जो देश २४ वर्ष में भी सर्वतन्त्र स्वतन्त्र नहीं हो पाया वह क्या शीघ्र ही विकासशीलता के इस अभिशाप से मुक्त हो जावेगा ? हमें इसमें सन्देह है। क्योंकि विकासशीलता की इस प्रक्रिया में अभी हम उस प्रथम सीढ़ी पर भी आरूढ़ नहीं हुए जहाँ से हम कह सकें कि देश का विकास आरम्भ हो गया है। केवल कुछ बहुमंजिले भवन एवं घाटे में चलने वाले ४-६ संयंत्र और कल-कारखाने स्थापित कर लेने से ही स्वयं को विकसित समझने की भूल काँग्रेसी भले ही करें किन्तु इतर-जन इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हो सकता।

संसार साक्षी है कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान और उसके तुरन्त बाद जापान की कैसी दयनीय दशा हो गई थी। किन्तु आज जापान सारे संसार में उन्नत मस्तक हो गौरव-लाभ प्राप्त कर रहा है और स्वदेश में समृद्धि सम्पन्नता का सुख अनुभव कर रहा है। विकासशीलता का उदाहरण यदि कहीं से ग्रहण करना हो तो वह जापान से किया जा सकता है। संसार के बाजार में जापान के भाव ऊँचे हैं, उसके माल की माँग है और भारत के जन एवं माल के प्रति घृणा का भाव। जापान एशिया का न केवल सबसे बड़ा अपितु एकमात्र समुन्नत औद्योगिक देश बन गया है। जापान आज सहायता देने की स्थिति में ही नहीं अपितु बड़े देशों को ऋण देने की भी स्थिति में है। वहाँ न घेराव होते हैं और न हड़ताल। कहीं कुछ किसी बात का यदि विरोध होता भी है तो वह केवल

अमरीका से गठबन्धन के विषय में किन्तु जहाँ देश का प्रश्न आता है उस स्थिति में प्रत्येक जापानी स्वयं को देशभक्त सिद्ध करने के लिये आगे आने की प्रतिस्पर्द्धा करता है।

जापान की इस उन्नति का मूल है वहाँ के निवासियों का राष्ट्रीय चरित्र और नैतिकता तथा उनका उत्कट देश-प्रेम एवं प्रचुर राष्ट्रभक्ति। भारतवासियों में इन सबका सर्वथा अभाव है। यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थान्धता से पीड़ित है, राष्ट्रीय एवं नैतिक चरित्र जैसा कोई शब्द न नेताओं के शब्दकोष में है और जन-सामान्य के। 'अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग' ही इस देशवासियों का राष्ट्रीय चरित्र बन गया है। किसी की प्रगति से प्रसन्न होने की अपेक्षा अवनति में प्रसन्न होना यहाँ की नैतिकता बन गई है। देश-प्रेम और राष्ट्रभक्ति जैसी कोई बात इस देश के वासी जानते ही नहीं हैं।

इस भ्रष्टाचार का दोषारोपड़ यदि किसी पर किया जाय अथवा इसके लिए मुख्यरूपेण यदि किसी को उत्तरदायी ठहराया जाय तो वह है यहाँ का भ्रष्ट शासनतन्त्र और उसकी घाटे की अर्थ-व्यवस्था। घाटे की अर्थ-व्यवस्था के नाम पर सरकार ऋण लेती है, विदेशी संस्थाओं एवं संगठनों से अनुदान लेती है, देशवासियों पर विनाशकारी कर लगाती है, और समाजवाद के नाम पर यह सब कुछ होता है। समाजवाद के नाम पर हमारा भ्रष्ट शासनतन्त्र सब कुछ का सरकारीकरण कर सारे समाज को भ्रष्ट करने की प्रक्रिया में अग्रसर है।

चरित्रहीनता एवं बौद्धिक दिवालियेपन का उदाहरण वर्तमान केन्द्रीय वित्त-मन्त्री चह्वाण ने उस दिन लोक सभा में प्रस्तुत कर ही दिया। बजट पर बहस के दौरान पैट्रोल का मूल्य कम करने की जब बात आई तो चह्वाण साहब ने फरमाया कि पैट्रोल का मूल्य घटाने की अपेक्षा वे टैक्सी और स्कूटरों द्वारा किराया बढ़ाये जाने का समर्थन करेंगे। क्योंकि टैक्सी स्कूटर वाले उनके समर्थक हैं। उस जड़बुद्धि वित्त-पण्डित से कोई पूछे कि टैक्सी और स्कूटरों में बैठने वाले यात्री क्या तुम्हारे मतदाता नहीं जिनको कि वह अतिरिक्त यात्रा-व्यय वहन करना पड़ेगा ?

विदेशों से लिये जाने वाले ऋण के विषय में एक महत्त्वपूर्ण उल्लेखनीय तथ्य यह है कि जिन देशों से हमारी सरकार ऋण लेती है उनके अहसान के नीचे वह इतनी दब जाती है कि उसको मुँह खोलने का रास्ता भी नहीं बनता। परिणाम-स्वरूप वे देश जो चाहते हैं वह वे भारत से करवाते एवं कहलवाते हैं। समय-समय पर संयुक्त राष्ट्र संघ में कश्मीर के प्रश्न पर रूस का 'वीटो' प्रयोग न करने की धमकी देना इसका एक उदाहरण है। भारत पाकिस्तान युद्ध के दौरान

पाकिस्तान द्वारा प्रयुक्त और भारत द्वारा अपहृत अमरीकी टैंकों का प्रदर्शन इस कारण रोक दिया गया था कि उसके बदले में अमरीका ने भारत पर चीन के आक्रमण के समय नेहरू द्वारा कैनेडी को लिखे गये याचना-पत्र के प्रदर्शन की धमकी दी, यह इसका दूसरा उदाहरण है। रूस के दबाव में आकर कच्छ के रन के सम्बन्ध में ताशकन्द वार्ता में भाग लेना और वहाँ पर रूस के दबाव में आकर लालबहादुर शास्त्री द्वारा सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर स्वयं उस आघात को न सह सकने के कारण प्राणार्पण कर देना जैसा घाटे की अर्थ-व्यवस्था एवं ऋण-याचना का यह तीसरा निर्मम उदाहरण संसार के इतिहास में अनुपमेय है। क्यों कि हम संसार की महाशक्तियों के ऋणी हैं अतः उनके सभी आदेश मानने के लिये हमें बाध्य होना पड़ता है, भले ही वे हमारे स्वयं के लिये विनाशकारी सिद्ध हों।

विकासशीलता एवं समाजवाद के नाम पर न तो वर्षानुवर्ष करों में वृद्धि की जाय और न ही राष्ट्रीयकरण के नाम पर सब कुछ का सरकारीकरण किया जाय। न केवल इतना, भूतपूर्व राजामहाराजाओं के वैधानिक भत्तों को बन्द करने वाले ये केन्द्रीय एवं प्रादेशिक मन्त्री आधुनिक राजा महाराजा बनना छोड़ सादगी एवं मितव्ययिता का उदाहरण प्रस्तुत करें। सरकारी दौरों पर प्रतिबन्ध लगाया जाय। इस प्रकार की अनेक बातें हैं जिनसे वित्त-व्यवस्था को स्थिर किया जा सकता है। दूसरी मुख्य बात है धन के व्यय करने की। देश की आंतरिक एवं बाह्य सुरक्षा आवश्यक है। इसी प्रकार शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय को भी नितान्त उपयोगी मानना चाहिये। शिक्षा क्या है और कैसी हो इस विषय में इन स्तम्भों में विस्तार से अनेक बार प्रकाश डाला जा चुका है। सुरक्षा और शिक्षा दोनों ही नैतिक एवं राष्ट्रीय चरित्र निर्माण में सहयोग देते हैं।

हम बड़े-बड़े संयन्त्रों की स्थापना और बाँध एवं नहरों के निर्माण के विरुद्ध नहीं हैं। किन्तु पिछले बीस वर्षों से चलाई जाने वाली पंचवर्षीय योजनाओं का हम विरोध करते हैं। इन योजनाओं के कारण ही भारत ऋणी हो गया है और इनसे लाभ की अपेक्षा हानि हो रही है। देशी एवं घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहित किया जाय, कम्प्यूटर प्रणाली का प्रचलन रोका जाय, सरकारी क्षेत्र के उद्योगों के घोटालों की जाँच की जाय, उद्योगों का सरकारीकरण न कर अब तक सरकारीकृत उद्योगों को भी स्वतन्त्र कर दिया जाय।

भारत की इस अनर्थकारी अर्थ-व्यवस्था का, वित्त-पण्डित चह्वाण के बजट प्रस्तुत करने से प्रारम्भ कर अब तक बहुत विश्लेषण हो चुका है और आलोचना

[शेष पृष्ठ ३२० पर]

बंगला देश और भारत

□

श्री आदित्य

सरकारी समाचारों के अनुसार इस समय तक बंगला देश के विस्थापितों की संख्या (जो भारत में आ चुके हैं) साठ लाख से ऊपर हो चुकी है। इन विस्थापितों का व्यय भारत सरकार के अनुसार अस्सी लाख रुपया प्रतिदिन हो रहा है। शीघ्र ही यह एक करोड़ रुपया प्रतिदिन हो जायेगा।

एक समय भारत के प्रधान मन्त्री का यह कहना था कि इन विस्थापितों को उनके अपने देश के समीप ही रखना चाहिये जिससे उनको वापस भेजने में सुविधा हो सके। परन्तु अब प्रधान मन्त्री की वाणी में अन्तर आ गया है। अब वह कहती हैं कि उनको दूर स्थित दूसरे राज्यों में भी भेजना पड़ेगा।

इसका अर्थ यह है कि इनकी संख्या इतनी अधिक हो गयी है कि ये वहाँ सीमावर्त्ती राज्यों में नहीं रखे जा सकते। साथ ही अब उनके वापस भेज सकने की आशा कम हो गयी है।

क्योंकि ये विस्थापित बिना वहाँ का राज्य बदले जायेंगे नहीं। राज्य बदलता दिखायी नहीं देता। भारत के बस का यह रोग नहीं कि बंगला देश को स्वतन्त्र करा सके। पाकिस्तान की सैनिक और आर्थिक सहायता के लिये पूर्ण इस्लामी जगत्, चीन, इण्डोनेशिया, मलाया और सैनिक सामग्री के लिए ब्रिटेन, रूस, कदाचित् अमेरिका भी तैयार है और भारत की सहायता के लिए, इस मानवता और प्रजातन्त्र के कार्य के लिए भी कोई देश उद्यत नहीं। न तो प्रजातन्त्रात्मक पद्धति के देश और न ही तानाशाह देश। अतः हमारा यह विचार है कि भारत बंगला देश को पाकिस्तान से स्वतन्त्र नहीं करा सकता और ये विस्थापित पूर्वी पाकिस्तान में नहीं जाना चाहेंगे।

यह भी एक समस्या है कि पूर्वी पाकिस्तान को छोड़कर आये लोग एक भारी संख्या में हिन्दू हैं। वे तो कभी भी वापस पाकिस्तान में जाना नहीं चाहेंगे। यह आशा करनी चाहिये कि वे हमारे कांग्रेसियों की भाँति मूर्ख नहीं

कि भारत में आकर पुनः पाकिस्तानी नरक-कुण्ड में स्नान करने चले जायें।

वर्तमान स्थिति को देखकर दो ऐतिहासिक घटनाओं का स्मरण हो आता है। सन् १९४६ में पाकिस्तान की चर्चा चल रही थी और काँग्रेसी नेता हिन्दू-मुसलमान एक ही राष्ट्र मानते थे। जिन्ना और श्री सावरकर इनको दो राष्ट्र मानते थे। जिन्ना अर्थात् मुस्लिम लीग चाहती थी कि हिन्दू और मुसलमानों की अदला-बदली कर ली जाये। सावरकर कहते थे कि यदि देश विभाजन होना है तो हिन्दू मुसलमान की अदला-बदली होनी चाहिये। हमारे काँग्रेसी महापण्डित यह नहीं चाहते थे।

यहाँ तक कि जब पश्चिमी पाकिस्तान से हिन्दू भगाये जा रहे थे तब भी गांधी और नेहरू और इनके प्रभाव में काँग्रेसी यह कहते थे कि भारत में रहने वाले मुसलमानों को यहाँ रखेंगे। इनकी अदला-बदली नहीं करेंगे।

परिणामस्वरूप पूर्वी बंगाल में डेढ़ करोड़ से अधिक हिन्दू और भारत में साढ़े चार करोड़ मुसलमान रह गये। पश्चिमी पाकिस्तान से सब हिन्दू निकाल दिये गये।

फिर एक अन्य समय भी आया। जब पूर्वी पाकिस्तान में पहली बार हिन्दुओं का नरमेघ आरम्भ हुआ तो लाखों की संख्या में हिन्दू सीमा पार कर भारत में आ गये। उस समय भी यह प्रश्न उपस्थित हुआ था।

डाक्टर मुखर्जी केन्द्रीय मन्त्री मण्डल के सदस्य थे। यह कहा जाता है कि उन्होंने इस समस्या के दो सुझाव दिये थे। एक तो यह कि पाकिस्तान पर आक्रमण करके जितने लोग इधर आये हैं उनके लिये पाकिस्तान की भूमि पर अधिकार कर लिया जाये। वहाँ विस्थापितों को बसाया जाये। उस समय भारत के सम्बन्ध अमेरिका और चीन से सुदृढ़ थे।

एक दूसरा सुझाव यह दिया गया था कि जितने हिन्दू उधर से आये हैं उतने मुसलमान पाकिस्तान में धकेल दिये जायें।

जवाहरलालजी प्रधान मन्त्री थे। उनसे डाक्टर साहब की मन्त्री मण्डल की बैठक में ही तू-तू, मैं-मैं हो गयी। यह किंवदन्ति है कि दोनों में वहाँ मुक्का-मुक्की होने जा रही थी। आखिर डाक्टर साहब ने इस बात पर मन्त्री मण्डल से त्याग-पत्र दिया था।

भारत सरकार ने पूर्वी पाकिस्तान से आये लाखों विस्थापित पहले भी बसाये हैं। हमारा तो यह कहना है कि भारत की काँग्रेसी सरकार की यह परम्परा है कि पाकिस्तान की गालियाँ भी खायेंगे और उनकी जी-हजूरी भी करेंगे। वहाँ से अनिच्छित निकाले लोग यहाँ बसाये जायेंगे।

यदि परम्परा है तो गिला किस बात का है ? भारत की बहुसंख्यक जनता ने इन्दिरा गांधी को अपना वोट दिया है और उसके पूर्वजों की यह परम्परा है कि पाकिस्तान और इस्लामी देशों की खुशामद करनी और उनसे लादा बोझा भारत के सिर पर डाल देना।

अब होगा क्या ?

इस बात को समझने से पूर्व हमें यह समझ लेना चाहिए कि भारत निस्सहाय है। हम न तो अपने देश का स्वार्थ सिद्ध कर सकते हैं और न ही मानवता के नाते हम किसी की सहायता कर सकते हैं।

यह इसलिये कि हमने मनुष्यों की भाँति मान-प्रतिष्ठा के साथ रहना सीखा ही नहीं।

गांधी और नेहरू के विषय में यह सुना जा रहा है कि संसार भर के भले लोग उनका मान करते हैं, परन्तु उनकी नीति को कोई पसंद नहीं करते और भारत पर मुसीबत आने पर भारत, जो उक्त दोनों महापुरुषों का देश है, की सहायता नहीं करते।

इस कारण निम्न निष्कर्ष निकलते हैं—

(१) भारत की विदेश नीति ग़लत है। भारत के मित्र कम और शत्रु अधिक हैं। हम उनसे मित्रता करते हैं जो कृतघ्न हैं और मित्रता के प्रतिकार में शत्रुता करने के लिए उद्यत रहते हैं।

(२) भारत एक बहुत बड़ा देश है जिसकी जनसंख्या लगभग पचपन करोड़ है, परन्तु यह एक दुर्बल देश है। इसके पास अपनी रक्षा के लिए भी पर्याप्त शस्त्रास्त्र नहीं। देश रक्षा के लिए हमारी सेना भी कम है। हमारी दुर्बलता का सबसे बड़ा कारण यह है कि यहाँ इतने बड़े जन समूह में ऐक्य नहीं। पूर्ण जनता छोटे-छोटे समुदायों में बँटी हुई है। यहाँ पंजाबी, गुजराती, बंगाली, मराठे, द्रविड़, बिहारी, उड़िया तो हैं परन्तु भारतीय नहीं हैं।

(३) देश में 'जिसकी लाठी उसी की भैंस' वाली बात प्रचलित हो गयी है अतः जब किसी के मन की बात नहीं होती तो वह बलपूर्वक अपनी बात मानने लगता है। बल प्रयोग के कई उपाय हैं। भूख-हड़ताल से लेकर बम्ब, पिस्तौल तक सब प्रयोग होते हैं और बल प्रयोग के ये उपाय सरकार से वर्जित नहीं माने जाते। इस देश में एक व्यक्ति यह कहे कि अमुक समुदाय अनाचार करता रहा है तो उसको तो दण्ड दिया जा सकता है, परन्तु जब कलकत्ते अथवा बर्दवान की सड़कों पर किसी के पेट में छुरा घोंपकर मार डाला जाये तो वह न तो पकड़ा जा सकता है और यदि पकड़ा भी जाये तो सुगमता से जेल से भागकर

छूट सकता है।

संक्षेप में यहाँ शान्ति-व्यवस्था दुर्बलों को दबाने के लिए है। बलशालियों के लिए किसी प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं।

(४) यहाँ यह भी प्रचलित हो रहा है कि प्रत्येक की प्रत्येक मुसीबत की उत्तरदायी सरकार है। मकान नहीं तो सरकार से माँगो, रोटी नहीं तो सरकार माँगो, नौकरी नहीं तो सरकार देगी, अभिप्राय यह कि यहाँ के रहने वाले लगभग पचपन करोड़ की प्रत्येक कठिनाई का निवारण सरकार का काम है।

ये कुछ निष्कर्ष हैं जिनसे हम इस संसार में अपनी निस्सहायता को समझ सकते हैं।

देशवासियों के मन की यह स्थिति इस कारण है कि यह देश पहले सात सौ वर्ष तक मुसलमानी राज्य में फँसा हुआ पिछड़ता चला गया। देश के घटकों में सब उच्च मूल्य विलीन होते रहे। हम दिन-प्रतिदिन हीन और दीन होते रहे। मुसलमानी राज्य में सबसे बड़ी हीनता हमारी बुद्धि में हुई। पूर्ण जाति की जाति बुद्धि विहीन हो गयी। हममें जातीय मूल्यों को समझने की बुद्धि ही नहीं रही।

अब अंग्रेज़ के राज्य में तो उससे भी कुछ अधिक हुआ है। एक मूर्ख अज्ञानी बालक के पास अनमोल रत्न था। किसी ठग ने उसको एक काँच का टुकड़ा दे रत्न ले लिया। बस यही बात भारतवासियों के साथ हुई है। इसकी अद्वितीय अध्यात्म विद्या के स्थान यूरोपियन काँच रूपी विद्या देकर इसे ठग लिया है। और उस अज्ञानी बालक की भाँति हम उस काँच के टुकड़े को मूल्यवान समझ गले से लगाये हुए हैं।

परिणाम यह है कि हम उस झूठी विद्या को अपने गले में बाँध कर यह समझ रहे हैं कि हमारे गले में मूल्यवान रत्न बँधा है और सब संसार जानता है कि हम निर्धन, दुर्बल, परस्पर लड़ने-झगड़ने वाले मूर्ख हैं। इस कारण सब संसार के लोग हमारा मज़ाक उड़ाते हैं।

हम अहिंसा की कूक लगाते हैं। दुनिया हमें शाबासी देती है और शाबासी देते-देते मुख पर एक चपत भी लगा देती है।

हम मानवता का नाम लेते हैं। लोग हमारी प्रशंसा के पुल बाँध देते हैं। परन्तु प्रशंसा करते-करते गालियाँ भी सुना देते हैं।

हम दया के नाम पर सहायता माँगते हैं। सब हमसे सहानुभूति भी रखते हैं। कुछ दया-भाव में सहायता भी करते हैं, परन्तु सहायता करते-करते हमारी लंगोटी भी उतारकर ले जाना चाहते हैं।

[शेष पृष्ठ ३०१ पर]

माण्डूक्योपनिषद्

□

श्री प्रभाकर

[गतांक से आगे]

इससे पूर्व के अंक में हम गौड़पादाचार्य के आगम प्रकरण की प्रथम ९ कारिकाओं की संक्षिप्त विवेचना कर चुके हैं। हमारा यह कहना है कि वे कारिकायें माण्डूक्योपनिषद् के आशय को ठीक-ठीक प्रकट नहीं करतीं।

हमारा मत यह है कि इस उपनिषद् के प्रथम छः मन्त्र जगत् रचना के तीन स्तरों का वर्णन करते हैं। कारिकायें भी यही करती प्रतीत होती हैं। इनका उपनिषदों से इस बात में अन्तर विशेष है कि ये ब्रह्म के तीन स्तरों में रूपों को इंगित करती हैं और ब्रह्म परमात्मा का रूप माना जाता है। साथ ही कारिकाओं में ब्रह्म के रूपों में भी विभ्रम है।

उदाहरण के रूप में प्रथम कारिका में ही लिखा है कि विभु विश्व बहिष्प्रज्ञ है। विभु का अर्थ सर्वव्यापक भी है और दूर-दूर तक फैला हुआ भी है। यहाँ अर्थ दूर तक फैला हुआ ही ले सकते हैं अर्थात् कार्य जगत् यह बहिष्प्रज्ञ है। अर्थात् यह बाहर से चेतन दिखाई देता है।

प्रज्ञ का अर्थ ज्ञानवान नहीं हो सकता। कारण यह कि कार्य जगत् में बहुत कुछ है जो ज्ञानवान नहीं। बहुत कुछ चेतन भी नहीं। अतः प्रज्ञ के क्या अर्थ लें और विभु विश्व के क्या अर्थ लें? यह स्पष्ट नहीं है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि उपनिषद् के उक्त मन्त्रों में विभु विश्व शब्द नहीं है। यह गौड़पादाचार्य का मनगढ़न्त शब्द है और इसके अर्थ संदिग्ध हैं और फिर इसे बहिष्प्रज्ञ लिखा है।

इतना ही नहीं, प्रत्युत विभु विश्व को बहिष्प्रज्ञ लिखा है। साथ ही इसे तेज के कारण अन्तःप्रज्ञ और घनप्रज्ञ तथा प्राज्ञ भी लिखा है। साथ ही ऐसा वर्णन किया है कि यह ब्रह्म है।

अतः यह सब अनर्गल है। बात स्पष्ट हो जाती, यदि विभु विश्व जैसे

भ्रमोत्पादक शब्द का प्रयोग न कर सरल शब्द कार्य जगत् का प्रयोग किया जाता और कार्य जगत् के विकास और ह्रास में उपनिषद् की भाँति चार पाद माने जाते ।

उपनिषद् में स्पष्ट लिखा है कि प्रथम पाद जिसे जाग्रतावस्था कहा है, में चेतना बाहर प्रकट होती है। यह प्राणी जगत् में है। कार्य जगत् परमात्मा नहीं। यद्यपि परमात्मा इसका निमित्त कारण है। साथ ही ब्रह्म के अर्थ सदैव परमात्मा नहीं होते ।

इसी प्रकार उपनिषद् में जगत् रचना में द्वितीय पाद स्वप्न स्थान माना है। इसको हमने ब्रह्म दिन का उषा काल कहा है। जब सूक्ष्म परमाणुओं से स्थूल जगत् के पदार्थ बनने लगते हैं। ये पाद अन्तःप्रज्ञ हैं। तेज वैश्वानर अग्नि के रूप में भीतर ही भीतर कार्य करता है। इस कारण इसको अन्तःप्रज्ञ कहा गया है।

तीसरा पाद सुप्त स्थान माना है। उपनिषद्कार रचना की व्याख्या में कार्य-जगत् के पूर्ण विकसित रूप के कार्य की अवस्था से पूर्व की ओर चलता है। वर्तमान से पूर्व उषा, जिसे स्वप्न स्थान कहा है, का वर्णन है। उससे पूर्व सुप्त स्थान है।

इसमें 'कामं कामयते न कञ्चन' के वाक्य से समझाया है। इस स्थिति में 'एकीभूतः प्रज्ञानघन' से वर्णन किया है। प्रज्ञानघन का अर्थ हम बता चुके हैं। यह केन्द्रित चेतना (concentrated energy) कही जा सकती है। अर्थात् उस समय परमात्मा का तेज एक स्थान पर केन्द्रित होता है और शेष जगत् के अंश तेज रहित होते हैं।

अतः उपनिषद् में जगत् के भिन्न-भिन्न रचनास्तरों पर प्रज्ञा (चेतना) भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकट होती है। प्रथम पाद जाग्रत अवस्था में यह बहिष्प्रज्ञ होती है। जब रचना आरम्भ होती है तो यह अन्तःप्रज्ञ होती है। उससे भी पूर्व जब प्रलय काल का अन्त होता है तब प्रज्ञा का घन रूप होता है। अर्थात् परमात्मा का तेज एक स्थान पर केन्द्रित होता है ।

परन्तु कारिकाओं के लेखक जिसकी नवीन वेदान्तियों में बहुत महिमा है, इस रहस्य को समझ नहीं सके। कदाचित् उनको सृष्टि-रचना का ज्ञान नहीं था और वे उपनिषद् के अर्थों को समझ नहीं सके।

यह हमने केवल प्रथम कारिका की बात ही बतायी है। अन्तिम अर्थात् नवीं कारिका के विषय में भी हम अपने पूर्व के लेख में बता आये हैं। उसमें कारिका के लेखक लिखते हैं कि संसार की रचना 'देवस्यैष स्वभावोऽयम्...'

लिख दिया है। हमने बताया है कि श्वेताश्वतर उपनिषद् में इस स्वभाव को जगत् का कारण नहीं माना।

अतः कारिकाओं का अभी तक का निरीक्षण उपनिषद् से असंगत सिद्ध हुआ है।

उपनिषद् का अगला मन्त्र इस प्रकार है—

नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥७॥

इस मन्त्र का अन्वय इस प्रकार है—

न अन्तः प्रज्ञं, न बहिः प्रज्ञं, न उभयतः प्रज्ञं, न प्रज्ञानघनं, न प्रज्ञं न अप्रज्ञं। अदृष्टम्, अव्यवहार्यम्, अग्राह्यम्, अलक्षम्, अचिन्त्यम्, अव्यपदेश्यम्, एकात्म प्रत्ययसारं, प्रपञ्च उपशमं, शान्तं, शिवम्, अद्वैतं, चतुर्थ, मन्यते, स आत्मा स विज्ञेयः ॥

आत्मा से अभिप्राय है सार (essence) मूल पदार्थ। विज्ञेयः का अर्थ है विशेष जानने योग्य।

अतः वह (जगत् जिसके तीन पाद पूर्व मन्त्रों में कहे गये हैं) मूल सत्त्व है जो विशेष जानने योग्य है।

चौथे स्थान पर घोर प्रलयकाल की ओर संकेत है। यह पूर्ण कार्य जगत् का मूल कारण है। वह कैसा है? मन्त्र के पूर्व भाग में वर्णन किया है।

उस अवस्था में न तो वह बहिष्प्रज्ञ है, न ही अन्तःप्रज्ञ। दोनों प्रकार की चेतनायें उसमें नहीं हैं। वह घन प्रज्ञ (केन्द्रित शक्ति) भी नहीं है। न तो चेतन है और न ही अचेतन है। न दिखायी देने योग्य, न व्यवहार में आने योग्य, न ग्रहण किये जाने योग्य, लक्षणों से रहित, जो चिन्तन में न आ सके, कथन न किया जा सके, एक समान सार रूप। प्रपंच से शान्त, शिव, अद्वैत विद्वान् लोग इसे (जगत् रचना) का चौथा पाद मानते हैं।

यहाँ आत्मा शब्द का अर्थ हमने सार, मूल पदार्थ किया है। यही अर्थ यहाँ ठीक बैठता है।

आत्मा का अर्थ परमात्मा नहीं बनता क्योंकि ऊपर जो लक्षण इसके लिखे हैं, वे परमात्मा के लक्षण नहीं प्रत्युत जगत् के मूल उपादन कारण प्रकृति के हैं।

मनुस्मृति में भी मूल प्रकृति का यही स्वरूप लिखा है। वहाँ लिखा है—

आसीदिदं तमोभूमतप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ (मनु० १-५)

यह संसार (प्रलयकाल में) अन्धकारमय हो जाता है, न जानने योग्य हो जाता है, अलक्षण युक्त हो जाता है। वह युक्ति का विषय नहीं रह जाता, अविज्ञेय हो जाता है। सब ओर से सोया हुआ प्रतीत होता है।

मनुस्मृति की अपेक्षा उपनिषद् में प्रलयकाल की अवस्था को अधिक विस्तार से वर्णन किया है।

मनुस्मृति में यह वर्णन प्रकृति का है और जगत् रचना के समय परमात्मा इसमें बीज डालकर सृष्टि की रचना आरम्भ करता है। यह इस प्रकार लिखा है—

अप एव ससर्जाऽऽदौ तासु बीजमवासृजत् ।। (मनु—१-८)

आरम्भ में अपाः का सृजन किया। उसमें बीज डालकर जगत् की रचना की।

अतः उपनिषद् में भी प्रकृति का ही वर्णन है।

उपनिषद् में जगत् रचना के चतुर्थ पाद में एक शब्द आया है अद्वैत। यह प्रकृति के उन दो रूपों की ओर संकेत करता है जो सत् और असत्, नित्य और नाशमान, कारण और कार्य से भी वर्णन किया जाता है।

प्रकृति के दो रूप हैं। मूल और परिणामी। उस (घोर प्रलय) अवस्था में एकभूत, अद्वैत हो जाता है।

इस समय आत्मा परमात्मा की अवस्था क्या होती है? यह इस मन्त्र में वर्णन नहीं की।

अगला मन्त्र इस प्रकार है—

सोऽयमात्माध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ।।८।।

इस मन्त्र का अन्वय इस प्रकार है—

सा, अयम्, आत्मा, अध्यक्षरम्, ओंकार, अधिमात्रं, पादा मात्रा, मात्राः, च पादा, अकार, उकार, मकार इति।

अर्थात्—वह (मूल सत्त्व अर्थात् मूल प्रकृति) यह सार है। इसका अध्यक्ष ओंकार अधिमात्र है। यह पाद (रचना स्तर) मात्रा है। इस स्तर पर मात्रा अकार, उकार, मकार से प्रकट होती है। अर्थात् परमात्मा की शक्ति के अधीन है।

इसका अभिप्राय है कि यह (चतुर्थ पाद में जगत् रचना का स्तर) मात्रा में है। मात्रा का अर्थ आप्टे अपने शब्द कोष में 'atom' करते हैं। अर्थात्

[शेष पृष्ठ ३२० पर]

भारत में इतिहास का एक पक्ष

□

श्री सचदेव

त्रेता युग के २४ उप युगों में ६ अति विख्यात हैं। इनमें 'आदि त्रेता' युग में दक्ष प्रजापति युग-प्रवर्तक महापुरुष हुए हैं। इसके अनन्तर एक अन्य उपयुग है। 'आद्य त्रेता युग मुख'। इसमें बारह देव प्रसिद्ध महापुरुष हुए हैं। एक अन्य उपयुग हुआ है जिसे त्रेता युग मुख कहा गया है। इसके महापुरुष हुए हैं करन्धय। इसके अनन्तर एक उपयुग में आविसित पुत्र नाम के महापुरुष हुए हैं। तदनन्तर एक उपयुग दत्तात्रेय के नाम से विख्यात है। बाद में एक उपयुग मान्धात के नाम से आता है। इसके अनन्तर जामदग्न्य राम हैं और अन्तिम त्रेता युग में दाशरथि राम महापुरुष हुए हैं।

इन महापुरुषों ने युग-प्रवर्तक कार्य किये हैं। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि सब महापुरुष सूर्य वंशी नहीं हैं। न ही सबके सब राजा हैं। उदाहरण के रूप में दत्तात्रेय और जामदग्न्य राम को लिया जा सकता है। इस पर भी ये महापुरुष अपने किसी न किसी कार्य के लिए इतने विख्यात हुए हैं कि वे अपने काल के सूचक हो गये हैं।

इसी प्रकार द्वापर के उपयुगों में भी कुछ महापुरुषों के नाम विशेष रूप में विख्यात हैं। इतना अन्तर आ गया प्रतीत होता है कि द्वापर के उपयुग में प्राय: सबके सब राजाओं के अथवा राजवंश में उत्पन्न महापुरुषों के नाम हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि द्वापर युग में राज्य-प्रथा भली भाँति स्थापित हो चुकी थी और राजाओं की महिमा बढ़ गयी थी। इससे यह भी सिद्ध होता है कि युग-प्रवर्तक कार्य करने में राज्य-सत्ता का मुख्य हाथ होता था।

द्वापर युग में चन्द्रवंशीय राजाओं का भारत में अधिक प्रभाव रहा है। अत: इस युग के अधिकांश महापुरुष चन्द्रवंशीय हुए हैं। इनमें विख्यात भरत, अजमीढ़, हस्ति, कुरु, प्रतिश्रवा, शन्तनु, युधिष्ठिर हैं।

यहाँ पुराणों और रामायण, महाभारत आदि में लिखी एक बात का स्पष्टी-

करण कर देना आवश्यक है। राम इत्यादि अनेक राजाओं के राजत्वकाल को सहस्रों वर्ष लिखा है। राम का राजत्व काल दस सहस्र वर्ष लिखा है। इसका रहस्य महाभारत में स्पष्ट किया है।

ययाति की कथा में यह वृत्तान्त है कि शुक्राचार्य के वर से ययाति को एक सहस्र वर्ष के लिए यौवन मिला था। ययाति ने अपने बड़े पुत्र यदु से यौवन से बुढ़ापा बदलने का आग्रह किया था। उसने यदु से कहा था—

त्वं यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।
यौवनेन त्वदीयेन चरेयं विषयानहम् ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे तु पुनस्ते यौवनं त्वहम् ।
दत्त्वा स्वं प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह ॥

(महा भा० आदि० ८४-३, ४)

अर्थात्—यदि तुम मेरे बुढ़ापे के दोष को ले लो तो मैं तुम्हारी जवानी से विषयों के भोग का उपभोग करूँगा। एक हजार वर्ष पूरे होने पर मैं पुनः तुम्हारी जवानी वापस देकर बुढ़ापे का दोष वापिस ले लूँगा।

यदु ने तो उसे यह यौवन दिया नहीं। हाँ, पुरु ने पिता के बुढ़ापे को लेकर उसको अपना यौवन दे दिया। इस पुत्र के यौवन को लेकर ययाति ने इसका भोग किया। यह इस प्रकार वर्णन किया है—

स सम्प्राप्य शुभान् कमांस्तृप्तः खिन्नश्चपार्थिव : ।
कालं वर्षसहस्रान्तं सस्मार मनुजाधिपः ॥

(महा भा० आदि० ८५-७)

अर्थात्—वह नरेश शुभ भोगों को प्राप्त करके पहले तो तृप्त एवं आनन्दित हुआ, परन्तु जब वह यह विचार करता था कि ये हज़ार वर्ष भी पूरे हो जायेंगे, तब उसे दुःख होता था।

यौवनं प्राप्य राजर्षिः सहस्रपरिवत्सरान् ।
विश्वाच्या सहितो रेमे व्यभ्राजन्नन्दने वने ॥
अलकायां स कालं तु मेरुशृंगे तथोत्तरे ।
यदा स पश्यते कालं धर्मात्मा तं महीपतिः ।
पूर्णं मत्वा ततः कालं पूरुं पुत्रमुवाच ह ॥

(महा भा० आदि० ८५-८, ६, १०)

अर्थात्—राजर्षि ययाति एक हजार वर्ष का यौवन प्राप्त कर नन्दन वन में विश्वाची अप्सरा के साथ रमण करते प्रकाशित होते थे। ये अलकापुरी में तथा उत्तर दिशावर्त्ती मेरु शिखर पर इच्छानुसार विहार करते थे। धर्मात्मा

नरेश ने जब देखा कि समय अब पूरा हो गया; तब वे अपने पुत्र पुरु के पास चले गये। उसको यौवन वापस दिया और राज्य से अभिषिक्त कर एक सहस्र वर्ष तक वानप्रस्थ का भोग किया। इन एक सहस्र वर्षों की व्याख्या में लिखा है—

पूर्णं वर्षसहस्रं च एवंवृत्तिरभून्नृप: ।
अब्भक्ष: शरदस्त्रिंशदासीन्नियतवाङ्मना: ।।
ततश्च वायुभक्षोऽभूत् संवत्सरमतन्द्रित: ।
तथा पञ्चाग्निमध्ये च तपस्तेपे स वत्सरम् ।।
एकपाद: स्थितश्चासीत षण्मासाननिलाशन: ।
पुण्यकीर्तिस्तत: स्वर्गं जगामावृत्य रोदसी ।।
(महा भा० आदि० ८६-१५, १६, १७)

अर्थात्—राजा को इसी वृत्ति से रहते हुए एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये। उन्होंने मन और वाणी पर संयम कर तीस वर्ष जल का आहार किया। तत्पश्चात् आलस्य रहित हो एक वर्ष तक केवल वायु पीकर रहे। फिर एक वर्ष तक पाँच अग्नियों के बीच बैठकर तपस्या की।

इसके बाद छ: मास तक हवा पीकर वह एक पैर पर खड़े रहे। तदनन्तर पुण्यकीर्ति महाराज स्वर्ग लोक को चले गये।

इस प्रकार एक सहस्र वर्ष की व्याख्या करने पर वह साढ़े बत्तीस वर्ष बनते हैं। हमारा यह मत है कि उन दिनों साहित्यिक भाषा में जब भी किसी के लम्बे काल तक कोई शुभ कार्य करने को सहस्र वर्ष पर्यन्त लिखा जाये तो उसे साढ़े बत्तीस वर्ष ही समझना चाहिये।

इस प्रकार राम की आयु तीन सौ वर्ष से कुछ ऊपर बनती है। यह समझ में आ सकने वाली बात है।

हमने अपने पूर्व लेख में यह लिखा है कि कलियुग का इतिहास अधिक व्याख्या से पढ़ने को मिलता है। पुराण ग्रन्थों में इस काल के विषय में कुछ लिखने से पूर्व हम कलियुग आरम्भ के विषय में लिख देना चाहते हैं।

युग गणना के अनुसार महाभारत का युद्ध द्वापर युग और कलियुग की संधि पर हुआ था। इसका प्रमाण महाभारत में ही मिलता है। लिखा है—

अन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत् ।
समन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयो: ।। आदि २-१३)

अर्थात्—अब द्वापर और कलियुग की संधि का समय आया तो उसी समन्त-पञ्चक-क्षेत्र में कौरवों और पाण्डवों की सेनाओं का परस्पर युद्ध हो गया। महाभारत में अन्य भी कई स्थलों पर इस बात का वर्णन है कि युद्ध द्वापर और

कलियुग की संधि पर हुआ।

कलियुग के आरम्भ से सम्वत् चला और कई प्राचीन लेखों में इस सम्वत् का उल्लेख है।

(१) इण्डियन कलचर भाग १२ खण्ड १ पृ० १९ पर कोचीन के महाराज के एक पत्र का उल्लेख है जिस पर कलि सम्वत् ३४१८ लिखा है।

(२) तेलुगु प्रदेश में नन्दी दुर्ग के एक मन्दिर में एक ताम्र-दानपत्र मिला है जो मद्रास के राजकीय भण्डार के संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकों के संग्रह में में विद्यमान है। ताम्रपत्र तेलुगु भाषा में लिखा है। उस पर कलि सम्वत् ३४२६ लिखा है।

कलि सम्वत् का वर्तमान सम्वत् से भी सम्बन्ध पता चलता है। इस विषय में चालुक्य कुल के महाराज सत्याश्रय पुलकेशी द्वितीय का रविकीर्ति द्वारा संस्कृत में रचित एक शिलालेख दक्षिण के कालिन्दी अर्थात् बीजापुर विषयान्तर्गत एहोल स्थान के मैंगुरी नामक एक जैन मन्दिर में मिला है। अक्षर तो दाक्षिणात्य हैं, भाषा संस्कृत है। लेख है—

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु श (ग) तेष्वब्देषु पञ्चसु॥
पंचाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम॥

इसका अर्थ है ३६३७ (३०+३०००+१०७+५००) कलि के व्यतीत होने पर जब शक भूभुजों के ५०६ वर्ष व्यतीत हुए (तब यह शिला स्थापित की गयी)।

वर्तमान तिथि काल से इसका सम्बन्ध इस प्रकार बनता है—३६३७-५५६ =३०८१+१८९३ (वर्तमान शब्द सम्वत्)।

४९७४+३६ (युद्ध ३६ वर्ष कलियुग आरम्भ से पूर्व हुआ था) अतः आज युद्ध हुए ५०१० वर्ष बनते हैं। अन्य गणनाओं के अनुसार यह अवधि ५०७१ वर्ष बनती है।

इस गणना के अतिरिक्त प्राचीन काल से प्रसिद्ध सप्तऋषि की गति के अनुसार भी गणना की जाती है। सप्तऋषि एक सौ एक वर्ष में एक नक्षत्र पार करते हैं और इसकी नक्षत्र में स्थिति के अनुसार काल नापा जाता था। इसके अनुसार भी महाभारत युद्ध के काल की गणना की गयी है।

इसके विषय में हम अपने अगले लेख में लिखेंगे।

सार्वभौम वैदिक संस्कृति

स्वामी श्रीराम प्रपन्नाचार्य

कलियुग के सहस्र वर्ष पश्चात् विश्व में सर्वत्र वैदिक संस्कृति का प्रचार था। मनु के मत्स्यावतार की कथा नूह के जलप्लावन की कथा के रूप में मिस्र, बेबिलोन, सीरिया, चाल्डिया, जुड़िया, फारस, अरब, ग्रीस, चीन तथा अमेरिका आदि समस्त देशों में प्रचलित है। नूह के दो पुत्र हेम (हेमेटिक) तथा शेम (सेमिटिक) थे। हेम के वंशज मिस्र वासी अपने को सूर्यवंशी कहते हैं। मिस्र का प्रथम राजा मेनिष (Menes) था। हेलियो का अर्थ सूर्य होता है। हेलिसपोलिस (Helispolis) तथा मेनिष (Menes) मिस्र के नगर थे। अमेरिका के मूल निवासी मनुवंशी हैं, सूर्यवंशी (मनुवंशी) श्रीरामचन्द्र का 'राम सीतव' नामक उत्सव मनाते हैं। यहाँ भी पुरातत्त्व के अन्वेषण से सूर्य मन्दिर मिला है। मनु के नौ तथा नावः शब्द से नूह शब्द की उत्पत्ति है। मिस्री भाषा में नून का अर्थ मत्स्य है। फिनीशिया वासी वैदिक देवता मरुत की उपासना करते थे। फिनीशिया में ईल का अर्थ मत्स्य विशेष है। श्रीमद्भागवत के अनुसार सूर्य वंश की कन्या इला के वंशज ऐलवंशी (चन्द्र वंशी) क्षत्रिय म्लेच्छ देशों के अधिपति हुए। नूह के पुत्र हेम का अर्थ हेम गर्भ (सूर्य) तथा शेम का अर्थ सोम है। पुराणों में राजा हेम का वर्णन है—

तितिक्षो रुषद्रथः पुत्रोऽभूत् ततो हेमः हेमात् सुतपाः।

—विष्णु पुराण ५।१८।१

अर्थात् ययाति के वंश में रुषद्रथ तथा उसके वंश में हेम हुआ।

मनु से आर्यों की उत्पत्ति

परमात्मा की मानसी सृष्टि से सर्वप्रथम मानसरोवर पर मनु की सृष्टि हुई। संसार के अन्य मनुष्य आर्यों की ही वर्णशंकर शाखायें हैं। स्मृतियों के अनुसार ब्राह्मणों की वर्णशंकर जाति है। अरबी में शेख तथा सैयद उच्च कोटि

के मुसलमान माने जाते हैं। तुर्की नगर ऐल वंशी राजा तुरुष्व के द्वारा बसाया गया। जहाँ सेषक तथा वासक मुस्लिम शेष तथा वासुकि वंश के नागवंशी हैं। पुराणों के भूगोल के अनुसार भूमध्य में सुमेरु तथा इलावृत्त खण्ड है। भूमध्य सागर के निकट ऐलबुर्ज़ (ऐल दुर्ग) तथा सुमेरिया जाति पुरातन पौराणिक तथ्य का स्मरण दिलाती हैं। महर्षि कवि शुक्राचार्य द्वारा प्रतिष्ठित मक्केश्वर महादेव की अरबी में काबा मसजिद के अन्तर्गत संगे असबद कहते हैं। यहूदी तथा प्राचीन कैथोलिक भी शिवलिंग की पूजा करते थे। कुबाला खाँ ने मंगोलिया में च्यम्बु (शम्भु) महाकाल मन्दिर की स्थापना की थी। मंगोलिया तथा साइबेरिया में बौद्धमत के प्रचार के पूर्व वैदिक धर्म के शैव सम्प्रदाय का प्रचार था। सर्वप्रथम ईश्वर द्वारा आर्यों की उत्पत्ति हुई—

आर्यः ईश्वर पुत्रः। —निरुक्त

निरुक्ताचार्य यास्क मुनि के कथनानुसार आर्य ईश्वर-पुत्र हैं।

परमात्मा ने भूमि आर्यों को दिया—

अहं भूमिमददामार्याय। —वेद

समग्र विश्व को आर्यों के समान श्रेष्ठ सदाचारी बनाना चाहिए।

"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।"

मानसरोवर पर वैवस्वत मनु का निवास है।

दक्षिणेन पुनर्मेरोर्मानसस्थ च मूर्धनि।
वैवस्वतो निवसति यमः स यमने पुरे॥ —वायुपुराण ५०।८८

वैवस्वत मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु के निमित्त राजधानी अयोध्या का निर्माण कराया था।

शतपथ ब्राह्मण की गाथा है कि उत्तर गिरि हिमालय से मनु का अवसर्पण हुआ।

तदप्येत दुत्तरस्य गिरे मनोरव सर्पणम्।" —शतपथ ब्राह्मण १।८।१६

महाभारत के अनुसार मनु ने जलप्रलयकाल में नौका को हिमालय के शृङ्ग में बाँध दिया था।

अस्मिन् हिमवतः शृंङ्गे नाव बन्धीत मा चिरम्।"

—महाभारत वन पर्व १८७।४९

संस्कृत में मनु तथा मनस शब्द है। जर्मन भाषा में ट्यूटनों का मूल पुरुष मनस है। अंग्रेजी में मैन, जर्मन में मन्न तथा संस्कृत में मानव शब्द समानार्थक हैं। जर्मन भाषा का मनेष तथा संस्कृत का मनुष्य समानार्थक हैं। संस्कृत में एकात्म भू शब्द का अरबी में आदम तथा सावित्री को हौवा कहते हैं।

बाइबिल की वंशावली—पुराणों में तथा बाइबिल में वंशावली नहीं, किन्तु नामावली का उल्लेख है। बाइबिल की वंशावली की वर्ष संख्या इतिहास तथा गणित के प्रमाणों से मिथ्या सिद्ध हो जाती है। बाइबिल के अनुसार आदम से नूह तक ११ वंश की वर्ष संख्या २२६२ वर्ष है। नूह के पुत्र शेम से इब्राहीम तक ११ वंश की वर्ष संख्या १३१० वर्ष है। अतः यहूदी, ईसाई तथा मुस्लिम मत से मनुष्योत्पत्ति काल की गणना—

(१) आदम से नोआ (नूह) तक ११ वंश = २२६२ वर्ष
(२) नोआ के पुत्र शेम से इब्राहीम तक ११ वंश = १३१० वर्ष
योग = ३५७२ वर्ष
(३) डॉ० स्पीगल के अनुसार इब्राहीम का समय = १९०० वर्ष ई० पू०
(४) अतः ई० पू० आदम का समय = ३५७२ + १९००
= ५४७२
(५) वर्तमान १९७१ ई० में इब्राहीम का समय = १९०० + १९७१
= ३८७१ वर्ष
(६) वर्तमान १९७१ ई० में आदम का समय = ३५७२ + ३८७१
= ७४४३ वर्ष

अतः यहूदी, ईसाई तथा इस्लाम की गणना से मनुष्योत्पत्तिकाल सन् १९७१ ई० तक = ७४४३ वर्ष।

किन्तु भूगर्भशास्त्र तथा भौतिक शास्त्र की रेडियोधर्मिता (Radio Activity) की गणना से मनुष्योत्पत्ति काल ७४४३ वर्ष असिद्ध हो चुका है।

सन् १६५४ ई० के आयरलैण्ड के आर्च विशप ऊशर (usher) ने घोषित किया कि सृष्टि का प्रारम्भ ४००४ वर्ष ई० पू० हुआ। अतः ऊशर के मतानुसार सृष्टिकाल = ४००४ + १९७१ = ५९७५ वर्ष है।

यूनान में हरकुलिस देवता की पूजा करते थे जो वैदिक धर्म का सुर कुलेश है। राजा हेलियो डोरस भागवत् धर्म का उपासक था। विदिशा में इसके द्वारा स्थापित गरुड़ स्तम्भ पर अंकित है—"**परम भागवतः हेलियोडोरः**" मिस्र के पिरामिडों में नील तथा इमली का प्रयोग है। नील तथा इमली भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में उत्पन्न नहीं होता। भारत से ही नील तथा इमली का व्यापार नील नदी द्वारा होता था। अतः नील नदी को मिस्री भाषा में नाडल नदी कहते हैं। नील को इण्डिगो तथा इमली को संस्कृत में तिन्तिडीक तथा मिस्र में टेमेरिण्ड कहते हैं। मेगास्थनीज ने बकस से सिकन्दर अलेक्जण्डर तक १५४ राजाओं का वर्षमान = ६४५१ वर्ष ३ मास लिखा है।

मिस्र के अल अमर्ना (El-Amarna) में पुरातत्त्व के उत्खनन से १५००

वर्ष ई० पू० के राजाओं के नाम आर्तमन्य, यशदत्त, तथा सुत्तर्ण प्राप्त हुए हैं। १४०० वर्ष ई० पू० में हित्त-मितन्नी राज्यों के बीच सन्धि-पत्र में इन्द्र, वरुण, नासत्यौ (अश्विनी कुमार) का उल्लेख है।

जेरुसेलम के हमीदिया पुस्तकालय में हारूँ रशीद के महामन्त्री फजल बिन यहिया का मुहर लगा हुआ ताम्रपत्र प्राप्त हुआ है। इस ताम्रपत्र पर १२८ शेर हैं, जिसमें भारतवर्ष, वेदों तथा आर्यों की प्रशंसा है। हजरत मुहम्मद के ५०० वर्ष पूर्व कवि जरहम-बिन-ताई की कविता में गीता…'परिमाणाय साधूना' के आधार पर कृष्णावतार की प्रशंसा है। कवि शुक्राचार्य द्वारा स्थापित मक्का की काबा मसजिद हैं। स्कन्द पुराण के अनुसार यह मक्केश्वर महादेव है। मुहम्मद ने ३६० मूर्तियों को हटा दिया। काबा में अब भी महादेव की मूर्ति "संगे असबद" के रूप में है। बलख में नौविहार बौद्धों का नवविहार था। बुद्ध शब्द को अरबी में 'बुत्' कहते हैं।

संस्कृत के सिद्धान्त के अरबी अनुवाद को सिन्द हिन्द, सुश्रुत को सुश्रुद, चरक को सिरक, पञ्चतन्त्र के 'करटक दमनक' की कथा के आधार पर अनुवाद को कलिला दमना कहते हैं। चाणक्य नीति के अरबी अनुवाद को शानक, हितोपदेश को विद्या, ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त को अर्कले हिन्दसा तथा बीजगणित को अलजबर कहते हैं। भारत से बीजगणित अरब में गया जिसे अलजबर कहते हैं, अरब से बीजगणित का ज्ञान यूरोप में पहुँचा। अंग्रेजी में बीजगणित को एलजेब्रा (Algebra) कहते हैं।

पुराणों में अङ्कद्वीप, यवद्वीप, बालिद्वीप, मलयद्वीप, कुशद्वीप, वराहद्वीप तथा काम्बोज का उल्लेख है। बाली के राजा कौण्डिन्यवंशी थे। जावा के राजा देव वर्मा थे। सुमात्रा में पलेम वंग श्री विजय शैलेन्द्र वंशी राजा था। काम्बोज में कौण्डिन्य की पत्नी राजकुमारी नागकन्या सोमा से वर्मन वंश चला। बौद्ध दार्शनिक धर्मकीर्ति सुमात्रा के, नागार्जुन विदर्भ के तथा वसुबन्ध पुरुष पुर (पेशावर) के थे।

ब्रह्माण्ड पुराण में विविध देशवासी जातियों का उल्लेख है—

काम्बोजा दरदाश्चैव बब्बराः अंगलौकिकाः ।
चीनाश्चैव तुवाराश्च पह्लवाश्च क्षतोदराः ॥

—ब्रह्माण्ड पुराण, अध्याय ४६ श्लोक ५२

चीनवासी अपने पूर्वज को ह्यू मानते हैं। जो हैहय वंशी क्षत्रिय बुध के वंश में थे। चीनवासी ह्यू को ग्रह से उत्पन्न मानते हैं। चीन के ध्वज पर आज भी नक्षत्र का चिह्न अंकित है। भारत के सूर्यवंशी क्षत्रियों के ध्वज पर सूर्य का तथा

अरब के चन्द्रवंशी क्षत्रियों के ध्वज पर चन्द्रमा का चिह्न अंकित है।

त्रेता में भगवान परशुराम से और्व मुनि के आश्रम में सगर ने धनुर्विद्या को प्राप्त किया। भगवान परशुराम की आज्ञा से सगर ने अयोध्या के उद्धार के लिये हैहय, तालजंघ, यवन, काम्बुज, पह्लव, पारद, बर्बर तथा शकों को भारत से निर्वासित किया था। माहिष्मती नरेश सहस्रबाहु ने अयोध्या नरेश बाहु को परास्त करके अयोध्या पर अधिकार कर लिया था। सगर का जातकर्म तथा उपनयन आदि संस्कार और्व मुनि के आश्रम में हुआ था।

अरब के घोड़े अच्छे होते हैं। संस्कृत में अर्व का अर्थ अश्व है। अर्व (अश्व) शब्द से अरब शब्द की उत्पत्ति हुई। संस्कृत में गान्धार को मेषालय तथा व्रज को गोशाला कहते हैं।

मनुस्मृति के अनुसार शनक, पौण्ड्रक, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद, खश क्षत्रिय थे, किन्तु संस्कारहीन हो जाने के कारण म्लेच्छ (भ्रष्ट) हो गये। •

[पृष्ठ २८८ का शेष]

हम प्रजातन्त्रवादी हैं। लोग वाह-वाह कर उठते हैं। संसार में सबसे बड़ी डेमोक्रैसी कहकर हमारी प्रशंसा होती है, परन्तु कोई भी प्रजातन्त्रात्मक देश इसमें प्रजातन्त्र की रक्षा नहीं करता, वरंच यहाँ अपनी हकूमत और तानाशाही चलाना चाहता है।

इस बंगला देश के विषय में तीन महीने होने जा रहे हैं। हमने इस विषय में जो कुछ किया, वह निस्वार्थ भाव से किया और बंगला देश की स्वतन्त्रता तथा वहाँ के प्रजातन्त्र की रक्षा के लिए किया, परन्तु हमारी सहायता को एक भी राज्य आगे नहीं आया। वरंच ऐसी स्थिति बन गयी है कि न तो कोई प्रजातन्त्र देश प्रजातन्त्र पद्धति की रक्षा के लिए आगे आया है और न ही कोई तानाशाह पाकिस्तान की तानाशाही को निमन्त्रित करने के लिए आगे आया है।

वास्तविक बात यह है कि देश दुर्बल है। देश की नीति अशुद्ध है। देश और विदेश में हमारी सरकार का सम्मान नहीं और भारत पर किंचित मात्र भी कठिनाई उत्पन्न होने पर पड़ौसी देश भारत के चारों ओर ऐसे मँडराने लगते हैं जैसे कि लाश के चारों ओर गीध मँडराते हैं।

हमने देश की बागडोर ग़लत लोगों के हाथ में दे रखी है। ये लोग चौथाई शताब्दी में भी देश को सुदृढ़, संगठित और समुन्नत नहीं बना सके।

बंगला देश की सहायता करने से पहले यह ठीक होगा कि भारत अपनी सहायता करे। •

पंचम संसदीय निर्वाचन और उसके परिणाम

श्री गुरुदत्त

(१)

मैंने जान-बूझ कर इस विषय पर अभी तक नहीं लिखा था। किसी घटना से उड़ती हुई धूल के बैठने के उपरान्त ही घटना का स्वरूप दिखायी देता है और फिर उससे उत्पन्न परिणामों का अनुमान लगाया जा सकता है। मैं इसी धूल के बैठने की प्रतीक्षा में मौन था।

मेरे विचार में स्वराज्य-प्राप्ति के उपरान्त हुए सब संसदीय निर्वाचनों से यह पंचम निर्वाचन विशेष अर्थों वाला हुआ है। इसने भारत को एक नवीन पटरी पर लाकर खड़ा कर दिया है।

इस बात को समझने के लिए इसके पूर्व इतिहास का अवलोकन करना आवश्यक है।

सन १९६९ में कांग्रेस दल में चिरकाल से चल रही फूट, फूट पड़ी। फूट का प्रत्यक्ष रूप तो था रूस की वफादारी अथवा अमेरिका से मित्रता। परन्तु वास्तविक रूप था मैं अथवा तुम। अभिप्राय यह कि निपट स्वार्थ।

यह स्वार्थ तो कांग्रेस में उस समय से ही था जबसे इसकी स्थापना (१८८५ में) हुई थी। स्वार्थ का रूप बदलता रहा था और यह फूट अनेक रूपों में तथा अनेकों नेताओं का आश्रय लेते हुए चलता रहा था।

एक समय इसका प्रत्यक्ष स्वरूप था नरम नीति अथवा गरम नीति, परन्तु वास्तविक स्वरूप था अंग्रेज़ों की भक्ति अथवा भारतीयता का प्रेम। उस समय फूट का आश्रय थे एक ओर श्री फ़िरोज़शाह मेहता और श्री गोपाल कृष्ण गोखले और दूसरी ओर थे श्री बाल गंगाधर तिलक, श्री विपिन चन्द्र पाल तथा अरविन्द घोष। यह सन १९०७ की बात है।

एक अन्य समय यह सोयी हुई फूट फिर जागृत हुई। इसका प्रत्यक्ष रूप तब भी था नरम नीति और गरम नीति, परन्तु वास्तविक रूप था अंग्रेज़ियत

की दासता अथवा भारतीयता के प्रति श्रद्धा। उस समय प्रथम पक्ष आश्रय ले रहे थे, गांधी और पण्डित मोतीलाल और दूसरे पक्ष का आश्रय ले रहे थे तिलक तथा खापर्डे। यह सन १९१९ में अमृतसर काँग्रेस की बात थी।

यही फूट पुनः जाग पड़ी सन् १९२० कलकत्ता में। इसका प्रत्यक्ष रूप अब बदल गया। यह था भारत में स्वराज्य और मिले अवसर का सदुपयोग अथवा हिन्दुस्तानी ब्रिटिश अधिकारियों को ब्रिटिश पार्लियामेंट से दण्ड दिलवाना। इस प्रत्यक्ष भेद में भी प्रच्छन्न भाव वही था जो काँग्रेस के आदिकाल से चला आ रहा था। एक ओर अंग्रेज़ पर और अंग्रेज़ियत पर विश्वास था और दूसरी ओर क्रांतिकारियों के सन् १९१२ से १९१७ तक असीम बलिदान से मिले अवसर को भारत के हित में और इस अन्तिम ध्येय की उपलब्धि में प्रयोग।

इसमें आश्रय थे एक ओर देश के प्रायः सब नेता और दूसरी ओर पण्डित मोतीलाल और गांधी। तब भी नेतागीरी का ही स्वार्थ था।

यही फूट उभरी सन् १९२७ में और फिर सन १९३६ में; तदनन्तर सन् १९४६ में। अब फिर प्रत्यक्ष रूप बदला। एक ओर था कम्युनिज्म अथवा समाजवाद और दूसरी ओर भारतीयता। अंग्रेज़ और अंग्रेज़ियत के स्थान रूस तथा कम्युनिज्म बनाम समाजवाद हो गया था। दूसरी ओर अभी भी भारतीयता से प्रेम था। इसमें आश्रय स्थान थे नेहरू, जयप्रकाश नारायण, मसानी, डांगे इत्यादि और दूसरी ओर थे बल्लभ भाई पटेल प्रभृति। इन तीनों बार सन् १९२७, १९३६ और १९४६ में गांधी रूस भक्तों और समाजवादियों के सहायक रहे। गांधी का पक्ष पहले अंग्रेज़ों की ओर था; बाद में यह रूस की ओर हो गया।

गांधी जी के भक्त इसे गलत कहेंगे। परन्तु ऐतिहासिक तथ्य हमारे निष्कर्षों का समर्थन करते हैं। यह सत्य है कि गांधीजी चतुर राजनीतिक होने के कारण मुख से कुछ कहते थे, परन्तु पक्ष सदा उनका लेते थे जो देश में कम्युनिज्म लाने में यत्नशील थे। महात्माजी के प्रिय पण्डित जवाहरलाल थे जो अपने को समाजवादी तथा कम्युनिज्म के अनुकूल बताने में कभी संकोच नहीं करते थे।

स्वराज्य मिला, परन्तु यह फूट पनपती रही। इसका प्रथम दर्शन सन् १९५० में हुआ जब पूर्वी पाकिस्तान से हिन्दू निकाले जा रहे थे। इस फूट का प्रत्यक्ष स्वरूप बन गया भारत अथवा पाकिस्तान। वास्तविक स्वरूप था अमेरिकन हित अथवा रूसी हित। पाकिस्तान को अमेरिका और रूस दोनों अपनी ओर करना चाहते थे। अतः भारत रूस का दुमछल्ला बन पाकिस्तान

से प्रेम प्रकट कर रहा था। यह फूट आश्रय पा गयी पण्डित नेहरू और डाक्टर मुखर्जी का।

वह स्वार्थ रूपी फूट उभरी थी सन् १९६९ में। इस बार इसका प्रत्यक्ष रूप और प्रच्छन्न रूप एक हो गये।

एक ओर श्रीमती इन्दिरा गांधी थीं और दूसरी ओर काँग्रेस के प्राय: सब पुराने नेता थे। सभी नग्न होकर स्वार्थमत्त हो नृत्य करते थे। यद्यपि दोनों ओर से मुँह रखने के लिए कुछ नारे लगाये गये थे, परन्तु वे सर्वथा सारहीन थे।

उदाहरण के रूप में इन्दिरा गांधी की ओर से यह कहा गया कि मोरारजी देसाई इत्यादि प्रतिक्रियावादी हैं, अमेरिका के पिट्ठू हैं और समाजवाद के विरोधी हैं। दूसरी ओर से इन्दिरा गांधी पर यह लांच्छन लगाया गया कि यह अपने स्वार्थ के लिये, स्वयं प्रधान मन्त्री बने रहने के लिए दल में फूट डलवा रही हैं, दल में अनुशासनहीनता को प्रोत्साहन दे रही हैं, इत्यादि।

वास्तव में दोनों दलों में सैद्धान्तिक मतभेद न तो प्रत्यक्ष रूप में कोई था और न ही प्रच्छन्न रूप में। यह स्पष्ट था कि दोनों ओर से पदलोलुपता और स्वार्थपरता पराकाष्ठा पर पहुँच गयी थी।

नेतागीरी का मोह जो गोखले और फ़िरोज़शाह मेहता में सन १९०७ में था, जो सन १९१९ में मोतीलाल नेहरू और गांधी में था, जो सन १९२७, १९२९, १९३६, और १९४६ में जवाहरलाल नेहरू में था; वही सन १९६९ में श्रीमती इन्दिरा गांधी में प्रस्फुटित हुआ था। सिद्धान्त और नीतियाँ सदा गौण रहीं। यदि यह कहा जाये कि जिस किसी ने भी सिद्धान्तों को मुख्य बनाया, वे राजनीति के क्षेत्र से बाहर कर दिये गये। यह तिलक के साथ हुआ, यह गांधी के साथ हुआ, यह टण्डन के साथ हुआ और डाक्टर मुखर्जी के साथ हुआ। स्वार्थ और देश-द्रोह भारत में पनपते रहे और यही बात अब भी है।

परन्तु सन १९६९ में दोनों ओर स्वार्थ नग्न रूप से प्रत्यक्ष था और परोक्ष में क्या था, वह अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया। दोनों पक्ष समाजवादी थे। फूट से पहले भी थे और फूट से पीछे भी दोनों दल समाजवादी रहे। तो फिर झगड़ा किस बात का था ? वास्तविक झगड़ा था प्रधान मन्त्री पद का। देसाई इन्दिरा का प्रतिस्पर्धी था। इस प्रतिस्पर्द्धा में इन्दिरा की जीत हुई और देसाई की पराजय हुई।

यद्यपि दो काँग्रेस बन गयीं, परन्तु दोनों अपने को काँग्रेस कहने के लिये झगड़ती रहीं। दोनों झण्डे और चुनाव चिन्ह के लिये लड़ती रहीं। इन बातों पर मुकद्दमेबाज़ी भी हुई। इन्दिरा की जीत हुई और मोरारजी की

पराजय हुई।

ऐसी स्थिति की भूलभुलैयाँ में विपक्षी दल वाले फँस गये। विपक्षी दल थे जनसंघ और स्वतन्त्र। यों तो प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, संयुक्त समाजवादी दल, कम्युनिस्ट पार्टियाँ भी अपने को विपक्षी दल कहती हैं, परन्तु यह सब प्रत्यक्ष रूप में है। वास्तव में ये और काँग्रेस एक ही दल हैं। इन सबको समाजवादी दल कहा जा सकता है। इन सबका लक्ष्य भी एक ही है। अब काँग्रेस के दोनों उपदल, तथा पी० एस० पी०, एस० एस० पी०, कम्युनिस्ट दल, मार्क्सवादी दल; सब एक ही विचारधारा के ग्रुप हैं, ये सब समाजवादी हैं। इनमें झगड़ा नेतागीरी का है, सिद्धान्तों का नहीं। जो कुछ थोड़ा सा भेद दिखायी देता है, वह नेतृत्व का है सिद्धान्त का नहीं।

हम वास्तविक विरोधी पक्ष जनसंघ और स्वतन्त्र पार्टी को मानते हैं। इनका काँग्रेस के साथ आधारभूत मतभेद है। काँग्रेस के साथ आधारभूत मतभेद होने पर भी भेद-भेद में अन्तर है। काँग्रेस समाजवादी है और मुसलमानों के प्रति मोह रखती है। स्वतन्त्र पार्टी काँग्रेस के समाजवाद का विरोध करती है और जनसंघ काँग्रेस की मुस्लिम परस्ती का।

स्वतन्त्र दल में यद्यपि प्राय: सब हिन्दू हैं, परन्तु वे सरकार की मुस्लिम परस्ती नीति का विरोध नहीं करते। वे इसकी अवहेलना करते हैं। इसके विपरीत जनसंघ सरकार की मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति का विरोध करती है। यह यद्यपि काँग्रेस की समाजवादी नीति को पसन्द नहीं करती, परन्तु वह इसका विरोध भी नहीं करती। अत: स्वतन्त्र पार्टी और जनसंघ दोनों सरकार के विरोधी होते हुए भी विरोध का आधार भिन्न-भिन्न रखते हैं।

यह स्थिति थी जब सन् १९७१ के निर्वाचन कराने की घोषणा की गयी। सरकार (इन्दिरा काँग्रेस) सत्तारूढ़ रहते हुए चुनाव लड़ना चाहती थी। दूसरों ने आपत्ति की, परन्तु संविधान उसके पक्ष में था और सत्तारूढ़ रहते हुए निर्वाचन लड़ने में सब लाभ उसके हाथ में थे।

सरकारी रेडियो, सरकारी धन, रूसी धन और सरकार की पूर्ण शासकीय सामर्थ्य इन्दिरा के पक्ष में थी। सबसे बड़ी बात यह थी कि इन्दिरा के पास सरकारी और ग़ैर सरकारी अपार धन था। हाल ही में स्टेट बैंक में से साठ लाख की चोरी का प्रयास और फिर चोरी करने वाले के मुकद्दमे से एक बात स्पष्ट होती है कि इन्दिरा किसी ऐसे गुप्त कोष की स्वामिनी है जिस कोष के प्रयोग पर कोई अंकुश नहीं है।

इन्दिरा काँग्रेस के पास इतने साधन होने पर उसका विरोध करने के लिये क्या किया गया? उसका भी निरीक्षण आवश्यक है।

यह मैं अगले लेख में वर्णन करने का यत्न करूँगा।

बंगला देश और हिन्दू

श्री ब्रह्मदत्त भारती

बंगला देश में निराश्रय और निर्दोष स्त्री-पुरुष और बच्चों का रक्त पानी के समान बहते हुए देखकर हिन्दुओं के ठण्डे खून में भी कुछ उबाल आया दीखता है। यह उबाल कितने समय तक रहेगा यह कहना कठिन है, किन्तु यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि जिस शोर और कोलाहल का प्रदर्शन हिन्दुस्तान के हिन्दुओं ने किया है वह बासी कढ़ी में उबाल से कुछ अधिक महत्त्व नहीं रखता। कहते हैं, 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है परन्तु हिन्दू तो केवल एक भावुक प्राणी ही बनकर रह गया है।'

बंगला देश में जो कुछ भी हुआ और जो नर-संहार पाकिस्तान की सेनाओं ने किया वह पाकिस्तान का आन्तरिक विषय है या नहीं इससे हिन्दुस्तान के हिन्दुओं का कुछ विशेष सरोकार नहीं। इस नर-संहार का हिन्दुओं और हिन्दुस्तान पर राजनैतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक और आर्थिक क्या-क्या दुष्प्रभाव पड़ने वाला है वह अवश्य ही हिन्दुओं का अपना एक ऐसा आन्तरिक विषय है जिस पर पूर्ण विचार करना उनका एक ऐसा जन्म-सिद्ध अधिकार है जिसे कोई भी नहीं छीन सकता। यदि हिन्दू इस स्थिति में भी करवट लेकर सचेत नहीं होता तो उसका और उसके देश हिन्दुस्तान का भविष्य घोर अन्धकारयुक्त हुए बिना नहीं रह सकेगा।

हिन्दुस्तान के रहने वाले ९५ प्रतिशत से भी अधिक लोग किसी-न-किसी रूप में हिन्दू धर्म के ही अनुयायी हैं। इसी कारण उनके विचार और कर्म विशेषतया हिन्दुस्तान देश के ही माने जायेंगे। हिन्दुओं ने सबसे बड़ी भूल जो इस समय की उसका एकमात्र कारण है उनका वह अन्धविश्वास जिसके अन्तर्गत वह सदा यह मानते आये हैं कि इंगलैंड और अमरीका हिन्दुस्तान के मित्र हैं और कि यह दोनों देश समाजवाद और मानवता के हितों की रक्षा में सदा लीन रहे हैं। हर व्यक्ति से कभी-न-कभी भूल होती ही है परन्तु केवल मूर्ख ही

उस भूल को बार-बार करता है। हिन्दुओं ने भी ऐसा ही किया है और इसी कारण आज उन्हें इसका एक बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ रहा है।

इंगलैण्ड के राजनैतिक और ईसाई तत्वों ने सदा हिन्दुओं और उनके हिन्दुत्व और उसकी आड़ में हिन्दुस्तान को न केवल हानि पहुँचाने की चेष्टा की है अपितु इन सबको नष्ट करने के योजनाबद्ध प्रयत्न भी किये हैं। बंगला देश में हो रहे संघर्ष को लेकर जो वाद-विवाद इंगलैण्ड के हाउस ऑफ कॉमन्स में इस वर्ष १४ मई को हुआ उसमें भाग लेते हुए एक सदस्य, बिग्स डेवीसन (Biggs davison) ने किसी भी हिचकिचाहट से दूर रहकर कहा कि हिन्दू धर्म जिसका हिन्दुस्तान में बोलवाला है मनुष्य को मनुष्य से अलग करता है परन्तु इस्लाम मनुष्य को भ्रातृभाव से रहना सिखाता है ("Hinduism which flourished in India divided man while islam was a unifyeng religion")। यह बिग्स महोदय इंडियन सिविल सर्विस के सदस्य हैं और पाकिस्तान सरकार के अधिकारी रहे हैं। इनका साथ दो और सदस्यों ने मि० फ्रेड बैनेट और मि० रिचार्ड टामसन (Mr. Fred Bennet and Mr. Richard Thompson) ने देते हुए यह लज्जाहीन घोषणा की कि बंगला देश में जो भी हो रहा है अथवा हुआ है उस सबकी जिम्मेदारी शेख मुजीब पर ही है। उन्होंने इस माँग पर विशेष जोर दिया कि इंगलैण्ड की सरकार की ओर से पाकिस्तान को और अधिक सहायता दी जानी चाहिये ताकि वह जल्दी अपना कार्य पूरा कर सके।

हिन्दुतान के कितने ही समाचारपत्रों ने हाउस ऑफ कॉमन्स में हुए वाद-विवाद के इस अंश को इस डर से प्रकाशित भी नहीं किया कि कहीं ऐसा न हो कि इंगलैण्ड का भारत के प्रति मित्रता का भण्डा ही न फूट जाये।

अन्धे को आँखें देना शायद सम्भव हो परन्तु जो देखकर भी न देखे उसे उस गड्ढे से बचाना, जिसमें वह गिरने जा रहा हो, सम्भव नहीं। यही दशा आज हिन्दुस्तान और उसमें रहने वाले ९५ प्रतिशत से अधिक हिन्दुओं की भी है। हिन्दू धर्म के विरुद्ध मई १९७१ में ही किसी ने विष उगला हो, ऐसा नहीं है। अपनी पुस्तक 'इंगलैण्ड का भविष्य' (The Future of England) में जार्ज पील (Hon. George Peel) ने १९११ में ही यह भली भाँति स्पष्ट कर दिया था कि हिन्दू उनके शत्रु और मुसलमान उनके मित्र हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक के पृष्ठ २०३, २०५ और २२३ पर लिखा है कि संसार भर में अपनी शक्ति को बलवान बनाने के लिये हिन्दुस्तान को जीतना इंगलैण्ड के लिये अति आवश्यक है और इसके लिये यह जरूरी है कि हिन्दुस्तान को ईसाई बनाया

जाये, इंगलैण्ड केवल एक राष्ट्र ही नहीं हैं अपितु यह ईसाई जगत् का एक खंड भी है।

["And if he (England) gains India, he has gained the leadership of the world······that condition is the adoption by India of Christianity and all that it implies······England is not only a nation to herself, she is also a part of Christendom'.]

इससे स्पष्ट है कि हिन्दू और हिन्दुस्तान से ईसाई इंग्लैण्ड को न केवल अलगाव है अपितु उसके साथ उसकी पूर्णतया शत्रुता भी है।

इंगलैण्ड के राजनीतिज्ञों को इस्लाम से कितना प्रेम है इसका नंगा रूप हमें जार्ज पील की पुस्तक के पृष्ठ १७४ पर देखने को मिलता है। वहाँ यह कट्टरपंथी ईसाई राजनीतिज्ञ लिखता है—

"If we can be friends with our 7,00,00,000 of Mohemmedan Asiatics these can whisper in our favour from Eastern Bengal to Lucknow, from Lucknow across the Indas, until their goodwill journeys to Cairo and the heart of Africa."

"यदि हम हिन्दुस्तान के सात करोड़ मुसलमानों को अपना मित्र बना सकें तो यह लोग ईस्ट बंगाल (बंगला देश) से लखनऊ तक और लखनऊ से सिन्ध तक हमारे प्रति विश्वास और सहानुभूति का राग अलापते हुए हमारी प्रतिष्ठा के हित में अपनी आवाज़ को काहिरा (मिस्र) और अफरीका के घर-घर तक पहुँचा देंगे।" क्या इस पर भी किसी हिन्दू के यह विश्वास हो सकता है कि इंगलैण्ड और अमरीका पाकिस्तान को अधिक सहायता न देकर इस्लाम को संसार के इस भाग में दुर्बल बनाने की घोर भूल करेंगे ?

इंगलैण्ड के राजनैतिक और मजहबी तत्त्वों ने सदा हिन्दू धर्म और इसके अनुयायियों का अपमान और अनादर कर उन्हें हानि पहुँचाने का भरसक प्रयत्न किया है। लार्ड मैकाले ने ९ मार्च १८४३ को हाउस ऑफ कॉमन्स में भाषण देते हुए कहा था कि हमारी सरकार का ध्येय है कि हिन्दू और मुसलमान के झगड़ों में कोई भाग न ले परन्तु यदि किसी कारण ऐसा करना ही पड़े तो निसंदेह हमारी सरकार इस्लाम का ही साथ देगी।

["The duty of our Government is to take no part in the disputes between Mohentans and the idolaters (meaning Hindus). But, if ever our Government does take part, there cannot be a doubt that Mohemtanism is entitled to the preference."]

अमरीका से प्रकाशित होने वाले क्रिश्चियन साइन्स मौनीटर (Christion Science Monitor) ४ जून १९७१ के अंक में अपने संपादकीय में लिखते हुए यह राय दी है कि—

(The USA and Britain "cannot afford to alienate a friendly country such as Pakistan occupying a vital strategic position on the periphery of Asia.")

"अमरीका और इंगलैण्ड अपने हितों को हानि पहुँचाये बिना यह सोच भी नहीं सकते कि वे पाकिस्तान जैसे मित्र देश को सहायता देना बन्द कर दें। क्योंकि राजनैतिक दृष्टिकोण से एशिया में पाकिस्तान की कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण स्थिति है।" क्रिश्चियन साइन्स ईसाई मत के इस मुखपत्र ने यह सब कहकर दो बातें खूब स्पष्ट कर दी हैं; ईसाइयत का भाव (Universal) विश्वबन्धुत्व का ढिंढोरा बहुत बड़ा पाखण्ड और धोका है और दूसरे ईसाइयत को धर्म से अधिक अपनी राजनैतिक सत्ता बनाये रखने की चिन्ता कहीं अधिक खाये जा रही है।

बंगला देश में हो रही क्रूरता, नर-संहार और मुक्ति संघर्ष से कुछ और चेतावनी भी हिन्दुस्तान को मिलती है। इस नाटक के आरम्भ में ही भारत के कुछ नेताओं ने लम्बी-लम्बी जिह्वा निकाल कर लम्बे-लम्बे लक्ष्य जनता के सामने रखने शुरू कर दिये। कुछ गिने-चुने नेताओं ने झट अपना छोटा मुँह खोल कर यह बड़ी माँग कर डाली कि मानव जाति के हित में संसार के बड़े देशों को बंगला देश में शीघ्र ही हस्तक्षेप करना चाहिये ! इन्होंने अभी तक यह भी नहीं समझा कि जो नाटक मानवजाति के हितों के नाम के पीछे आज पिछले २३ वर्षों से खेला जा रहा है उसमें जो बड़े और शक्तिशाली देश अभिनेता का नाटक करने आ रहे हैं वह केवल नाटक मात्र ही है। असली लक्ष्य छोटे देशों को और भी दीन और दुर्बल बनाना ही इनका परम ध्येय है। मानवता आज इन ही बड़े देशों के हाथों दम तोड़ रही है। इस हस्तक्षेप की माँग करने वाले नेताओं की समझ में यह साधारण सत्य भी नहीं आया कि केवल हिन्दुस्तान पर ही बंगला देश में हो रहे युद्ध का दुष्प्रभाव पड़ सकता है। फिर अमरीका और इंगलैन्ड को किस पागल कुत्ते ने काटा है कि वे बंगला देश को राजनैतिक मान्यता देकर भारत के हाथ मजबूत करें। केवल मूर्ख ही किसी के कटे में अपना पाँव फँसाता है और निश्चय ही अमरीका और इंगलैण्ड मूर्ख राजनैतिज्ञ (देश) नहीं हैं।

एक और बड़ी सीख भी हिन्दुस्तान की हिन्दू जनता को बंगला देश से मिलती है। बीते युग में जब-जब आपस की ईर्ष्या अथवा सैनिक दुर्बलता इस देश के राजा को दबा लेती थी तब-तब वह किसी विदेशी राजा को भारत आने अथवा इस देश पर आक्रमण करने का निमन्त्रण देता था। जिन भारतीय नेताओं ने अमरीका, इंगलैण्ड और रूस को बंगला देश के विषय में हस्तक्षेप करने की याचना की है उन्होंने कुछ ऐसा ही किया है, चाहे वर्तमान परिस्थिति में इस याचना को कोई भी और रंग देने की चेष्टा क्यों न की जाये। आज बंगला देश

का यह संघर्ष पाकिस्तान का आन्तरिक विजय न होकर हिन्दुस्तान का अपना घरेलू मामला अवश्य बनकर रह गया है। किसी विदेशी राज को इसमें हस्तक्षेप करने का निमंत्रण देना भारत के अपने आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप कर निमंत्रण देना ही समझा जाना चाहिए।

बंगला देश में हो रहे स्वतंत्रता संघर्ष को सुलझाने के हेतु और बंगला देश वासियों की सहायता के हित में भारतीय नेता श्री जयप्रकाश नारायण विश्व का भ्रमण करने चले। काहिरा में मिस्र के नेताओं ने बातचीत करना तो एक ओर उनसे मिलना भी उचित नहीं समझा! लंदन में उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा कि यदि विश्व के बड़े देश बंगला देश की पूर्णतया सहायता करके इस समस्या को शीघ्र ही नहीं सुलझाते तो भारत कोई तीव्र निर्णय करने पर विवश हो जायेगा। श्री नारायण और उनकी पंक्ति के भारतीय नेताओं को इतनी भी समझ-बूझ नहीं कि यदि हिन्दुस्तान किसी तीव्र निर्णय लेने की स्थिति में होता तो आज उनको सहायता के लिए झोली फैलाकर भीख माँगने निकलना न पड़ता और न ही हिन्दुस्तान की सरकार को विदेशों को याचना पत्र भेजने पड़ते।

जब किसी देश में उसकी उन्नति की नींव विदेशी भाषा पर रखने की चेष्टा की जाती है तो उसकी उन्नति के कितने ही द्वार स्वयं ही बन्द हो जाते हैं। सब से बड़ी हानि यह होती है कि उस देश के वासी पढ़े लिखे (literate) होने पर भी अशिक्षित (uneducated) ही रह जाते हैं। ऐसे ही अशिक्षित लोगों से आज हिन्दुस्तान भरा पड़ा है। कुशिक्षा के कारण ही जनता आज अन्धकार में है और यह निर्णय नहीं कर पा रही कि इस देश का हित किस ओर है। इस कुशिक्षा के कारण ही सरकार उन्हें बार-बार कितनी ही चूहे-बिल्ली और तोता-मैना की कथायें सुनाकर सुलाये रखना चाहती है।

बंगला देश का साँप हिन्दुस्तान के गले में लिपटा है और न जाने कब तक हिन्दुस्तान को इसे दूध पिला-पिलाकर शांत रखना पडेगा। हो सकता है, और इसकी संभावना दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है कि यह साँप उन ही हाथों को काट ले जो अब इसका पालन पोषण कर रहे हैं। तब क्या होगा और क्या करना पड़ेगा? इस देश में और इसके बाहर यत्र-तत्र और सर्वत्र इस देश के वासियों का रक्तपात उसी भाँति होगा जैसा आज बंगला देश में हो रहा है? क्या भारत सरकार उस समय भी विदेशों से सहायता की याचना करेगी या अपने बलबूते पर ही इस स्वदेश और इसके वासियों की जान, माल, मर्यादा और स्वाभिमान की रक्षा कर सकेगी? आज हर सुशिक्षित हिन्दुस्तानी इसी एक प्रश्न का उत्तर खोजने की चेष्टा में लीन दिखाई पड़ता है। •

समाजवाद का विष-प्रसार

अपने आपको हिन्दू कहकर गौरव का बोध करने वाले कुछ लोग जब सनातनधर्मशास्त्रों का समर्थन करते हैं तो हमें उन लोगों की बुद्धि के इस विचित्र विपर्यय पर विस्मय होता है। कारण, सूर्य का आलोक तथा तमिस्रा का घन-अन्धकार भले ही एक बार समन्वित हो सकें, किन्तु समाजवाद का सनातन धर्म से कभी कोई समझौता सम्भव नहीं। जो लोग इस प्रकार के समझौते का प्रयास कर रहे हैं, वे न तो समाजवाद के मर्म को समझ पाये हैं, न सनातन धर्म के मर्म को ही।

इस देश में जब भारत साधु समाज की स्थापना हुई और कुछ-एक काषायधारी महात्माओं ने जब बड़े मनोयोग के साथ अपने कर्तव्य के विषय में मिनिस्टरों की बकवाद सुनना शुरू किया तो हमको बहुत ही विस्मय हुआ था। इस देश में तो यह सनातन परम्परा थी कि शासकवर्ग ही साधु-महात्माओं के समीप जाकर "शाधि मां त्वां प्रपन्नम्" कहते थे, और अपने कर्तव्याकर्तव्य के विषय में उन सिद्ध-पुरुषों का उपदेश ग्रहण करते थे। फिर अकस्मात् ही इस अनादि परम्परा का यह प्रत्याख्यान क्यों होने लगा ? सो भी केवल शासक वर्ग के दुष्ट दुराग्रह के कारण नहीं प्रत्युत कुछ-एक साधु-महात्माओं के मनोयोग के कारण ? बात अभी तक समझ में नहीं आई थी।

अब सहसा हमें इस समस्या का समाधान प्राप्त हुआ है। यह स्पष्ट है कि समाजवाद की विचारधारा का जो विष पाश्चात्य से आकर और हमारे विद्यापीठों के माध्यम से हमारे सारे हिन्दू समाज में व्याप्त होता रहा है उससे हमारा पूज्य साधु-समाज भी अछूता नहीं रह पाया है। वह विष हमारे साधु-महात्माओं की मनोवृत्ति को भी विकृत करने लगा है। इस देश के साधु-महात्मा सदा ही इस देश की सनातन संस्कृति के संरक्षक एवं वाहक रहे हैं। किन्तु अधुना उन लोगों का एक वर्ग हमारी सनातन संस्कृति को विस्मृत करके 'मौडर्न' बनने के लिए कृत-प्रतिज्ञ है। अतएव इस देश का दुर्दिन भी दूर नहीं रहा। यह तो खेत की वाड़ ही खेत को खाने लगी है। यह तो घर का दीपक ही घर को भस्मसात् करने की शपथ ग्रहण कर चुका है। •

समाचार समीक्षा

□

रक्षक या भक्षक ?

[१७ मई के दैनिक हिन्दुस्तान में "दिल्ली के पुलिस थानों की नीलामी ?" शीर्षक से एक समाचार प्रकाशित हुआ था । पुलिस वालों के विषय में प्रत्येक की कुछ-न-कुछ धारणा तो है और अधिकांश की वह आप-बीती भी हो सकती है। किन्तु जो समाचार हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान टाइम्स में प्रकाशित हुआ है वह पुलिस वालों की कार्यविधि एवं रहन-सहन पर पर्याप्त प्रभाव डालता है । इस समाचार के प्रकाशित होने पर इसके आधार पर ही दिल्ली के जिलाधीश श्री अरोड़ा एवं अन्य वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों ने पत्रकार सम्मेलन आयोजित कर स्पष्टीकरण देने का यत्न किया किन्तु उनको भी कहना पड़ा कि पुलिस विभाग में ही क्या, थोड़ा-बहुत भ्रष्टाचार तो लगभग सभी विभागों में है । यहाँ हम अविकल रूप में वह समाचार प्रकाशित कर रहे हैं । —सम्पादक]

दिल्ली के पुलिस थाने भी नीलाम होते हैं—शायद यह सुनकर आप हैरान हों परन्तु है यह शत-प्रतिशत सच ।

दिल्ली पुलिस के अनेक इंसपेक्टर अपनी मर्जी के थानों में तबादले के लिए नीलामी के रूप में १० हजार से लेकर ३० हजार तक नकद देने को तैयार हैं। लाहौरी गेट का थानेदार होने के लिए कोई भी इंसपेक्टर ३० हजार, कोतवाली के लिए २५ से ३० हजार, सदर बाजार के लिए २० से २५ हजार, सब्जीमंडी हेतु १५ से २० हजार तथा करौल बाग के लिए १० से १५ हजार रु० देने को तैयार है । यह लिस्ट चलती ही रहती है जब तक कि 'बड़े साहबों' की कालोनियों का नम्बर नहीं आता । जहाँ ऊपरी कमाई के अवसर नगण्य रहते हैं।

थानों के अलावा कुछ विशेष ड्यूटियों की भी बोली होती है । ये सब थानेदार करते हैं। एक सब-इंसपैक्टर एक थाने से दूसरे में तबादले के जिए २ से ३ हजार तक तथा एक हेड-कांस्टेबल एक हजार तक नकद थानेदार की भेंट करता है । पुरानी दिल्ली के कम-से-कम दो भीड़-भरे बाजारों में सिपाही अपनी

गश्त-ड्यूटी लगवाने के लिए मिलकर ४००० रु० तो थानेदार को देते ही हैं, इसके अलावा प्रति मास एक हजार और भी नजराने के रूप में देते हैं।

दिल्ली-पुलिस विभाग में भ्रष्टाचार इस कदर व्याप्त है कि छोटे से बड़े तथा भ्रष्ट से ईमानदार पुलिस अधिकारी तक इससे इन्कार नहीं करते। निचले स्तर पर तो यह (भ्रष्टाचार) इस हद तक पहुँच गया है कि एक वरिष्ठ अधिकारी ने अवैध शराब तथा अवैध खोंचे वालों को पकड़ने का अधिकार पुलिस से छीनकर क्रमशः आबकारी विभाग तथा नगर निगम को दिए जाने का सुझाव दिया था। पुलिस की आय के बड़े साधन यही हैं।

उक्त साधनों की आय तो लगी-बँधी है ही कुछ थानों में हर अपराध की माफी की कीमत है। उदाहरणार्थ मकान मालिक व किराएदारों के झगड़े सुलझाने के लिए दो मास का किराया कीमत है। कत्ल भी यदि भयंकर न हो तो ५ से १० हजार रु० में माफ हो सकता है। भयंकर कत्ल की माफी की कीमत तो फिर चाहे जो माँग ली जाए।

विशेष जाँच दस्ते के दो वरिष्ठ अधिकारियों ने स्वीकार किया कि पिछले कुछ वर्षों में कत्ल के ऐसे ही दो मामलों में से एक में लगभग ५ लाख रुपया पुलिस अधिकारियों को खिलाया गया। लाखों रुपये की सम्पत्ति का मामला था। रिश्वत का रुपया 'बड़े अधिकारियों' तक भी पहुँचा था। पहले सम्बद्ध पुलिस अधिकारी ने जब बड़े अधिकारियों की बात नहीं मानी तो तबादला कर मामला दूसरे अधिकारी को सौंप दिया गया। यह तो हत्या को 'आत्महत्या' करार दिलाने के लिए पैसा खिलाने वाले का दुर्भाग्य कहिए कि बाद में स्वयं विशेषज्ञों ने इसे 'आत्महत्या' का मामला करार दिया। पर तब तक रुपया बाँटा जा चुका था।

दूसरे मामले में जहाँ पुलिस को ७५ हजार रुपया खिलाया गया था, बचाव इतना तगड़ा कर दिया गया था कि भ्रष्ट-अधिकारी के उच्चतम स्तर पर दिए गए तबादले के आदेश पर ४ मास तक अमल तक नहीं हो सका। इसमें जिस अधिकारी का रिकार्ड खराब हुआ उसने एक पैसा तक नहीं लिया था, अलबत्ता अपने भ्रष्ट मातहतों का बचाव जरूर किया था।

दो थानों में छोटे दूकानदार व खोंचे वालों से १० हजार रुपया प्रति सप्ताह एकत्र किया जाता है। यह हैसियत के अनुसार सिगरेट वाले के एक रु० से लेकर अपेक्षाकृत बड़े दूकानदार कमीजों वाले से दस रुपए तक वसूल किया जाता है। हर रविवार व सोमवार को सिपाही थैला और नोटबुक हाथ में लेकर उगाही के लिए निकलते हैं। शनिवार को दूकानदारों से पैसा वसूल होता है। सब-कुछ

दे दिलाने के बाद बड़े थानों के थानेदार प्रति मास ५ हजार से १५ हजार रु० तक अपने लिए बचा लेते हैं। जबकि पुलिस इंसपेक्टर जनरल को भी २५००—१२५—२७५० वेतन मिलता है।

थानेदारों का निवास-स्थान उनकी हैसियत से बहुत ज्यादा सुविधाजनक होता है। उसमें रेडियोग्राम, टेलीविजन, फ्रिज, कालीन, सोफा सभी कुछ होता है जबकि उसका वेतनमान सिर्फ ३२५-१५-४७५ ही होता है। अधिकांश थानेदारों के पास अपना कुछ नहीं होता, पर उन सबकी धर्म-पत्नियाँ 'बड़े घरों से' होती हैं और इसी 'बड़े घर' की छाया में सारा काला धन छिप जाता है। पुलिस अधिकारियों के अधिकांश सगे-सम्बन्धियों के दिल्ली की पोश, कालोनियों में अपने मकान बने होते हैं। किरायों से भी इन्हें भारी आमदनी है। एक सब-इंसपैक्टर (वेतनमान १६०-८-२४०) जो अपनी 'योग्यता' के लिए मशहूर है अपने दोस्तों को पाँच स्टार होटल में 'काकटेल' पार्टियों में आमन्त्रित करने की हैसियत रखता है।

उक्त समाचार प्रकाशित होने एवं दिल्ली के जिलाधीश श्री अरोड़ा के पत्रकार लम्मेलन में अस्पष्ट स्पष्टीकरण देने के लगभग १० दिन बाद दैनिक हिन्दुस्तान में ही देहरादून निवासी एक भूतपूर्व सब-इंसपैक्टर पुलिस श्री सत्यदेव स्वामी का पत्र प्रकाशित हुआ है, वह पत्र न केवल उक्त तथ्यों की पुष्टि करता है अपितु कुछ अन्य नए तथ्यों को भी उद्घाटित करता है। पत्र इस प्रकार है—

'हिन्दुस्तान टाइम्स' के विशेष संवाददाता ने कुछ ऐसे तथ्य दिए हैं जो न केवल पुलिस विभाग पर लांछन है वल्कि सारे भारत के प्रशासन पर, भारत राष्ट्र के कर्णधारों पर भी एक गहरी और गम्भीर चोट है। प्रश्न यह है कि यदि थाने नीलाम होते हैं तब देने वाला कौन है? दिल्ली भारत की राजधानी में जबकि इंसपैक्टर और डी० एस० पी० थाना इंचार्ज होते हैं तब थानों की तैनाती का अधिकार अवश्य ही वरिष्ठ एस० पी० या डी० आई० जी० को होगा। और लाखों रुपयों के आदान-प्रदान की बात दिल्ली में किसको नहीं विदित होगी? तब नेता, मंत्री, आई० जी० पी०, केन्द्रीय अपराध ब्यूरो और विजिलैंस विभाग क्या करते रहे हैं? यदि यह रकम वरिष्ठ एस० पी० या डी० आई० जी० को जाती रही होगी, तब वह अधिकारी अवश्य ही आई० पी० एस० होगा और इतनी सारी रकमें वे कहीं तो रखते होंगे? इतना भारी भ्रष्टाचार सभी की आँखों के सामने नाक के नीचे पनपता रहा और सभी खामोश रहकर, इस अपराध में भागी रहे।

मुख्य प्रश्न यह है कि जब डी० आई० जी० दौरे पर जाता है तब कौन नहीं जानता कि कितने विशेष प्रबन्ध होते हैं। मुझे अपनी याद है कि हर एस० ओ०, एस० पी० के सालाना मुआइने पर १५०० रु० खर्च किया करता था। पिश्ता और बादाम चाहे हमारे बच्चों ने कभी न देखा हो परन्तु फिर भी हम स्वयं डाक बँगले में लेकर जाते थे। गार्द के सिपाही तक इन कीमती मेवों को जेबों में भर लिया करते थे। मछली, दूध, घी, डबल-रोटी, फल, सब्जी, मुर्गा, बोतल, चीनी, चाय, आटा, मैदा, सूजी, मक्खन कहाँ तक गिनाऊँ, ये सब हम जीप में भर-कर ले जाते थे और कम-से-कम चार गैस की लालटेनों का प्रबन्ध भी होता था। मुझे भली भाँति याद है कि कभी किसी एस० पी० ने यह सब प्रबन्ध करने को नहीं कहा परन्तु एक दफ्तर ऐसा बना हुआ था कि सभी-कुछ डाक-बँगले में मुहैया किया जाता था। ९९९ या ५५५ की सिगरेट के कई टिन आया करते थे। तब क्या एस० पी० यह नहीं जानता था कि यह कहाँ से आ रहा है? मैन-पुरी जिले के भीतर, अन्दर घुसकर जहाँ बस भी कठिनाई से जाती है, हम यह प्रबन्ध करते थे कि कलकत्ते से आता हुआ दिल्ली मेल शिकोहाबाद में जैसे ही रुके वैसे ही कलकत्ते की मशहूर डबल रोटी स्टेशन पर उतार ली जाए जो लारी द्वारा हमारे थाने पहुँचती थी और थाने से डाक-बँगले। और एस० पी० साहब बहुत करारे-करारे टोस्ट खाते थे।

दिल्ली में कहीं लन्दन से तो अधिकारी आये नहीं, ये तो उत्तर प्रदेश के हैं या फिर पंजाब पुलिस के। अपने साथ अपने दस्तूर प्रणाली, रीति-रिवाज, सभी लाये हैं। इनके पास चलने-फिरने को सरकारी वाहन, रहने को सरकारी बंगले, काम के लिए दर्जनों पुलिस लाइन के रंगरूट हैं। सुबह की चाय कहीं और दोपहर का लंच कहीं और शाम की चाय और डिनर कहीं और।

खलीफा हारून अल रशीद भेष बदलकर सारे नगर में एक निम्न मजदूर की हैसियत से घूम-घूमकर जनता की स्थिति का पता लगाते थे। पर आज हमारा गुप्तचर विभाग भी वेश नहीं बदलना चाहता और तड़ाक से अपना—'पहचान-पत्र' निकालकर अपना अधिकार जताता है। एक ओर भारत गरीब है, अनाज नहीं चोर बाजारी है, नफाखोरी है। दूसरी ओर ऐसे भी हैं जिन्हें खर्च करने के नये-नये ढंग निकालने पड़ते हैं, जिनके चोचले देखकर गरीब आदमी आत्म-हत्या करना ही उचित समझेगा।

इस बात का बहुत अफसोस है कि सारी दिल्ली पुलिस पर इतना बड़ा लांछन लगा और दिल्ली पुलिस की तरफ से उसका जरा भी उत्तर जनता को नहीं दिया गया। तब क्या यह सब स्वीकार है? इसके अलावा रास्ता भी क्या

है ? जो लोग अपराध बन्द करने के लिए रखे गए हैं, वे ही अपराध करते हैं। आज हमारा रक्षक ही भक्षक हो गया है।

फिर रिश्वत लेने वाले अधिकारियों के मुँह इन्सान का खून लगा है। जितना बड़ा अधिकारी उतना बड़ा भ्रष्टाचार, उतनी बड़ी रकम और उतनी बड़ी रिश्वत और उतना ही बड़ा काम। इस प्रकार हमारे देश का ढाँचा बिगड़ा है कि उसे सँवारना कठिन ही नहीं असम्भव-सा लगता है। इस सबका कारण है अधिक जनसंख्या, बढ़ता हुआ स्वार्थ और अपना काम कराने की ललक। यही कारण है कि हमारे सामने भ्रष्टाचार का अजगर खड़ा है, जो लीलने को तैयार है। हमें आज खुले, फौरी निर्णय लेने वाले न्यायालयों की आवश्यकता हैं। संविधान और कानून की ढाल की शरण लेकर उलटकर वार करने की शक्ति देने वाला कानून नहीं चाहिए।

इन समाचारों, संवादों एवं पत्रों की चर्चा शान्त भी न हो पाई थी कि सहसा ७ जून के समाचार-पत्रों में निम्नलिखित समाचार जिसमें पुलिस वालों के निर्मम तथा निर्लज्ज व्यवहार की स्पष्ट झलक प्रतीत होती है, प्रकाशित हुआ—

आगरा पुलिस के वरिष्ठ हवलदार श्री प्यारासिंह डोगरा और उनकी २५ वर्षीय पत्नी की आज शाम इंडिया गेट के लान में दिल्ली पुलिस के तीन घुड़-सवार सिपाहियों ने नृशंसतापूर्वक पिटाई की।

श्री डोगरा अपनी रुग्ण पत्नी के साथ, जो स्थानीय इरविन अस्पताल में इलाज करा रही हैं, भ्रमण के लिए इंडिया गेट गए हुए थे। अचानक गश्त लगा रहे एक घुड़सवार सिपाही ने श्री डोगरा की गर्दन पकड़ ली। श्री डोगरा ने इसका विरोध किया जिस पर तीनों सिपाहियों ने श्री डोगरा और उनकी पत्नी पर अंधाधुन्ध लाठियाँ बरसाईं।

श्री डोगरा ने शिकायत की कि उनकी पत्नी से सिपाहियों ने छेड़ाखानी की और उनसे ९२६ रु० छीन लिए जो वह अपनी पत्नी की चिकित्सा के लिए लाए थे। प्रत्यक्षदर्शियों ने श्री डोगरा की शिकायतों की पुष्टि की।

वारदात के समय सैकड़ों व्यक्ति डोगरा दम्पति को चीखते-चिल्लाते असहाय देखते रहे। भीड़ के बढ़ जाने पर घुड़सवार सिपाही वहाँ से रफ्फू चक्कर हो गए।

श्री डोगरा और उनकी पत्नी के शरीर पर लाठियों की मार के निशान पड़े हुए थे और उनके कपड़े भी फट गए थे। लोगों ने सहारा देकर उन्हें रेलवे कालोनी पहुँचाया जहाँ वे ठहरे हुए थे।

इस समाचार के प्रकाशित होते ही ८ जून के हिन्दुस्तान में सम्पादक महोदय ने अपनी लेखनी का प्रयोग करके "रक्षक अथवा भक्षक" शीर्षक से निम्नोद्धृत अंश प्रकाशित किये—

दिल्ली भारत की राजधानी है, इसीलिए शायद दूसरे नगरों के लोग दिल्ली वालों से ईर्ष्या करते होंगे। वे समझते होंगे कि जो लोग ठीक देश की सर्वोच्च सत्ता की नाक के नीचे रहते हैं, वे जरूर उसकी नाक के बाल बने हुए होंगे। उन्हें सब तरह का कानूनी संरक्षण प्राप्त होगा, कोई उनका बाल भी बाँका नहीं कर सकता होगा। परन्तु अभी इस रविवार को नई दिल्ली के इण्डिया गेट पर जो मुल्क की सर्वोपरि सत्ता के गढ़ के बिल्कुल करीब है, घटी घटना से उनका भ्रम दूर हो जाएगा। गुण्डे तो सारे देश में ही पाए जाते हैं, इसलिए यदि वे आतंक फैलाएँ या जुल्म ज्यादती करें तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि कानून तोड़ना उनके इखलाख के विरुद्ध नहीं है। दिल्ली में भी गुण्डों की कमी नहीं है। दिल्ली वाले भी मुल्क के दूसरे लोगों की तरह उनके अत्याचार सहते रहे हैं। परन्तु दिल्ली के लोगों को एक नई किस्म के गुण्डों के जुल्मों का भी शिकार होना पड़ता है, जिनसे कानून के रक्षक होने की आशा की जाती है। अफसोस की बात यही है। इंडिया गेट पर घुड़सवार पुलिस के तीन सिपाहियों ने शाम के समय सैर के लिए आए एक दम्पती को बड़ी बेरहमी से पीटा और उनके पास से ९०० रु० की राशि छीन ली। जिस व्यक्ति को पीटा गया वह आगरा पुलिस का एक व्यक्ति था और अपनी क्षयग्रस्त पत्नी से मिलने के लिए आया था। उसके पास से जो पूँजी छीनी गई वह भी पत्नी की चिकित्सा के लिए थी। उसके प्रतिरोध की पुलिस वालों ने कोई परवाह नहीं की और उसकी पत्नी को इतना पीटा कि वह सड़क पर बेहोश हो गई। यही नहीं अभी हाल में गोल डाकखाने के पास रात को एक पत्रकार को भी, जो अपना काम समाप्त कर घर लौट रहा था, पुलिस वालों ने पीटा। जब पत्रकारों का यह हाल है, जो पुलिस के जुल्मों को रोशनी में ला सकते हैं, तब बेचारे बेजबान जन-साधारण की क्या बिसात है? जब कानून के रक्षक ही उसके भक्षक बन जाते हैं तब वह और किससे रक्षा की उम्मीद करे?

यों दिल्ली में ही नहीं, सारे देश में पुलिस का यही हाल है। कुछ वर्ष पूर्व इलाहाबाद उच्च न्यायाधीश श्री आनन्द नारायण मुल्ला ने उत्तर प्रदेश की पुलिस के काले कारनामों पर बहुत कड़ी टिप्पणी की थी। पश्चिमी बंगाल में आज पुलिस को नक्सलियों के हमलों का शिकार इसलिए होना पड़ रहा है कि उन्होंने अपने जन-विरोधी आचरण से अपने को जनता में अत्यन्त अप्रिय बना

लिया है। आजादी से पहले पराधीन भारत में पुलिस का जो भ्रष्ट और आतंक एवं अत्याचारपूर्ण रवैया था, वह आजादी के बाद भी नहीं बदला यह देखकर किसका हृदय व्यथित नहीं होगा ? और फिर जब राजधानी में ही पुलिस इस तरह अत्याचारी बन जाए तब शेष देशवासी बेचारे कहाँ जाएँगे ? प्रतापी भारत सरकार जब राजधानी के नागरिकों की ही रक्षा नहीं कर पाती तब और कौन अपनी इज्जत-आबरू बचा सकेगा ? एक बात और भी दुःखद है। आम जनता में भी पुलिस के अत्याचारों का प्रतिरोध करने की भावना नहीं रही। इंडिया गेट पर जो घटना घटी वह कितने ही लोगों की उपस्थिति में घटी। पर सबके सब तमाशबीन बने ताकते रहे। किसी ने पुलिस वालों का प्रतिरोध नहीं किया। क्या पुलिस के खौफ से लोगों में इतना आतंक पैदा हो गया है कि वे अपना सामान्य साहस भी खो बैठे हैं ?

इतनी अधिक आलोचना का परिणाम यह हुआ कि नई दिल्ली के इंडिया गेट पर घटित दुर्घटना से सम्बन्धित व्यक्तियों को पकड़ने में दिल्ली पुलिस ने सतर्कता एवं तत्परता का परिचय दिया। कथित तीनों अपराधियों को पकड़ लिया गया और अब उन पर अभियोग चल रहा है। अतः उस पर किसी प्रकार की टिप्पणी कर हम न्यायालय की मानहानि की परिधि में प्रविष्ट होना नहीं चाहते।

इस चर्चा की चुनौती देते हुए दिल्ली पुलिस जन सम्पर्क अधिकारी श्री गौतम कौल ने ११ जून के दैनिक हिन्दुस्तान के "लोकवाणी" स्तम्भ के अन्तर्गत निम्नोद्धृत पत्र प्रकाशित करवाया—

कुछ पत्रों में हाल में कुछ ऐसे समाचार आदि छपे हैं जिनमें दिल्ली पुलिस के कामकाज की निन्दा की गई है और उस पर रिश्वतखोरी तथा अन्य भ्रष्टाचारों के गम्भीर और व्यापक आरोप लगाए गए हैं।

लोकतंत्रीय समाज में प्रशासन की त्रुटियों की ओर ध्यान आकृष्ट करने में स्वतन्त्र प्रेस का रोल महत्त्वपूर्ण होता है। दिल्ली की पुलिस ने हमेशा पत्रों में छपने वाली आलोचना का स्वागत किया है क्योंकि हम समाज को स्वच्छ और उत्कृष्ट सेवा प्रदान करने के अपने उत्तरदायित्व के प्रति सजग है। किन्तु यह खेद की बात है कि देश की एक सर्वोत्तम पुलिस को, जिसका सेवा का प्रशंसनीय रिकार्ड है, बिना यह महसूस किए कि उससे सार्वजनिक हित का कितना नुकशान पहुँचेगा इस प्रकार व्यापक निन्दा का पात्र बनाया जाए। यद्यपि कोई भी संगठन पूर्ण होने का दावा नहीं कर सकता और अनुचित आचरण या भ्रष्टाचार के कुछ इक्के-दुक्के उदाहरण भी हो सकते हैं, तो भी यह बात बिना खंडन

के कही जा सकती है कि मोटे तौर पर दिल्ली पुलिस के सभी वर्गों के लोग राजधानी में एक सही मानों में कठिन कार्य को सुचारुता और ईमानदारी से निभाते रहे हैं। यह भी दावा किया जा सकता है कि मोटे तौर पर दिल्ली के नागरिकों की शिकायतों पर पुलिस ने तत्काल और उचित ध्यान दिया है।

यह खयाल कि पुलिस थानों की नीलामी होती है, बिल्कुल हास्यास्पद है। ऐसी सब तैनातियाँ केवल सार्वजनिक और प्रशासनिक हित को दृष्टि में रखकर ही की जाती हैं। जहाँ तक थाना इन्चार्ज अफसरों (एस. एच. ओ.) की तैनातियों का संबंध है, उनके प्रस्ताव रोज के डी. आई. जी. और डिप्टी कमिश्नर द्वारा जिला पुलिस सुपरिंटेंडेंटों से परामर्श के बाद संयुक्त रूप से तैयार किए जाते हैं और उन पर अन्तिम रूप से मंजूरी इंस्पेक्टर-जनरल पुलिस द्वारा दी जाती है। एस. एच. ओ. लोगों से भिन्न अफसर जिला पुलिस सुपरिंटेंडेंट द्वारा जिले के भीतर ही नियुक्त किये जाते है।

पत्रों में यह भी प्रचारित किया गया है कि पैसा लेकर हत्याओं को भी नजर अन्दाज किया जा सकता है। इस सिलसिले में सिर्फ १९६८ और १९६९ के दो मामलों का ही जिक्र किया गया है। एक मामले में दिल्ली पुलिस द्वारा की गई जाँच की केन्द्रीय जाँच ब्यूरो द्वारा भी पुष्टि कर दी गई थी और दूसरे मामले में जाँच से सम्बन्द्ध अफसरों की त्रुटियों को नोट कर लिया गया है और उस सिलसिले में कार्रवाई जारी है। यह साधारणीकरण करना गलत है कि हत्या के मामलों की जाँच को बाहरी और असम्बद्ध लिहाज प्रभावित कर सकते हैं। दिल्ली पुलिस ने बड़ी संख्या में हत्या के जिन जघन्य अपराधों की सफलतापूर्वक जाँच की है, उन पर सरसरी नजर डालने से भी यह बात प्रमाणित हो जाएगी कि उसका रिकार्ड शानदार है और कहीं की भी पुलिस के साथ तुलना में वह खरी प्रमाणित होगी।

हमारी इच्छा भ्रष्टाचारियों और अपराधियों को संरक्षण प्रदान करने की नहीं है। अधीक्षक अधिकारियों तथा सतर्कता एवं भ्रष्टाचार विरोधी शाखाओं के अधिकारियों तक जनता की पहुँच आसानी से होती रही है और उन्होंने भ्रष्टाचार या गलत आचरण के उदाहरणों की तत्परता से जाँच की है।

इस मामले में हम किसी भी स्तर पर किसी भी एजेंसी द्वारा जाँच के लिए तैयार हैं। किन्तु यह बात हम फिर दोहराना चाहेंगे कि यह धारणा तथ्यों के सर्वथा विपरीत है कि पुलिस भ्रष्टाचार का गढ़ है और उसका हर सदस्य उसमें हिस्सा लेता है और इस धारणा ने बहुत बड़ी संख्या में कठिन परिश्रम करने वाले और ईमानदार अफसरों के साथ जो कठिन परिस्थितियों में यथा-

शक्ति काम कर रहे हैं, बेइंसाफी की है। हम इस बात का स्वागत करेंगे कि जनता और समाचार-पत्र गलत आचरण और भ्रष्टाचार के विशिष्ट उदाहरण हमारे सामने रखें और हम विश्वास दिलाते हैं कि हम उनकी पूरी जाँच करेंगे।

यह पत्र कुछ निराधार खबर का रस्मी खंडन करने के लिए नहीं, बल्कि जनता को यह बताने के लिए लिखा गया है कि हम सार्वजनिक हित की तथा दिल्ली पुलिस की प्रतिष्ठा और नेकनामी की पूरे उत्साह से रक्षा करते हैं। साथ ही हम पुलिस के कामकाज को, खासकर जनता की शिकायतों के संबंध में सुधारने के लिए शक्ति भर प्रयत्न करने के लिए तैयार हैं।

उपरिलिखित पत्र प्रकाशित कराकर श्री कौल भले ही अपने कर्त्तव्य-परायणता के भ्रम में भ्रमित रहें किन्तु पूर्व प्रकाशित एवं स्वयं श्री अरोड़ा द्वारा स्वीकृत रहस्य एवं श्री डोगरा एवं उनकी पत्नी के शरीर पर अंकित मार के चिह्न उस सबकी साक्षी हैं जो कुछ उपरिउद्धृत पंक्तियों में लिपिबद्ध किया गया है। श्री कौल सदृश व्यक्ति स्पष्टीकरण प्रकाशित करने की अपेक्षा पुलिस के अन्तःकरणों की शुद्धि में अपनी शक्ति को केन्द्रित करें तो कुछ समाधान हो सकता है। अन्यथा कभी इन भक्षकों को भी जनता का भक्ष बनना पड़ सकता है।

इन्हीं दिनों एक समाचार प्रकाशित हुआ है कि दिल्ली पुलिस के कतिपय अधिकारी अपने वरिष्ठ अधिकारी से दिल्ली के कुछ समाचार पत्रों के विरुद्ध मानहानि का अभियोग दायर करने की अनुमति प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं। भगवान् सबको सद्बुद्धि प्रदान करे। ●

[पृष्ठ २८४ का शेष]

तथा प्रत्यालोचना भी। सभी प्रकार के आंकड़े भी प्रस्तुत किये जा चुके हैं, उन सबकी यहाँ पुनरावृत्ति की हम आवश्यकता नहीं समझते। आवश्यकता है सरकार को सावधान करने की जिससे कि देश ऋणभार से मुक्त हो और नेहरू द्वारा प्रारम्भ की गई, देश को बन्धक रखने की प्रक्रिया को उसकी सुपुत्री पूर्ण न कर सके तथा भारत स्वतन्त्र देश के रूप में संसार में अपना मस्तक ऊँचा कर पुनरेण जगद्गुरु की प्रतिष्ठा को प्राप्त कर सके। ●

[पृष्ठ २९२ का शेष]

परमाणुमय यह पाद है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मूल प्रकृति परमाणुमय है। यह एकरस नहीं है। प्रत्येक परमाणु में तीन-तीन मात्रा हैं। अर्थात् प्रत्येक परमाणु त्रिगुणात्मक है।

जैसे मूल प्रकृति परमात्मा के अधीन है। वैसे प्रत्येक परमाणु का प्रत्येक गुण भी परमात्मा ओंकार के अधीन है। एक गुण अकार की अध्यक्षता में, दूसरा गुण उकार की अध्यक्षता में और तीसरा गुण मकार के अधीन है। ओंकार की भी तीन मात्रा हैं। अकार, उकार और मकार। ये तीनों मात्रायें परमात्मा के अधीन हैं। वह परमात्मा ओंकार है। ●

कुछ अत्यन्त रोचक व प्ररणाप्रद पुस्तकें

जो प्रत्येक को पढ़नी चाहियें

श्री सावरकर साहित्य

आजन्म कारावास (सम्पूर्ण) १५.००
1857 War of Independence 35.00
प्रतिशोध (नाटक) ४.००
मोपला-गोमान्तक ३.००
अमर सेनानी सावरकर २.५०
हिन्दुत्व २.००
हिन्दुत्व के पंच प्राण २.००

श्री बलराज मधोक साहित्य

जीत या हार ३.००
हिन्दू राष्ट्र १.५०
श्यामाप्रसाद मुखर्जी : जीवनी ६.००
भारत की सुरक्षा ४.००
भारत और संसार ६.००
भारत की विदेश नीति ४.००
भारतीय जनसंघ एक राष्ट्रीय मंच १.५०
Indian Nationalism 1.50
What Jana Sangh Stands For 1 50
Nationalism Democracy and Social Change 1.50
Kashmir Centre of New Alignments 15.00
India's Foreign Policy And National Affairs 3.00

डा० रामलाल वर्मा

दिल्ली से कालीकट ५.००

श्री तनसुखराम गुप्त

हिन्दुत्व का अनुशीलन ४.००

श्री गुरुदत्त साहित्य

अन्तिम यात्रा १.००
समाजवाद : एक विवेचन १.००
गांधी और स्वराज्य १.००
भारत में राष्ट्र १.००
वन्दे मातरम् (नाटक) २.००
भारत गांधी नेहरू की छाया में ४.००
देश की हत्या (उपन्यास) ४.००
भग्नाश ,, ३.००
छलना ,, ७.००
धर्म, संस्कृति और राज्य ८ ००
जमाना बदल गया (नौ भाग) २०.००
महर्षि दयानन्द २.००
श्रीमद्भगवद्गीता:एक अध्ययन १५.००
India in the Shadow of Gandhi and Nehru 20.00

श्री पी० एन० ओक

ताजमहल ३.००
भार० इतिहास की भयंकर भूलें ४.००
कौन कहता है अकबर महान् था १०.००
भारत में मुसलिम सुल्तान १०.००
Some Blunders of Indian Historical Research 15.00

HANSRAJ BHATIA

Fatehpur Sikri is a Hindu City 10.00
फतेहपुर सीकरी हिन्दू नगर ६.००

श्री गुरुदत्त का सम्पूर्ण साहित्य हमारे सदन से उपलब्ध है। १० रुपये की पुस्तकों पर डाक व्यय फ्री; २० रुपये की पुस्तकों पर १० प्रतिशत छूट।

भारती साहित्य सदन सेल्स

३०/९०, कनाट सरकस, (मद्रास होटल के नीचे), नई दिल्ली-१

संरक्षक सदस्य

१. केवल एक सौ रुपये भेजकर शाश्वत संस्कृति परिषद के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बन कर रहेगा।

शाश्वत संस्कृति परिषद् का उद्देश्य

विशुद्ध भारतीय तत्त्व दर्शन पर सम्यक् गवेषणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उनके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख सभी समस्याओं का सुलझाव प्रस्तुत करना।

संरक्षक सदस्यों की सुविधाएं

१. परिषद् के नवीनतम प्रकाशन तथा आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। नवीन प्रकाशन हैं—इतिहास में भारतीय परम्पराएँ (मूल्य १० रुपये), हिन्दू का स्वरूप (मूल्य ०.५०) आगामी प्रकाशन हैं—ब्रह्मसूत्र हिन्दी विवेचना (मूल्य २० रु०) जुलाई के अन्त तक।

२. परिषद् की पत्रिका शाश्वत वाणी आप जब तक सदस्य रहेंगे प्राप्त कर सकेंगे।

३. परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ (सूची इसी अंक में अन्यत्र देखें) आप २५ प्र० श० छूट के साथ प्राप्त कर सकेंगे।

४. जब भी आप चाहेंगे एक मास पूर्व सूचना देकर अपनी धरोहर वापस ले सकेंगे। धन मनीआर्डर द्वारा भेज सकते हैं। किन्तु छः मास के भीतर ही धरोहर वापस माँगने वाले महानुभावों को वार्षिक शुल्क के पाँच रुपये तथा निर्मूल्य दिये गए प्रकाशनों का मूल्य काटकर ही राशि वापस की जा सकेगी।

शाश्वत संस्कृति परिषद्

३०/९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे)-नई दिल्ली-१

शाश्वत संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं विकास आर्ट प्रिंटर्स शाहदरा-दिल्ली-३२ में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

वर्ष ११—अंक ८ अगस्त, १९७१ रजि क्र० ६६८९/६०

विक्रमी संवत् २०२८ ईसवी सन् १९७१ सृष्टि संवत् १,९६,०८,५३,०७०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

भारत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

हिन्दू का स्वरूप

व्याख्याकार श्री गुरुदत्त

आज हमारे देश में हिन्दू समुदाय पूर्ण जनसंख्या का अस्सी प्रतिशत के लगभग होने पर भी अपने को हिन्दू कहने में लज्जा एवं संकोच अनुभव करने लगा है। इस संकोच अथवा लज्जा का कारण यह है कि हिन्दू अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर स्वयं को कुछ वैसा ही समझने लगा है जैसा कि अहिन्दू उसका वर्णन करते हैं। यह पुस्तिका हिन्दू का स्वरूप समझने का एक प्रयास है।

हिन्दू समाज—समाज की तात्त्विक मान्यताएँ—हिन्दू समाज के तात्त्विक आधार—हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू समाज तथा धर्म आदि विषयों पर प्रकाश डालने वाली यह पुस्तिका ज्ञानवर्धक है।

मूल्य एक प्रति ५० पैसे

प्रचारार्थ—				
५ प्रतियाँ	एक साथ	मँगवाने	पर	२ रुपये
१०	,,	,,	,,	३ रुपये ५० पैसे
५०	,,	,,	,,	१६ रुपये २५ पैसे
१००	,,	,,	,,	३० रुपये

५० प्रतियों से कम मँगवाने के लिये धन अग्रिम भेजें। पुस्तक साधारण डाक द्वारा भेजी जायगी। वी. पी. पैकेट से मँगवाने पर डाक-व्यय चार्ज किया जायगा। ५० प्रतियों से अधिक एक साथ रजिस्ट्री द्वारा अथवा वी. पी. पैकेट द्वारा भेजी जा सकती हैं।

शाश्वत संस्कृति परिषद्

३०/९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे), नई दिल्ली-१

जागृत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।

क्र०-१०-१२३-३

संरक्षक		सम्पादक
श्री गुरुदत्त		अशोक कौशिक
व्यवस्थापकीय-कार्यालय	वर्ष ११ अंक ८	सम्पादकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,		७ एफ, कमला नगर,
नई दिल्ली-१		दिल्ली-७

सम्पादकीय

कांग्रेस का राष्ट्रघाती सैक्युलरिज़्म

विगत २४ वर्षों से सत्तारूढ़ कांग्रेस के सैक्युलरिज़्म की दुर्नीति का विषधर राष्ट्र को शनैः-शनैः किन्तु निरन्तर इस प्रकार डसता चला जा रहा है कि भारत राष्ट्र का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है। देश के अन्य राष्ट्रवादी दल उस विष-ज्वाल को शान्त करने में सक्षम नहीं क्योंकि सत्तारूढ़ कांग्रेस उन्हें प्रतिक्रिया-वादी की संज्ञा देकर अपमानित करने से नहीं चूकती। परिणामस्वरूप वे उस प्रतिक्रिया रूपी कलंक को धोने में इस प्रकार तल्लीन हो जाते हैं कि उससे वे वास्तव में प्रतिक्रियावादी प्रगट होने लगते हैं; सैक्युलरिज़्म का खण्डन करते-करते स्वयं सैक्युलर बन जाते हैं। आक्रमण को प्रत्याक्रमण द्वारा ही रोका जा सकता है, बचाव की नीति से नहीं। इस आक्रमण और बचाव की स्थिति में विजय सदा आक्रमणकारी की ही होती है और आक्रमणकारी जब सत्तारूपी शस्त्र से सुसिज्जत हो तो फिर ऐसे बचाव करने वालों की क्या बिसात, जो रणांगण में प्रथम बार उतरे हों।

विगत २४ वर्षों से इस देश में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों का ही शासन

है। कांग्रेस ने सदा अल्पसंख्यकों के मतों के आधार पर संसद में बहुमत प्राप्त कर सरकार बनाई है। यही कारण है कि वह सैक्युलरिज़्म के परिवेश में साम्प्रदायिकता को प्रश्रय देती रही है और निरन्तर देती रहती है। जो इससे विरुद्ध स्वर संधान करता है उसे वह साम्प्रदायिक की संज्ञा से विभूषित कर देती है। परिणाम यह होता है कि विपक्षी अपने को असाम्प्रदायिक सिद्ध करने की प्रक्रिया में पड़ जाता है और कांग्रेस को शासन में बने रहकर दुःशासन करने का अवसर मिलता जाता है।

इस तथ्य को हम इन्हीं स्तम्भों में अनेक बार सप्रमाण प्रस्तुत कर चुके हैं कि अपने जन्मकाल से ही कांग्रेस अंग्रेज़परस्ती और मुस्लिमतुष्टीकरण की नीति पर आरूढ़ रही है। अतः उसकी यहाँ पर पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नहीं। राजनीतिविज्ञ इस तथ्य को भी भलीभाँति जानते हैं कि वर्तमान कांग्रेसियों के राजनीतिक गुरु गांधीजी ने ब्रिटिश राज के वफादार एजेण्ट के रूप में इस देश में राजनीति का खेल खेला है और उसका राजनीतिक शिष्य, नेहरू उसके पद-चिह्नों पर इस प्रकार चला कि भारत स्वतन्त्र होते हुए भी आज आर्थिक, शैक्षणिक, भाषा यहाँ तक कि धार्मिक परतन्त्रता में पनप रहा है। भारत की आधुनिक राजनीति के मंच पर गांधीजी के आने से प्रारम्भ कर आद्यपर्यन्त भारत अंग्रेज भक्ति एवं मुस्लिमतुष्टीकरण की चक्की में पिस रहा है।

कांग्रेस की मुस्लिमतुष्टीकरण की इससे अधिक पराकाष्ठा क्या होगी जब कि राजस्थान जैसे सीमा प्रदेश का मुख्य मन्त्री बनने के तुरन्त बाद दिल्ली में 'संघ विरोधी' सम्मेलन में मियाँ बरकतुल्ला खाँ खुले आम राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसी विशुद्ध राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक संस्था को साम्प्रदायिक घोषित करने का दुस्साहस करे। जब कभी भी उस तथाकथित 'साम्प्रदायिकता विरोधी' सम्मेलन का आयोजन किया जाता है उसमें हिन्दू नामधारी किन्तु हिन्दुत्वहीन नपुंसकों द्वारा हिन्दुओं की भर्त्सना की जाती है।

पूर्वी पाकिस्तान, जिसे बंगला देश की संज्ञा दी गई है, वहाँ घटित घटनाओं को आधार बनाकर जिन्होंने इन्दिरा की दुर्नीति का विरोध किया उनको साम्प्रदायिक कहकर कुचला गया। समाचार पत्रों, विशेषकर हिन्दू समाचार पत्रों एवं पत्रकारों पर प्रतिबन्ध लगाये गये। लेखनी को अवरुद्ध किया गया। यह कांग्रेस सरकार की मुस्लिमपरस्ती नहीं तो और क्या है? पाकिस्तान का ही नागरिक और ईसाई मतावलम्बी म्हासकरेन्हास प्रभृति अनेक पत्रकार एवं विभिन्न शिष्टमण्डलों के सदस्य उच्च स्वर से कह सकते हैं कि पूर्वी पाकिस्तान में सैनिक शासक तथा असैनिक नागरिक भी हिन्दुओं के प्रति निर्मम व्यवहार कर रहे हैं,

हिन्दुओं पर अत्याचार हो रहा है। उनके कथन का प्रतिवाद करने का सामर्थ्य भारत के सैक्युलर शासन में नहीं है। किन्तु भारत का हिन्दू पत्रकार जब कहता है कि पूर्वी पाकिस्तान में उसके सहधर्मी हिन्दू बन्धु की हत्या हो रही है, भगिनी का सतीत्व लूटा जा रहा है, सम्पत्ति का हरण किया जा रहा है तो उस पर प्रतिबन्ध की धमकी देकर उसका मुख बन्द करने का दुष्कृत्य करने में भारत की सैक्युलर सरकार को तनिक भी लज्जा नहीं आती।

पूर्वी पाकिस्तान की घटनाओं के विषय में अन्तर्राष्ट्रीयता प्रेमी किन्तु राष्ट्रीयता से सर्वथा पराङ्मुख सैक्युलर पिता की तदनुरूप सुयोग्य पुत्री अनेक बार घोषणा कर चुकी है कि उन घटनाओं को साम्प्रदायिकता का रूप देना अन्तर्राष्ट्रीयता के क्षेत्र में देश को पीछे धकेलना एवं राष्ट्रीयता के क्षेत्र में देश में संकीर्णता को प्रश्रय देना है। किन्तु क्या पूर्वी पाकिस्तान में हुए हिन्दू संहार के आँकड़े भी देवी इन्दिरा के कथन की पुष्टि करते हैं? अन्तर्राष्ट्रीयता का स्वप्न लेते-लेते भारत के सैक्युलर कांग्रेसी शासक राष्ट्रीयता को तिलांजलि दे बैठे हैं। पूर्वी पाकिस्तान से शरणार्थी के रूप में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति हिन्दू है। किसी भी शरणार्थी शिविर में जाकर देखा जा सकता है। वहाँ अधिकांश वृद्ध, बालक, रुग्ण एवं अपाहिज महिलाएँ हैं। युवा हिन्दुओं को पूर्वी पाकिस्तान में ही मार डाला गया है और युवतियों का अपहरण कर लिया गया है। शरणार्थी शिविरों में युवा नर-नारियों की संख्या नगण्य है। किसी भी शरणार्थी शिविर में कहीं कोई मुसलमान नहीं है। जो एक दो हैं भी तो वे शरणार्थी नहीं अपितु भेदिये हैं। पूर्वी पाकिस्तान से शरणार्थी के रूप में आने वाला कोई मुसलमान स्थायी शरणार्थी नहीं है। वह शरणार्थी के रूप में तो आता है किन्तु यहाँ का भेद लेकर वापस चला जाता है।

जिस मुजीबुर्रहमान को सैक्युलरिज्म का मसीहा बनाकर ये कांग्रेसी सैक्युलरिस्ट उसको पूज रहे हैं, उसी के अनुयायी, मुक्ति फौज के सैनिक और अवामी लीग के सदस्य पूर्वी पाकिस्तान के हिन्दू की हत्या कर रहे हैं, हिन्दू नारी के सतीत्व को भ्रष्ट कर रहे हैं और सम्पत्ति का अपहरण कर रहे हैं। क्या इन तथ्यों को झुठलाने का सामर्थ्य भारत के सैक्युलर शासन में है? फिर किस मुख से देवी इन्दिरा कहती हैं कि शरणार्थियों की समस्या को हिन्दू-मुस्लिम समस्या का रूप न दिया जाय? हमारे इस कथन में जिस किसी को सन्देह हो वह स्वयं किसी शरणार्थी शिविर में जाकर वहाँ के वासियों से पूछताछ कर स्थिति को स्पष्ट कर सकते हैं। हिन्दुओं पर किये गए मुसलमानी बर्बर अत्याचारों की कहानी वे स्वयं अपने कानों से सुन सकते हैं।

कांग्रेस ने अपने २४ वर्ष के निरंकुश शासन काल में कोई ऐसा कानून नहीं बनाया जो सार्वदेशिक अर्थात् देश के सर्वजनों पर सामनरूपेण लागू हो। हिन्दुओं के लिए हिन्दूकोड बिल तो मुसलमान और ईसाइयों के लिये कुछ और। आदिवासियों के लिए एक नियम तो आदिम-जाति एवं जनजातियों के लिए दूसरा नियम। अछूतोद्धार का बीड़ा उठाने वाली सरकार ने अछूतों के लिए पृथक् नियम और उपनियम बनवाये हैं, मुसलमान और ईसाइयों की ही भाँति सर्वत्र उनके लिए स्थान सुरक्षित हैं। फिर क्यों न कोई मुसलमान, ईसाई अथवा हरिजन बना रहे ? साम्प्रदायिक बने रहने में जो सुविधा है वह राष्ट्रीयता में नहीं।

हिन्दुओं के इस हिन्दुस्तान में हिन्दू-इतर व्यक्ति एवं समुदाय के लिए सब सुरक्षित हैं। यदि कुछ असुरक्षित है तो हिन्दू के लिए उसका जीवन एवं अस्तित्व।

यह है संक्षेप में सैक्युलरिज़म का अभिशाप। हिन्दुत्व प्रेमी संस्थाओं से हमारा निवेदन है कि वे स्वयं को सैक्युलर सिद्ध करने की अपेक्षा, कांग्रेस को चुनौती दें कि उसका सैक्युलरिज़्म देशघातक एवं राष्ट्रघातक है। साम्प्रदायिकता स्वयं में बुरी नहीं है किन्तु देवी इन्दिरा की साम्प्रदायिकता की परिभाषा, जिसके आधार पर वह मुस्लिम लीग को असाम्प्रदायिक और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को साम्प्रदायिक कहती है, देश एवं राष्ट्रघाती परिभाषा है। उसका प्रतिवाद होना चाहिये और उसको चुनौती दी जानी चाहिए।

हिन्दू कब गरुड़-रूप धारण कर सैक्युलरिज़्म के इस विषधर का फण कुचलेगा ? कब कृष्णरूप धारण कर कांग्रेसी सैक्युलरिज़्म रूपी कालिय को काल कवलित करेगा ? कांग्रेस की साम्प्रदायिकता एवं सैक्युलरिज़्म को कुचले बिना हिन्दू और हिन्दुस्तान का निस्तार नहीं। ●

माण्डूक्य उपनिषद्

श्री प्रभाकर

[गतांक से आगे]

इस लेख-माला में उपनिषद् के आठ मन्त्रों का भाष्य किया जा चुका है। आठवें मन्त्र में यह बताया गया है कि सुषुप्ति अवस्था में जो सार रूप अक्षर है, वह मात्रा रूप में है। अर्थात् सुषुप्ति अवस्था में प्रकृति अक्षर है और परमाणु रूप में है।

प्रत्येक परमाणु की तीन-तीन मात्रायें हैं। अर्थात् परमाणु त्रिगुणात्मक हैं।

इन पर श्री गौड़पादाचार्य ने कुछ कारिकायें लिखी हैं। ये कारिकायें इस प्रकार हैं—

निवृत्ते सर्वदुःखानामीशानः प्रभुरव्ययः।
अद्वैतः सर्वभावानां देवस्तुर्यो विभुः स्मृतः ॥१०॥

सब दुःखों की निवृत्ति में ईशान प्रभु (समर्थ) और वह अव्यय है। सब भावों अर्थात् पदार्थों के रूपों में अद्वैत रूप है। वह देव तुरीय दूर-दूर तक फैला हुआ माना गया है।

कार्यकारणबद्धौ ताविष्येते विश्वतैजसौ।
प्राज्ञः कारणबद्धस्तु द्वौ तौ तुर्ये न सिध्यतः ॥११॥

विश्व और तेज कार्य और कारण से बँधे हुए माने जाते हैं। प्राज्ञ केवल कारणावस्था से ही बद्ध है। ये दोनों तुरीय में नहीं सिद्ध होती।

नात्मानं न परांश्चैव न सत्यं नापि चानृतम्।
प्राज्ञः किंचन संवेत्ति तुर्यं सत्सर्वदृक्सदा ॥१२॥

प्राज्ञ न अपने को, न पराये को, न सत्य को और न अनृत को जानता है। किन्तु वह तुरीयं सर्वदा सर्वदृक है।

द्वैतस्याग्रहणं तुल्यमुभयोः प्राज्ञतुर्ययोः।
बीजनिद्रायुतः प्राज्ञः सा च तुर्ये न विद्यते ॥१३॥

द्वैत का अग्रहण तो प्राज्ञ और तुरीय दोनों ही को समान है, परन्तु प्राज्ञ बीज निद्रा से युक्त है और तुरीय में निद्रा नहीं है।

स्वप्ननिद्रायुतावाद्यौ प्राज्ञस्त्वस्वप्ननिद्रया ।
न निद्रां नैव च स्वप्नं तुर्ये पश्यन्ति निश्चिताः ॥१४॥

स्वप्न और निद्रा से युक्त हैं दोनों आदि (तत्त्व) प्राज्ञ स्वप्न रहित निद्रा से युक्त हैं, परन्तु तुरीय को न नींद आती है और न उसकी स्वप्न अवस्था होती है।

अन्यथा गृह्णतः स्वप्नो निद्रा तत्त्वमजानतः ।
विपर्यासे तयोः क्षीणे तुरीयं पदमश्नुते ॥१५॥

अन्यथा (न भलीभाँति) ग्रहण करने से (नींद में न निमग्न होने से) स्वप्न होता है। तत्त्व को सर्वथा न जान सकना निद्रा कहलाती है। इनके विपरीत दोनों अवस्थाओं का क्षीण होना (न होना) तुरीय कहलाता है। अर्थात् तुरीय में ये दोनों नहीं हैं।

अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते ।
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा ॥१६॥

अनादि माया (ईश्वरीय शक्ति) से सोया हुआ जीव (जीवात्मा) जब जागता है, वह अजन्मा, अनिद्र और स्वप्नरहित हो अद्वैत का बोध करता है।

प्रपंचो यदि विद्येत निवर्तेत न संशयः ।
मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः ॥१७॥

प्रपंच यदि होता तो छूट जाता तब संशय नहीं रह जाता कि द्वैत माया मात्र है। अद्वैत ही परम अर्थ, अर्थात् परम सत्य है।

विकल्पो विनिवर्तेत कल्पितो यदि केनचित् ।
उपदेशादयं वादो ज्ञाते द्वैतं न विद्यते ॥१८॥

विकल्प की यदि किसी ने कल्पना की होती तो वह निवृत्त हो जाता। यह उपदेशादि वाद द्वैत का भाव नहीं रहता।

ये नौ कारिकायें उपनिषद् के मन्त्र संख्या ७, ८ पर लिखी कही जाती हैं, परन्तु यदि मन्त्रार्थ देखे जायें और इन कारिकाओं के भाव को देखा जाये तो दोनों में किसी प्रकार की संगति नहीं बैठती।

मन्त्रों में तो जगत् की चौथी सुषुप्ति अवस्था का वर्णन है। उसमें लिखा है कि इस अवस्था में न वह भीतर से ज्ञानवान् है और न बाहर से। दोनों प्रकार से चेतन नहीं। इसमें न तो चेतनता घन अर्थात् केन्द्रित है और न ही यह प्रज्ञ है तथा न ही अप्रज्ञ।

यह एक गाढ़ निद्रा में सोये हुए व्यक्ति की भाँति होती है।

हमने इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए कहा है कि प्रकृति सोई हुई अवस्था में होती है। उस समय प्रकृति को अद्वैत कहा है; अर्थात् जो इसके दो रूप हैं—अव्यक्त और व्यक्त। ये दोनों नहीं होते। प्रकृति एकरस हो जाती है। आठवें मन्त्र में यह कहा है कि :

(सो अयम्) वह प्रकृति (जिसका ऊपर के मन्त्र में वर्णन किया गया है) वह परमाणु रूप है और प्रत्येक परमाणु में तीन गुण रहते हैं। परमात्मा प्रत्येक परमाणु से तथा परमाणु के प्रत्येक गुण से जुष्ट रहता है।

परन्तु उक्त कारिकाओं में इसके वर्णन को छोड़ भिन्न ही वर्णन आरम्भ कर दिया गया है। श्री गौड़पादाचार्य ठीक कहते हैं अथवा गलत कहते हैं, यह एक पृथक् प्रश्न है। परन्तु उक्त कारिकाओं का भाव वह नहीं जो उपनिषद् में लिखा है। उदाहरण के रूप में तुरीय शब्द कारिकाओं में लिख दिया गया है जिसके उपनिषद् में दर्शन नहीं हुए।

इसी प्रकार द्वैत-अद्वैत का विवाद अपने पास से आरम्भ कर दिया गया है।

उपनिषद् में प्रकृति का वर्णन करते हुए इसे (शिवमद्वैतं) लिखा है। वह जैसा हमने बताया है कि प्रकृति के दो रूप हैं। यह परिणामी होने के कारण मूलरूप में और कार्यरूप में देखी जाती है, परन्तु उस जगत् की सुषुप्ति अवस्था में इसके दो रूप नहीं होते। यह महत् रूप में होती है।

परन्तु उपनिषद् में द्वैत-अद्वैत का विवाद नहीं है। यह तो आचार्यजी ने अपनी ओर से विवाद खड़ा किया है।

इस पर भी जब तक तो आचार्यजी युक्ति से बात करते रहें, वह शास्त्रों के त्रैतवाद का ही वर्णन करते प्रतीत होते हैं। परन्तु अन्त में अट्ठारहवीं कारिका में अद्वैत को बीच में सर्वथा अकारण और अयुक्तियुक्त ढंग से ले आये हैं। तब इनके लेख का सम्बन्ध न युक्ति से रहा है और न ही शास्त्र से। उपनिषद् से तो इनके लेख का किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है।

उपनिषद् के मत से कारिकाओं का सम्बन्ध नहीं। कदाचित् इसमें कारण यह है कि शंकर की भाँति दादा गुरु भी सांख्य विद्वान से अपरिचित थे। उनके मन में भी दो बातों का भ्रम उपस्थित प्रतीत होता है। एक तो यह कि विश्व में मूल पदार्थ एक ही है और उसी के रूप-रूपान्तर तीन और फिर अनेक दिखाई देते हैं। दूसरा भ्रम यह है कि वैदिक दर्शनशास्त्र परस्पर विरोधी भाव रखते हैं और उपनिषद् ही वेदान्त-दर्शन का व्याख्य विषय है।

इन दोनों बातों का खण्डन तो हम किसी अन्य लेख में करेंगे। इस पर भी

यहाँ इतना कह देना ठीक होगा कि सांख्य-दर्शन में सृष्टि उत्पत्ति मुख्य विषय है। वेदान्त-दर्शन का वास्तविक नाम ब्रह्म-सूत्र है और ब्रह्म तीन हैं। इन तीनों के स्वरूप का वर्णन और तीनों के जगत् में कार्य को ब्रह्म-सूत्रों में वर्णन किया गया है। इसी प्रकार वैशेषिक दर्शनशास्त्र में पंच महाभूत और इनसे बनी सृष्टि का वर्णन है। उपनिषद् ग्रन्थ तो भिन्न-भिन्न ऋषियों ने अपने मत और बुद्धि से वैदिक सिद्धान्तों का वर्णन करने के यत्न स्वरूप रचे हैं। उक्त तीनों दर्शनशास्त्रों में वैदिक सिद्धान्तों का वर्णन है। इस कारण इनकी बातों पर भी उपनिषद्कारों ने कहा है।

जहाँ तक इन कारिकाओं का प्रश्न है, ये माण्डूक्य उपनिषद् के भाव को अस्पष्ट तथा अयुक्त ढंग से वर्णन करने का प्रयास है।

तनिक व्याख्या से इन कारिकाओं का अध्ययन करें तो पता चलेगा कि ये कारिकायें अद्वैतवाद को सिद्ध कर नहीं सकीं। उसका उल्लेख किन्तु अप्रासंगिक ढंग से उसका उल्लेख कर रही हैं।

उदाहरण के रूप में कारिका संख्या १० में यह कहा है कि ईशान प्रभु सब दुःखों से छुटकारा दिलवाता है। पाठ है (निवृत्ते सर्वदुःखानामीशानः प्रभुरव्ययः) यह ठीक है, परन्तु यह उपनिषद् का विषय नहीं और न ही यह शंकर के अद्वैत-वाद का समर्थन करता है। यह (ईशान प्रभु) अद्वैत है, अर्थात् एक है और सर्व व्यापक है।

भला इससे कहाँ पता चलता है कि उस सुषुप्ति अवस्था में भी अन्य कोई नहीं। अद्वैत शब्द से अद्वैतवाद सिद्ध नहीं हुआ। वह ईशान प्रभु एक है।

यहाँ ईशान का अर्थ लिख दिया जाये तो बात स्पष्ट हो जायेगी। इसके अर्थ हैं—ruler, master, a lord यह 'आप्टे' के शब्द-कोष में दिये हैं। इसका अर्थ है सुषुप्ति अवस्था में जो नियन्त्रण करता है। इसी को उपनिषदों की भाषा में तुरीय कहते हैं। यह परमात्मा है। ये दो नहीं हैं। ऐसा अभिप्राय है। किसको दुःख से छुटकारा दिलाता है। निस्सन्देह इस जीवात्मा को जो उस समय अपने स्थूल सूक्ष्म शरीर से वंचित होकर निष्क्रिय अवस्था में पड़ा हुआ है।

अब कारिका संख्या ११ को देखें। इसमें लिखा है कि विश्व और तेज कार्य-कारण सम्बन्ध से बद्ध है। यहाँ विश्व का अर्थ कार्य जगत् ही है। तेज परमात्मा की शक्ति कारण है और विश्व अर्थात् जगत् उसका कार्य है।

इसमें भी कहीं सब कुछ परमात्मा का ही रूप है, नहीं आता। घड़े और कुम्हार में कार्य और कारण का सम्बन्ध है, परन्तु क्या कुम्हार घड़ा हो जाता है अथवा क्या वह यही बन जाता है?

इसी कारिका में लिखा है कि प्राज्ञः केवल कारण अवस्था से ही बद्ध है। प्राज्ञ का अर्थ हम बता चुके हैं कि घोर अज्ञानता की अवस्था जो सुषुप्ति अवस्था में प्रकृति की वर्णित है। यह अपने कारण से ही सम्बन्धित है। इसका कारण तेज नहीं। तेज कारण है विश्व का। विश्व तो है यह बना हुआ जगत्। और प्राज्ञ शब्द का प्रयोग हुआ है मूल प्रकृति से। यह स्वयं ही कारण (उपादान) है।

इसमें भी कारण-कार्य को एक नहीं माना। कारण-कार्य का सम्बन्ध तो है। एक रचयिता है और दूसरी रचना है। रचयिता ही रचना है, यह तो लिखा नहीं।

अब कारिका (१२) को देखें। प्राज्ञ का वर्णन है। यह (नात्मानं) न तो अपने को (न पराश्चैव) न पराये को, न सत्य को और न अनृत को जानती है।

यह अज्ञान में लिप्त प्रकृति का ही वर्णन है, परन्तु (तुर्यं तत्सर्वदृक्सदा) तुरीय सत् (अजा) है और सबको देखता है। इससे तो यह सिद्ध होता है कि प्राज्ञ अज्ञान में लिप्त और निश्चल है। परन्तु तुरीय सब कुछ देख रहा होता है। दोनों में भेद ही बताया है।

इसी प्रकार कारिका (१३) में कहा है कि दोनों प्राज्ञ अर्थात् अज्ञानमय प्रकृति और तुरीय, अद्वैत हैं। वह भी एक है और यह भी एक है। परन्तु दोनों एक ही हैं, यह इस कारिका से प्रकट नहीं होता। शब्द है (द्वैतस्याग्रहणं तुल्यमुभयोः) दोनों (प्राज्ञ) और तुरीय द्वैत का ग्रहण नहीं करतीं, इससे समान हैं। शब्द है तुल्यं। किस बात में तुल्य हैं? अद्वैत होने में। एक एक ही है। इसका यह अर्थ तो बनता ही नहीं कि दोनों एक हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे शंकरजी ने उपनिषद् और दर्शनों के भाष्यों में धींगा-मस्ती की है वैसे ही इन कारिकाओं में भी की है। सम्भवतः गौड़-पादाचार्य अद्वैतवादी नहीं थे। यह तो शंकर ने अपनी धींगा-मस्ती से उन्हें भी ऐसे ही बना लिया है।

स्पष्ट लिखा है कि बीज और प्राज्ञ दोनों निद्रा-युक्त (सोये हुए हैं) परन्तु तुरीय नहीं। बीज से अभिप्राय तेज से है। जिससे सृष्टि रचना होती है। प्रलय काल में दोनों सोये होते हैं, परन्तु तुरीय तो जागता रहता है। इसे न स्वप्न है और न निद्रा है।

यहाँ तो स्वामी शंकराचार्य के अद्वैत का खण्डन ही है। कारिका (१५) में स्वप्न की व्याख्या कर दी है। लिखा है कि न भली भाँति निद्रा आने पर

[शेष पृष्ठ ३३९ पर]

भारत के इतिहास का एक पक्ष

□

श्री सत्यदेव

सप्तर्षि तारों की गति से भी काल गणना की जाती है। ऐसा हमने अपने पूर्व लेख में लिखा है। हमने यह भी बताया है कि सप्तर्षि तारक मण्डल, आकाश मण्डल में एक सौ वर्ष में एक नक्षत्र पार करते हैं। इस बात का प्रमाण मिलता है कि युधिष्ठिर के राज्यारोहण काल में सप्तर्षि मघा नक्षत्र में थे। वराह मिहिर ने अपनी वृहत्संहिता अध्याय १३ में लिखा है—

आसन् मघासु मुनयः शासति
पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।।३।।

अर्थात्—जिस समय युधिष्ठिर शासन करते थे, सप्तर्षि मघा नक्षत्र में थे। उक्त श्लोक की टीका भट्टोत्पल ने वृद्धगर्ग का वचन दिया है।

कलिद्वापरसंधौ तु स्थितास्ते पितृदैवतम् ।
मुनयो धर्मनिरताः प्रजानां पालने रताः ।।[1]

अर्थात्—कलियुग और द्वापर की संधि पर सप्तर्षि पितृ दैवत (मघा) नक्षत्र में स्थित रहे थे।

श्रीमद्भागवद् में भी यह लिखा है—

तेनैत ऋषयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम् ।
ते त्वदीये द्विजाः काले अधुना चाश्रिता मघाः ।
यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि ।
तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ।।

(१२-२-२८, ३१)

"सप्तर्षिगण मनुष्यों की गणना से सौ वर्ष तक एक नक्षत्र में रहते हैं। वे तुम्हारे जन्म के समय और इस समय भी मघा नक्षत्र पर स्थित हैं।

१. उद्धृत महाभारत (गोरखपुर): लेख 'महाभारत संहिता और उसका रचना काल'—पं० इन्द्र नारायण द्विवेदी।

"जिस समय सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर विचरण करते हैं उसी समय कलियुग की गणना देवताओं के वर्षों से १२०० की (मनुष्य गणना के अनुसार १२०० × ३६० = ४३,००० मानव वर्ष) होती है।"

इसके आगे लिखा है—

यदा मघाभ्यो यास्यन्ति पूर्वाषाढां महर्षयः ।
तदा नन्दात् प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ।।

(श्री महाभागवत् पु० १२-२-३२)

अर्थात्—जिस समय सप्तर्षि मघा से चलकर पूर्वाषाढ़ में पहुँचे तो नन्द का राज्य हुआ।

इसी अभिप्राय का एक श्लोक ब्रह्माण्ड पुराण में भी आता है। अन्य पुराणों में भी इसका उल्लेख है। इस गणना से नन्दवर्धन का काल कलि सम्वत् ११०० वर्ष बनता है।

इस प्रकार सप्तर्षि सम्वत् से भी कलियुग सम्वत् स्थिर हो जाता है।

अभी तक हमने भारतीय दृष्टिकोण से इतिहास की निम्न बातें लिखी हैं—

(१) इतिहास का आरम्भ जगत् रचना के आरम्भ से माना जाता है।

(२) जगत् रचना आरम्भ हुए (अर्थात् सृष्टि सम्वत् को) लगभग एक अरब छियानवे करोड़ वर्ष हो चुके हैं और पृथिवी को बने लगभग १२ करोड़ वर्ष हो चुके हैं।

(३) हमने मानव सृष्टि के इतिहास को वर्तमान चतुर्युगी से आरम्भ किया है।

(४) सतयुग और त्रेतायुग की संधि पर महा जलप्लावन हुआ था, जिसमें बहुत कुछ विनष्ट हो गया था। इतिहास सतयुग की अपेक्षा अधिक स्पष्टता से त्रेता एवं द्वापर युग का और उससे भी अधिक स्पष्टता से कलियुग का मिलता है।

(५) कलियुग का सम्वत् चलता था (वह आज ५०७२ है)।

कलियुग में महाभारत युद्ध के उपरान्त महत्त्वपूर्ण घटना जो भारत में घटी, वह है राजवंशों और ब्राह्मणों का महान् ह्रास।

महाभारत के युद्ध में भारत के प्रायः सब राजा सम्मिलित हुए थे और जैसा कि महाभारत के इतिहास से ज्ञात होता है प्रायः सबके-सब राजा मारे गये। परिणामस्वरूप अनेक राज्यों में गणराज्य बन गये। कुछ राज्यों में अल्पायु बालक राजा बना दिये गए।

ब्राह्मणों में ब्राह्मणत्व विद्या से न रहकर वंश-परम्परा से माना जाने लगा

और क्षत्रियों में निर्बुद्धि एवं अल्प शिक्षित राज्य करने लगे।

इसके साथ ही अविद्वानों ने अपने-अपने मत चलाये।

इन मतों में वाम मार्ग की एक झलक तो महाभारत में भी दृष्टिगत होती है। ये लोग खाना-पीना और भोग-विलास को ही मुख्य मानने लगे थे। गीता में इनको 'वेद वाद रत' के नाम से स्मरण किया है। वेद वाद का अर्थ है अपने को ज्ञानमार्गी मानने वाले। ज्ञान का अभिप्राय है सांसारिक ज्ञान।

इन मार्गों की प्रतिक्रिया हुई जैन-मत और बौद्ध-मत। भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध लगभग समकालीन थे। महावीर बुद्ध से चालीस-पचास वर्ष पहले हुए कहे जाते हैं।

वर्तमान इतिहास वाले तो महात्मा बुद्ध से पूर्व के काल को प्रागैतिहासिक काल कहते हैं। हम इस काल को भलीभाँति ज्ञात इतिहास का काल कहते हैं। इस काल में निम्न परिवारों का उल्लेख आता है। सर्वप्रथम तो युधिष्ठिर की सन्तान का ही वर्णन मिलता है।

इसके अतिरिक्त कौसल राज्य-परिवार का भी उल्लेख है। यहाँ का राजा बृहत्बल भारत युद्ध में मारा गया था। उसका पुत्र बृहत्क्षय राज्यगद्दी पर बैठा। इस वंश की परम्परा बुद्ध काल तक आती है। उस समय यहाँ का राजा प्रसेनजित था।

इसी प्रकार मगध के राज्य का भी वर्णन मिलता है। मगध का राजा जरासंध तो भीम से मल्लयुद्ध में मारा गया था। उसका पुत्र सहदेव भारत युद्ध में मारा गया था। सहदेव के पुत्र बृहद्रथ का परिवार चला और एक सहस्र वर्ष तक मगध में इस परिवार का राज्य रहा।

मगध में बृहद्रथ वंश के उपरान्त प्रद्योतवंश और तदनन्तर शिशुनाग वंश हुआ। शिशुनाग के उपरान्त महानन्द वंश और तदुपरान्त मौर्यवंश का वर्णन आता है।

हमने ऊपर लिखा है कि वाम मार्ग की प्रतिक्रिया ही जैन सम्प्रदाय और बौद्ध सम्प्रदाय है। बौद्ध सम्प्रदाय विश्व में बहुत फैला है। यद्यपि अब इसका ह्रास कम्युनिस्टों के हाथ हो रहा है। भारत में वैदिक मत इसका शत्रु नहीं।

महात्मा बुद्ध, भारतीय इतिहास शास्त्र से कलि सम्वत् १३०० के लगभग हुए हैं, किन्तु यूरोपीय इतिहासज्ञों के अनुसार इनका जन्म लगभग पाँच-सौ वर्ष ईसा पूर्व माना जाता है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि बृहद्रथ वंश ने १००० वर्ष राज्य किया।

बृहद्रथ वंश के उपरान्त प्रद्योत वंश ने १३८ वर्ष तक राज्य किया। प्रद्योत वंश के उपरान्त शिशुनाग वंश का राज्य आया। इस वंश के पांचवें राजा बिंबिसार थे और वह महात्मा बुद्ध के समकालीन थे। महात्मा बुद्ध के काल का पुराणों में इस प्रकार पता चलता है। शिशुनाग वंश के शिशुनाग का राज्य काल ४० वर्ष, काक वर्ण ३६ वर्ष, क्षेम वर्मा ३० वर्ष और बिंबिसार का राजस्व काल ३८ वर्ष है। इस प्रकार बिंबिसार के मध्य राज्य में यदि बुद्ध का काल मानें तो यह—

१००० + १३८ + ४० + ३६ + ३० + ४० + २० = १३०४ वर्षं बनते हैं।

अर्थात् कलि सम्वत् लगभग १३०० में महात्मा बुद्ध जीवित थे। यह विक्रम पूर्व १७६५ वर्ष तथा ईसा पूर्व १८२२ वर्ष बनते हैं।

वर्तमान युग के इतिहासज्ञ महात्मा बुद्ध का जीवन-काल ५६० वर्ष ईसा पूर्व मानते हैं। यह कल्पना सर्वथा अशुद्ध है। इसके विषय में हम अपने अगले लेख में लिखेंगे।

यहाँ इतना और लिख देना चाहते हैं कि चीनी और लंका के बौद्धों तथा जैन-ग्रन्थों से भी वर्तमान वैज्ञानिकों के तिथि-काल का अनुमोदन नहीं होता।

●

[पृष्ठ ३३५ का शेष]

स्वप्नावस्था होती है। निद्रा तत्त्व को न जान सकने को कहते हैं और तुरीय दोनों अवस्थाओं का न होना कहा जाता है।

परन्तु यहाँ भी जो सोया है और स्वप्नावस्था में है, वही तुरीय अवस्था में है, कहा नहीं गया। खींचा-तानी से कहा जा सकता है, परन्तु शब्दों से यह प्रकट नहीं होता।

फिर कारिका (१६) में कहा है अनादि माया से जीवात्मा सुलाया हुआ जब जागता है तो अपने को अद्वैत जान जाता है।

प्रश्न है किससे अद्वैत ? शंकर कहते हैं तुरीय से। हमारा मत है कि इसे शरीर मिल जाता है। तब यह प्रकृति के साथ अपने को एक मानने लगता है।

इसीलिए हमने लिखा है कि कारिकायें स्पष्ट नहीं हैं और उपनिषद् से तो इनका किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं है। ●

हिन्दु शब्द की व्युत्पत्ति

स्वामी श्रीराम प्रपन्नाचार्य

[हिन्दु शब्द एवं संज्ञा इधर कुछ वर्षों से विवादास्पद हो गई है। इसके पक्ष एवं विपक्ष में अनेक तर्क-वितर्क चलते हैं। हिन्दु शब्द पर प्राण निछावर करने वाले भी इस देश में हैं और प्राणों पर हिन्दु शब्द निछावर करने वाले भी। हम चाहते हैं कि इस पर विस्तृत विचार-विमर्श हो। अतः पाठकों से निवेदन है कि वे स्वयं अथवा किसी अन्य अधिकारी विद्वान् से 'हिन्दु' के पक्ष अथवा विपक्ष में सार-गर्भित किन्तु तर्कयुक्त एवं शास्त्र-सम्मत लेख भेजें। जिन शास्त्रों एवं पुराणों का उल्लेख हो यदि उनका रचना-काल का भी उल्लेख कर दें तो उत्तम होगा। —सम्पादक]

वेदशास्त्र पुराणेषु कोश तन्त्रागमेष्वपि।
हिन्दुराष्ट्रोज्ज्वला शुभ्रा भारते भातु भारती॥

वेद-शास्त्र, पुराण, कोश, तन्त्र तथा आगमों में हिन्दु राष्ट्र की उज्ज्वल शुभ्र भारती भारतवर्ष में उद्भाषित हो।

हिन्दुत्व दर्शन के तत्त्व त्रय हैं—हिन्दी, हिन्दु तथा हिन्दुस्थान। हिन्दुस्थान का अपर नाम ही हिन्दु राष्ट्र है। हिन्दुत्व विरोधी, धर्म-निरपेक्षवादी, अर्थ-काम-परायण जनों के दम्भपूर्ण षड्यन्त्र से वह हिन्दुस्थान खण्डित किया गया जिसके लिये हिन्दु-तत्त्वज्ञानी मेधावी तथा वीर पुरुषों ने सहस्रों वर्षों तक संग्राम किया था। राष्ट्र-भाषा हिन्दी का मान-मर्दन करने के लिये विदेशी भाषा तथा विदेशी लिपि का प्रचार किया गया। हिन्दुस्थान तथा हिन्दी की हत्या करने के बाद हिन्दु समाज को क्षीण, दीन, हीन तथा दलित करने के लिये सनातनी, आर्य समाजी, जैन, बौद्ध, सिख, द्रविड़, आदिवासी, हरिजन एवं तथाकथित मानववादी भारतीय मानव के रूप में एक ओर विघटित किया जा रहा है, किन्तु दूसरी ओर हिन्दू कोडबिल, हिन्दू-धर्मस्व अधिनियम, हिन्दू

विवाह अधिनियम, हिन्दू सम्पत्ति उत्तराधिकार नियम के द्वारा एक ही कानून के डण्डे से सनातनी, समाजी, सिख, जैन, बौद्ध, हरिजन सभी हिन्दुओं को प्रताड़ित किया जा रहा है। अभी तक इण्डियन कोडबिल तथा इण्डियन मैरिज एक्ट प्रभृति कानून नहीं बन सके। केवल हिन्दू मठ-मन्दिरों की सम्पत्ति पर ही धर्म-निरपेक्ष समाजवादी सरकार का अधिग्रहण है, मसजिद तथा चर्च की सम्पत्ति पर नहीं। आदिवासियों में प्रचार के लिये हिन्दुओं पर प्रतिबन्ध है, विदेशी मिशनरियों पर नहीं। हिन्दू विरोधी दुष्प्रचार से पथ भ्रान्त हिन्दू अपने को हिन्दु कहलाने में लज्जा का अनुभव करता है। संस्कृत साहित्य में हिन्दू शब्द का प्रयोग गौरवपूर्ण अर्थों में है वेद के सिन्धु पद से ही हिन्दु पद की उत्पत्ति हुई। सिन्धु पद का 'सरकार' हिन्दु पद में 'हकार' हो गया। यथा—

(१) ऋग्वेद १०।७५।५ में 'सरस्वती' तथा २।२३।६ में 'हरस्वती' पद का प्रयोग है। सरस्वती तथा हरस्वती समानार्थक हैं।

(२) अथर्ववेद १६।२।२५ में 'हरितः' पद 'सरितः' का समानार्थक है।

(३) शुक्ल यजुर्वेद ३१।२२ में 'श्री' तथा कृष्ण यजुर्वेद ३१।३ में 'ह्री' पद के प्रयोग समानार्थक हैं।

(४) निघण्टु १।१३ का वचन है—

"सरितो हरितो भवन्ति, सरस्वत्यो हरस्वत्यः।"

अतः उच्चारण भेद से सरित्, हरित् तथा सरस्वती, हरस्वती हो जाते हैं।

(५) पाणिनि मुनि कृत अष्टाध्यायी के सूत्र "त्वाहौ सौ" (७।२।९४) के अनुसार अस्मद के प्रथम एक वचन में अस्म को अह आदेश होता है।

सेह्यर्पिच्च (३।४।८७) सूत्र से लोट्, लकार में 'सि' को 'हि' आदेश होता है।

ह ए ति (७।४-५२) सूत्र से भी सकार का हकार आदेश होता है।

(६) प्राकृत भाषा में भी सकार तथा हकार का विपर्यय है—

अस्मि = लि, युष्माकम् = तुह्माणम्, अस्माकम् = अह्माणम्।

(७) हिन्दी भाषा में भी सकार तथा हकार का विपर्यय है। केसरी = केहरि।

(८) फारसी तथा अरबी भाषा में भी सकार के स्थान में हकार का उच्चारण होता है।

सोम = होम। सप्तसिन्धु = हफ्त हिन्दु। सप्ताह = हफ्ता।

अतः वैदिक, संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी तथा फारसी-अरबी में सकार-हकार विपर्यय से सिन्धु शब्द से हिन्दु शब्द की उत्पत्ति हुई।

(९) ऋग्वेद ७।५।२ में नेता सिन्धूनां तथा ऋग्वेद ७।६४।२ में सिन्धुपती क्षत्रियाः का वर्णन है, जिनके अर्थ हैं—नेता हिन्दूनाम् तथा हिन्दुपति क्षत्रियः की उपाधि है। अतः हिन्दु राष्ट्र के परमोद्धारक महाराणा प्रताप को हिन्दू पति की उपाधि से विभूषित किया गया।

हिन्दूपति राणा प्रताप ने घास की रोटी खाई थी।
जयमल फत्ता ने रण मख में निज प्राणाहुति चढ़ाई थी।।
डटे रहें पर हटे नहीं स्वातन्त्र्य सिंह सेनानी।
जय जय भारत वसुन्धरा के धर्मवीर बलिदानी।।

—धर्मचक्र

(१०) ऋग्वेद १।१६४।२७, अथर्व वेद ७।६३।८, ९।१०।५ तथा निरुक्त ११।४५ में मन्त्र है—

हिंकृण्वती......................।
दुहामश्विभ्यां..................।।

इस मन्त्र में हिं...दु पद के समाहार से हिन्दु शब्द की व्युत्पत्ति हुई। इस मन्त्र के अनुसार वत्स दर्शनोत्फुल्ल प्रसन्न तथा हिंकार करती हुई गौ का दुग्ध दुहने वाले गौरक्षक को हिन्दु कहते हैं।

प्रस्तुत मन्त्र में गौ को अघ्न्या (अवध्य) कहा है। मन्त्र में गौरक्षा से महा-सौभाग्य की वृद्धि का निर्देश है।

(११) चन्द्रवंशी राजा ययाति के पुत्र तुर्वसु तथा द्रह्‌यु के वंशज लेच्छ देशों देशों के अधिपति हुए।

"म्लेच्छाधिपतयोऽभवन्"।

—श्रीमद्भागवतम् ९। २३। १६

चन्द्रवंशी राजा अपने को इन्दु (चन्द्रमा) या ऐन्दव कहते थे। इन्दु तथा ऐन्दव शब्दों का विकृत रूप दकारहीन खरोष्ट्री भाषाओं में इण्डो, इण्डिया तथा इण्डियन हो गया। संस्कृत के होरा से अग्रेजी का शब्द (hour) बना जिसमें h का उच्चारण लुप्त है। किन्तु होराचक्र (horoscope) में h उच्चारणीय है। सिन्धु-हिन्दु-इन्दु में हकार के उच्चारण के लोप तथा दकारहीन अँग्रेजी भाषा में इण्डिया शब्द बना।

(१२) वृहस्पति तन्त्र का वचन है।

हिमालय समारभ्य यावदिन्दु सरोवरम्।
तं देव निर्मितं देशं हिन्दुस्थान प्रचक्षते।।

अर्थात् हिमालय से लेकर इन्दु सरोवर (कन्या कुमारी) पर्यन्त देव निर्मित

दिव्य देश का नाम हिन्दुस्थान है। हिमालय के 'हि' तथा इन्दु के 'न्दु' से हिन्दु शब्द की व्युत्पत्ति हुई।

(१३) मेरुतन्त्र का वचन है—

हिन्दु धर्म प्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्तिनः।
हीन च दूषयत्येव स हिन्दुरुच्यते प्रिये॥

अर्थात्—भगवान् शङ्कर कहते हैं कि हे पार्वती, कलियुग में हिन्दु धर्म का लोप करने वाले चक्रवर्ती हो जायँगे। हीन को दूषित करने वाला हिन्दु कहा जाता है।

(१४) पारिजातहरण नाटक का वचन है—

हिनस्ति तपसा पापान् दैहिकान् दुष्ट मानसान्।
हेतिभिः शत्रुवर्गाश्च स हिन्दु रभिधीयते॥

अर्थात् जो तपस्या द्वारा दैहिक तथा मानसिक पापों का विनाश करे तथा शत्रु समूह का शस्त्रास्त्रों से संहार करे, उसे हिन्दु कहते हैं। अतः हिन्दु का अर्थ है—'दुष्ट हिंसक।'

(१५) राम कोश की परिभाषा है—

हिन्दु दुष्टनृह प्रोक्तोऽनार्य नीति विदूषकः।
सद्धर्म पालको विद्वान् श्रौत धर्म परायणः॥

अर्थात् दुष्ट जन दमनकारी, अनार्य नीति विदूषक, सद्धर्म पालक, विद्वान् तथा वैदिक धर्मपरायण व्यक्ति को हिन्दु कहते हैं।

(१६) संस्कृत व्याकरण के धात्वर्थ की दृष्टि से 'हिंसी हिंसायाम् या 'हन-हिंसागत्योः' से 'हिं' शब्द तथा 'दुष्वैकृत्यो' या 'टु' 'दुज् परितापे' से 'दु' शब्द का निर्वचन हुआ। अतः दुष्ट हिंसक के वर्ण विपर्यय से हिन्दु शब्द सिद्ध होता है, यथा 'अहोरात्र' से 'होरा' शब्द।

(१७) वीर विनायक सावरकर कृत हिन्दु की परिभाषा—

आसिन्धु सिन्धु पर्यन्ता यस्य भारत भूमिका।
पितृभूः पुण्य भूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः॥

अर्थात् पश्चिम सिन्धु से लेकर पूर्व सिन्धु पर्यन्त भारतवर्ष की भूमि जिसकी पितृभूमि तथा पुण्यभूमि है, उसे हिन्दु कहते हैं।

मुस्लिम तथा ईसाई की पितृभूमि तथा पुण्यभूमि भारतवर्ष नहीं है। हिन्दु धर्म से च्युत मुस्लिम सुन्नत के पश्चात् हिन्दु ऋषि, मुनि, अवतार वीर पुरुषों को अपना पूर्वज नहीं मानते। भारतवर्ष के पावन तीर्थ अयोध्या, मथुरा,

[शेष पृष्ठ ३५५ पर]

प्रकृति की लीला

श्री प्रणव प्रसाद

उपनिषद् में एक मन्त्र है--

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ।

(श्वेता० ४-५ का पूर्वार्ध)

इसका अर्थ है एक अनादि पदार्थ। जिसके तीन गुण हैं—सत्त्व, रजस् और तमस्। यह पदार्थ अपने ही स्वरूप वाली अनेक प्रजाओं का सृजन करता है।

अपने ही रूप का अर्थ है—सत्त्व, रजस् और तमस् गुणों वाली प्रजायें।

इन प्रजाओं का अर्थ है पदार्थ। पदार्थ कितने हैं? इसकी गणना नहीं की जा सकती। पदार्थ अगणित हैं। ये सब एक ही अनादि पदार्थ से निर्माण हुए हैं। उस अनादि पदार्थ को भारतीय विज्ञान में प्रकृति का नाम दिया है।

वर्तमान विज्ञान भी धीरे-धीरे इसी परिणाम पर पहुँचता जाता है कि संसार के विविध पदार्थ एक ही मूल पदार्थ से उत्पन्न हुए हैं।

उस एक पदार्थ को विज्ञान वेत्ता अभी भलीभाँति जान नहीं सके। यह इस कारण नहीं कि उन्होंने इसके जानने का प्रयास नहीं किया। वरन् इस कारण है कि संसार के जिस किनारे से इसकी खोज आरम्भ की गयी है वह मूल पदार्थ से बहुत दूर का है। भारतीय विज्ञान वेत्ताओं ने अपनी खोज का आरम्भ ही मूल पदार्थ से किया था। अतः भारतीय विज्ञान वेत्ता मूल पदार्थ के विषय में अधिक जानते हैं। वर्तमान वैज्ञानिक ने अपनी खोज का आरम्भ प्रत्यक्ष पदार्थों से किया है। अतः वह प्रत्यक्ष पदार्थों के विषय में भारतीय वैज्ञानिकों से अधिक जान गया है।

मूल और सृजन पदार्थ में बहुत दूर का अन्तर है। यदि इस दूरी की उपमा दी जाये तो उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव का अन्तर कहा जा सकता है। कदाचित् इससे भी बड़ा अन्तर है।

इन दोनों किनारों (मूल और सृजत पदार्थ) में ही सृष्टि के अनेकानेक

पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं। कोई भी पदार्थ नहीं जिसका मूल वही अजा (अनादि पदार्थ) नहीं जिसका उल्लेख ऊपर दिये मन्त्र में किया गया है। इन पदार्थों की रचना को ही प्रकृति की लीला का नाम दिया जा सकता है।

उपनिषद्कार ने उक्त घोषणा इस कारण की थी कि किसी ने इस सृष्टि के अनेकानेक पदार्थों के तत्त्व को जानने की इच्छा की थी।

जिज्ञासु ने पूछा था :

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद्वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति।
वि चैति चान्ते विश्वमादौ स देवः स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥
तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदापस्तत्प्रजापतिः।
त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥
नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्षस्तडिद्गर्भ ऋतवः समुद्राः।
अनादिमत्त्वं विभुत्वेन वर्तसे यतो जातानि भुवनानि विश्वा॥

(श्वेता० ४-१, २, ३, ४,)

इसका अर्थ है :

जो एक रूपरहित बहुत प्रकार से शक्ति के योग से अनेक रंगों और नियत अर्थों (प्रयोगों) को धारण करती है; ये सब उसी से बने हैं और अन्त में उसी में लीन हो जाते हैं। वे देव (परमात्मा) द्वारा ही शुभ बुद्धि से संयुक्त हो रहे हैं।

वह एक ही अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म और प्रजापति हैं क्या ?

वही नील वर्ण भ्रमर रंग (काले वर्ण) हरित वर्ण, लाल आँखों वाले, मेघ ऋतुयें, समुद्र इत्यादि उस अनादि पदार्थ की सामर्थ्य से वर्त रहे हैं और उससे ही विश्व के सब नक्षत्रादि बने हैं क्या ?

इसके उत्तर में ही यह कहा है कि एक अनादि पदार्थ है जिसमें से नाना प्रकार के पदार्थ बने हैं और उस पदार्थ में सत्त्व, रजस् और तमस् तीन गुण हैं। यही गुण पदार्थों में भी होता है।

हमने बताया है कि वर्तमान वैज्ञानिक और प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक में अन्तर यह है कि एक अपनी खोज में उत्तरी ध्रुव से चला है और दूसरा दक्षिणी ध्रुव से। एक आदि मूल पदार्थ प्रकृति से चला है और दूसरा सृष्टि के विविध पदार्थों से।

यहाँ एक बात पाठकों को और बता दी जाये तो ठीक रहेगा कि भारतीय विज्ञानवेत्ता का नाम ब्रह्मविद् है। उसे ब्रह्मविद् इस कारण कहते हैं कि ब्रह्म-

ज्ञान में सब कुछ आ जाता है। वह सब कुछ जो अभी तक वर्तमान वैज्ञानिक जान पाया है अथवा जिसको पाने का वह यत्न कर रहा है और अभी पा नहीं सका।

अतः यह चर्चा जिसका प्रसंग इस लेख में कर रहे हैं, वह ब्रह्मविदों ने ही आरम्भ की है।

इस उपनिषद् का आरम्भ कुछ ब्रह्मवेत्ताओं की बात से किया गया है। इसके प्रथम अध्याय का प्रथम मन्त्र ही यह कहता है। मन्त्र है :

ब्रह्मवादिनो वदन्ति—

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च संप्रतिष्ठाः।

अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्॥

(श्वेता० १-१)

ब्रह्मवादी कहते हैं—इस जगत् का कारण ब्रह्म कैसा है? हम किससे उत्पन्न हुए? किससे जीवित रहते हैं? कहाँ स्थित हैं और ब्रह्मवादियो, बताओ हम किस व्यवस्था से इस संसार में वर्तते हैं?

अतः भारतीय ब्रह्मवेत्ता वर्तमान वैज्ञानिकों से कुछ अधिक हैं। इस कारण कि बहुरूप प्रकृति के अतिरिक्त भी ब्रह्मवेत्ता जानने का यत्न करता है कि वह क्या, किससे और क्यों है?

इस पर भी यह ज्ञानवर्धक होगा कि हम वर्तमान विज्ञान की दिशा का अनुकरण ही करें और देखें कि एक से बहुरूप की ओर चलने वाले से हम कहाँ जाकर मिल सकते हैं? दूसरे शब्दों में पदार्थों का विश्लेषण करते-करते हम देखना चाहते हैं कि प्राचीन ब्रह्मविद् इसको कहाँ तक और किस प्रकार समझ पाये थे?

इस लेख में हम बात को यहीं समाप्त करते हैं कि एक अनादि है जो त्रिगुणात्मक है और जिससे अनेक रूप वाले पदार्थ बनते हैं। इतना और लिख दें कि भारतीय ब्रह्मविद् यह भी कहते हैं—

अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते

जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥ (श्वेता० ४-५ का उत्तरार्द्ध)

एक अन्य अनादि भी है जो उक्त त्रिगुणात्मक बहुरूपों का सेवन करता है और उस पर अनुशासन करता है। एक तीसरा अनादि है जो दूसरे की भोग-सामग्री का सेवन नहीं करता।

ये दो, भोग करने वाला और भोग न करने वाला, इनका प्रकृति की लीला में क्या योगदान है? यह हम अगले लेख में बतायेंगे। वर्तमान युग के वैज्ञानिक इन दो तत्त्वों के विषय में कुछ नहीं जानते। •

पंचम संसदीय निर्वाचन और उसके परिणाम

श्री गुरुदत्त

मैंने इस लेख-माला के पूर्व के एक लेख में लिखा था कि स्वराज्यारम्भ से आज तक काँग्रेस ही एकमात्र सत्तारूढ़ दल रहा है और विरोधी दल की शक्ति सदैव नगण्य रही है।

विरोधी दल पहले तो केवल जनसंघ था और बाद में दो हो गये। जनसंघ और स्वतन्त्र दल। मैं शेष किसी भी दल को विरोधी दल नहीं मानता।

कुछ लोग मानते हैं कि विरोधी दल का काम केवल सरकारी कामों की छानबीन करते रहना है। मैं विरोधी दल का केवल इतना ही काम नहीं मानता। विरोधी दल का निर्माण तब होना चाहिये, जब सत्तारूढ़ दल से किसी प्रकार का सैद्धान्तिक मतभेद हो।

राजनीति में व्यक्तियों की महत्वाकांक्षा के आधार पर भी दल बनते हैं। ऐसे दलों का स्थायी रूप नहीं हो सकता। ये व्यक्ति के चल बसने पर समाप्त हो जाते हैं।

जब भी दलों का निर्माण राजनीति में सैद्धान्तिक मतभेद के अतिरिक्त कारणों पर आधारित होता है तभी राजनीति में दोष और फिर उससे दुःख और क्लेश उत्पन्न होते हैं।

प्रायः इस विषय में भी भूल हो जाती है कि सामान्य विवाद को सिद्धान्त मान लिया जाता है और सिद्धान्त की बात को गौण मान लिया जाता है। ऐसी स्थिति में भी देश में दुर्व्यवस्था का ही सृजन होता है।

यदि वर्तमान भारत की स्थिति को समझा जाये तो बात समझ में आ जायेगी।

राजनीति का उद्देश्य तो यह है कि देश में शान्ति-व्यवस्था और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सुरक्षा बनी रहे। साथ ही यह शान्ति-व्यवस्था और अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा न्याय और सत्य पर आधारित हो।

देश में कोई भी राजनीतिक दल जो इन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं करता अथवा इनकी पूर्ति के लिए नहीं बना, वह राजनीतिक दल होने का दावा नहीं कर सकता। वह यदि देश की राजनीति में हस्तक्षेप करता है तो भयंकर स्थिति की सृष्टि ही करेगा।

अतएव मेरा यह सुनिश्चित मत है कि देश की राजनीति सत्य और न्याय पर आधारित देश में शान्ति-व्यवस्था स्थापित करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सत्य और न्याय के आधार पर देश की सुरक्षा रखने के लिए होती है और देश में कोई भी राजनीतिक दल जिसका लक्ष्य उक्त उद्देश्य नहीं, वह राजनीति में हस्तक्षेप करने का अधिकारी नहीं।

उद्देश्य-प्राप्ति के उपायों पर मतभेद हो सकता है। इन उपायों का निश्चय करने में शान्ति-व्यवस्था, न्याय, सत्य और सुरक्षा की अवहेलना नहीं की जा सकती। अभिप्राय यह कि उपायों पर मतभेद होते हुए भी उद्देश्य का विरोध नहीं होना चाहिए।

इस दृष्टि से ही मैंने अपने पूर्व लेख में लिखा था कि देश में सन् १९४७ से कांग्रेस सत्तारूढ़ है। इसके सत्तारूढ़ होने में उक्त उद्देश्य थे अथवा नहीं, यह विचारणीय है। प्रत्यक्ष रूप में तो देश में शान्ति-व्यवस्था रखने का यत्न किया गया था, परन्तु यह शान्ति-व्यवस्था सत्य एवं न्याय पर आधारित थी अथवा नहीं, इस पर मतभेद है।

मतभेद कांग्रेस से विरोधियों के विचार से ही नहीं, वरन् कांग्रेस के भीतर भी यह मतभेद बहुत तीव्र था।

एक तो देश में शान्ति-व्यवस्था से भी अधिक महत्त्व था व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा का। पण्डित जवाहरलाल उच्च महत्वाकांक्षा रखने वाला व्यक्ति था। उसकी प्रधानमंत्री बनने और बने रहने की अभिलाषा देश में सत्य, न्याय और शान्ति से अधिक मानी गयी थी।

जवाहरलाल नेहरू और उसके पिता पण्डित मोतीलाल नेहरू मुसलमानों के लिए हृदय में विशेष संवेदना रखते थे और इस संवेदना ने पाकिस्तान बनने, इसकी रक्षा करने और भारत में पाकिस्तान के अनुकूल एक 'लौबी' निर्माण करने में योगदान दिया था। यह बात गांधी और अन्य कांग्रेसी नेताओं को भी विदित थी। नेता लोग यह भी जानते थे कि मुसलमानों का व्यवहार सन् १९४७ से पूर्व देश हित से अधिक इस्लाम के हित में था।

इस पर भी कांग्रेस और गांधी ने जवाहरलाल को आगे आ भारत का भाग्य विधाता बनने में सहायता दी थी। यह व्यक्ति-पूजा थी, राजनीति नहीं।

कहने का अभिप्राय यह है कि कांग्रेस एक राजनीतिक-संस्था कहलाने पर भी ऐसी नहीं थी। यह व्यक्ति-पूजा को देश में सुव्यवस्था, शान्ति, न्याय और सुरक्षा से अधिक समझती थी।

न्याय और शान्ति के विचार से पाकिस्तान स्वीकार नहीं करना चाहिये था। इसे स्वीकार करने के समय व्यक्ति-पूजा के अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी थे। उनमें एक था यहाँ अंग्रेज़ों का होना। अंग्रेज मुसलमानों को भड़का रहा था। यह न्याय और शान्ति में सहायक नहीं था। ऐसा माना गया। परन्तु यह मानकर भी और देश भर के मुसलमानों के पाकिस्तान के पक्ष में विशाल बहुमत होने पर भी उन मुसलमानों को अपने प्रिय देश में न जाने देना क्या पण्डित जवाहरलाल और गांधी की योजना नहीं थी और उनकी पूजा करते हुए ही यह नहीं की गयी थी ?

इसी से मेरा यह कहना है कि कांग्रेस राजनीतिक दल नहीं था। कोई भी दल इस कारण राजनीतिक दल नहीं कहा जा सकता; क्योंकि वह किसी देश के शासन को सँभाले हुए है। इसके लिए राजनीति के उद्देश्यों की पूर्ति होनी आवश्यक है। सन् १९४७ से पूर्व और बाद में कांग्रेस एक व्यक्ति की महिमा-गान का दल था। यह देश में न्याय, शान्ति, सत्य और सुरक्षा के लिये निर्माण नहीं हुआ था।

कश्मीर के विषय में जवाहरलाल की बात मानी जानी, सन् १९५० में लियाकत अली से किये गए पैक्ट में जवाहरलाल का अन्धानुकरण और अन्य अनेक विषयों में देश पर पण्डित जवाहरलाल को वरीयता देने से यह दल जवाहरलाल का दल ही माना जाना चाहिए। यह भारत देश का किसी प्रकार से भी राजनीतिक दल कहलाने के योग्य नहीं था।

सन् १९६२ में चीन के आक्रमण के समय यह स्पष्ट हो गया था कि इस व्यक्ति की पूजा में देश की सुरक्षा की भी अवहेलना हुई थी। देश को लज्जित होना पड़ा जवाहरलाल की नालायकी के कारण। परन्तु जवाहरलाल बना रहा और देश का सहस्रों वर्गमील का क्षेत्र शत्रु के हाथ में चला गया।

यह बात सन् १९६४ तक चलती रही। इस वर्ष पण्डित जवाहरलाल का देहान्त हो गया और उसके पीछे नेता का निर्वाचन देश हितों के विचार से नहीं हुआ। यहाँ भी व्यक्तिगत पूजा का प्रश्न उग्र था। झगड़ा था मुरार जी भाई और इन्दिरा गांधी में। इन्दिरा गांधी की स्थिति अभी उतनी प्रबल नहीं थी। मुरार जी भाई ने इस कारण कुछ समय के लिए एक मोहरा श्री लाल बहादुर शास्त्रीजी को खड़ा कर दिया और उसे सफल नेता बना दिया गया।

लालबहादुर शास्त्री और इन्दिरा गांधी में किसी प्रकार का सैद्धान्तिक मतभेद था, यह कोई नहीं जानता। इन्दिरा गांधी में यह गुण था कि वह जवाहरलाल की पुत्री है और शास्त्रीजी में यह गुण था कि वह जवाहरलाल जी के मित्र और विश्वस्त व्यक्ति थे।

अतः मेरी यह धारणा है कि शास्त्रीजी के प्रधानमन्त्री बनने के समय भी और बाद में इन्दिरा गांधी के प्रधान मन्त्री बनने के समय भी कोई सैद्धान्तिक उद्देश्य नहीं था। व्यक्तिगत, (वह भी जवाहरलाल नेहरू की) पूजा थी। देश की सुरक्षा इत्यादि का प्रश्न नहीं था।

इस व्यक्ति-पूजा की आढ़ में देश का राज्य बाईस वर्ष से चल रहा था। आखिर यह ढोंग फूटा और दो व्यक्ति दिखाई देने लगे। मुरारजी भाई अथवा इन्दिरा। देश ने इन्दिरा को स्वीकार किया। इन्दिरा की पूजा आरम्भ हुई। यह जवाहरलाल नेहरू से अधिक तीव्र दिखाई दे रही है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि यह उतनी देर तक चल सकेगी अथवा नहीं जितनी देर तक जवाहर लाल नेहरू की चली थी। इस पर भी यह व्यक्ति की पूजा है। इस पूजा ने समाजवाद की ओढ़नी ओढ़ी हुई है।

यह देश का दुर्भाग्य है कि देश के हितों (शान्ति, न्याय, सत्य और सुरक्षा) का विचार छोड़कर एक व्यक्ति की पूजा हो रही है।

परन्तु इसका विरोध किसने किया है? मुरार जी भाई दल ने? प्रजा सोशलिस्ट दल और संयुक्त सोशलिस्ट दल ने? सिद्धान्त से ये तीनों दल वही मानते हैं जो इन्दिरा का दल मानता है। इन्दिरा का दल यह मानता है कि ओढ़नी समाजवाद की और भीतर निपट स्वार्थ। ये दल भी लगभग ऐसा ही समझते हैं। इनमें कोई भी उस सूझ-बूझ और चतुराई का नेता नहीं जैसा जवाहरलाल नेहरू था। कांग्रेस में जाकर इनकी गणना कुछ भी नहीं रह सकती। इस कारण इनके पृथक् दल हैं।

मेरा ऐसा विचार है कि समाजवाद एक उपाय है जिससे देश में शान्ति, न्याय-व्यवस्था और सुरक्षा का प्रबन्ध सुचारु रूप से होना माना जाता है। यदि यह है तो चारों दल एक हैं। कांग्रेस (इन्दिरा), कांग्रेस (मुरारजी भाई), प्रजा सोशलिस्ट, संयुक्त सोशलिस्ट में किसी प्रकार का अन्तर नहीं माना जाना चाहिए। इस पर भी ये दल पृथक्-पृथक् हैं। ये किसी सैद्धान्तिक भेद के कारण नहीं, वरन् नेतागिरी की लालसा के कारण हैं।

मैंने अपने पूर्व के लेख में लिखा था कि वास्तविक विरोधी दल तो उक्त हैं। ये दोनों दल उस सिद्धान्त का अभिप्राय यह कि उस उपाय का जिससे कांग्रेस दल

राजनीति चला रही है, मतभेद रखते हैं।

मैंने वताया है कि कांग्रेस ने ओढ़नी तो समाजवाद की ओढ़ली हुई है परन्तु भीतर स्वार्थ और महत्वाकांक्षा की लालसा कर रही है।

इस समाजवाद का विरोध किया है स्वतन्त्र दल ने। इस कारण हम उसे विरोधी दल मानते हैं। स्वतन्त्र दल वाले यह मानते हैं कि समाजवाद जैसा कि इसके नाम और काम से पता चलता है, देश में न तो शान्ति-व्यवस्था रख सकेगा और न ही न्याय-व्यवस्था। इससे देश की सुरक्षा भी सम्पन्न नहीं हो सकती। यह देश की राजनीति के चलाने के ढंग में भेद है। अतः हम स्वतन्त्र दल को विरोधी दल मानते हैं।

परन्तु क्या कांग्रेस, जवाहरलाल और इन्दिरा गांधी की ओढ़नी में एक अन्य बात नहीं। वह है देश में इस्लाम को प्रधान पद दिलाये रखना। इसमें भी वास्तविक रहस्य उनकी अपनी नेतागीरी है। इस पर भी यह है और जब तक मुसलमान देश में उस पद पर आसीन रहेंगे जिस पर जवाहरलाल और इन्दिरा इनको रखना चाहती है तब तक कांग्रेस दल सत्ता सम्पन्न बना रहेगा। स्वतन्त्र दल कई कारणों से और वास्तव में सन १९४७ से पूर्व की मान्यताओं से मुसलमान की विशेष स्थिति का विरोध नहीं कर सकता। इस कारण स्वतन्त्र दल कांग्रेस के केवल समाजवादी समाघोष का ही विरोध करता है। 'इस्लाम खतरे में' का विरोध नहीं करता।

इस कारण कांग्रेस का आंशिक विरोध तो है, परन्तु पूर्ण नहीं।

दूसरा विरोधी दल है जनसंघ। यह कांग्रेस की मुसलमानों के प्रति विशेष मोह का विरोध तो करता है, परन्तु उसकी समाजवादी नीति का खुलकर विरोध नहीं करता। इसी कारण हमने कहा था कि सत्तारूढ़ कांग्रेस के विरोधी दल दो हैं, परन्तु दोनों का विरोध भिन्न-भिन्न विषयों पर है। यही कारण है कि दोनों इकट्ठे नहीं हो सकते।

जब इस मध्यावधि चुनाव के समय कांग्रेस के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनने लगा था तो उसमें आमन्त्रित थे जनसंघ, कांग्रेस (संगठन), संयुक्त सोशलिस्ट, स्वतन्त्र और भारतीय क्रान्ति दल। इन सब दलों में कुछ भी साँझा नहीं था। केवल एक बात साँझी थी। वह थी इन्दिरा को हटाओ।

यह राजनीतिक समाघोष नहीं था। इसका प्रयोग भी हो सकता था, परन्तु वह नहीं किया गया। अथवा उक्त संयुक्त मोर्चे में आमन्त्रित सब दल इन्दिरा के मुकाबले में कोई अपने में ऐसा व्यक्ति खड़ा नहीं कर सके जिसका नाम देश भर में उतना ही प्रसिद्ध होता जितना इन्दिरा का था।

संयुक्त दल ने क्या किया ? इसका अगले लेख में वर्णन करूँगा।

वेदों में यम के अर्थ

□

श्री रामशरण वशिष्ठ

वैदिक देव विज्ञान में यम शब्द के बहुत व्यापक अर्थ हैं। यास्काचार्य ने निरुक्त (१२-१९ में) यम के अर्थ आदित्य किये हैं। यही श० ब्रा० (१४-१-३-४ में) कहता है। श० ब्र० (१४-२-२-११) यम के अर्थ वायु भी करता है। एक अन्य स्थान पर निरुक्त (१०-२०) में यम के अर्थ अग्नि किये हैं। और गो० ब्र० (४-८) में भी ऐसा ही है।

विवस्वान को श० ब्र० (१०-५-२-४) में सूर्य बताया है और यम को सूर्य का पुत्र कहा है। वहाँ उसके अर्थ वायु के हैं। सूर्य की तपन से वायु चलता है। सूर्य सिद्धान्त में (१२-१८) यम को काल बताया है। उस स्थान पर यम मृत्यु का देवता कहा जाता है। वहाँ वह परमात्मा का वाचक है। परमात्मा की आज्ञा के बिना मृत्यु नहीं आती।

यम के अर्थ मनुस्मृति (६-१२) में धर्म किये हैं (यमाः स्मृताः)। यम राजा के कर्मचारी को भी कहते हैं। जब वह कर वसूल करता है। कहते हैं 'यम आज्ञा है'। यम राजा को भी कहते हैं। क्योंकि वह प्रजा को दण्ड देता है।

यम-यमी (ऋ १०-१० में) पति-पत्नी—भाई-भगिनी अथवा दिन-रात् के अर्थों में भी विद्वानों ने प्रयोग किया है। पाश्चात्य विद्वान् वहाँ पर couple का अर्थ करते हैं।

दाह-संस्कार के मंत्रों (ऋ १०-१४, १५, १६) में बार-बार यम शब्द का प्रयोग हुआ है।

जुड़वाँ बालकों को भी यम कहते हैं। यम का सम्बन्ध प्राण-अपान से भी है। क्योंकि जब प्राण-अपान बन्द हो जाते हैं तो मृत्यु हो जाती है।

चाँद की दूसरी तिथि को भी यम कहते हैं। इस तिथि का गहरा सम्बन्ध यम से है।

जब बीमार के लिये किसी वैद्य को बुलाना हो तो दो मनुष्य नहीं जाते—भ्रम

करते हैं। मृत्यु की आशंका करते हैं। मृत्यु होने पर कहते हैं इसका काल आ गया।

अथर्व वेद १८-२-११, १२ और ऋ० १०-१४-१० में यम के दो कुत्ते बताये गये हैं। **'श्यामश्च त्वा मा शब्लश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षि श्वानौ'** अ० ८-१-६ में आता है। यह वर्णन अलंकारिक है। वास्तव में दिन-रात ही दो कुत्ते हैं जो सब मनुष्यों के कर्मों को देखते हैं। दिन-रात ही मनुष्य की आयु को समाप्त कर देते हैं। ऋ० ८-२-२७ में यम के दो दूत कहे हैं। **'मृत्युर्यमस्यासीद दूतः'**। यजु० ३७-११ में आता है—**'एष वै यमः य एष सूर्यः तपत्येष'** यहाँ पर यम कर्म का वाचक है। ऋ० १०-१३७-५ में आता है—"विनियन्तुरादित्य यस्य" वहाँ भी सूर्य का वाचक है। यम को मृत्युलोक का राजा कहा है—वह परमात्मा का ही द्योतक है। पृथ्वी को यमी कहा है—सब को खा जाती है। वायु को यम कहते हैं क्योंकि वह मृत्यु होने पर जीव को वायु मण्डल में ऊपर ले जाता है।

य०३८-३९ में 'अयं वै यमो' ऐसा वचन आता है। यम स्वप्न को भी कहते हैं। वह स्वप्न लाता है।

य० २५-४, ५ में 'यमस्य त्रयोदशी' और 'यम्यै त्रयोदशी' शब्द आते हैं। यम का सम्बन्ध चाँद की १३वीं से कहा है।

य० १२-६३ में अग्निर्वै यमः आता है। अग्नि-दाह करने में कारण रूप है। इसलिए यम है।

यम-यमी को भाई बहिन की कल्पना करके एक नियम बताया है कि इन का विवाह नहीं होता (ऋ० १०-१०-१३)।

ऋ० ८-२४-११ में यम विद्युत है। वास्तव में यम परमात्मा ही है जो मनुष्यों को कर्मों का फल देता है। वेद के अर्थ करने की शैली को न जानकर मंत्रों के अर्थ ठीक नहीं हो पाते। अर्थ प्रकरण अनुसार बुद्धिमानों को अर्थ करने चाहियें। ●

सूचना

लगभग आठ मास से यह सूचना प्रकाशित हो रही है कि 'ब्रह्मसूत्र' पर श्रीगुरुदत्त की विवेचना शीघ्र ही प्रकाशित हो रही है। कुछ प्रेस की कठिनाइयों के कारण इसमें विलम्ब हो रहा है। अब स्थिति यह है कि खण्ड एक का प्रथम अध्याय छप चुका है। इसमें लगभग ३०० पृष्ठ हैं। इस खण्ड का द्वितीय भाग अब प्रेस में है तथा आशा है इसके २०० पृष्ठ बनेंगे।

लगभग ५०० पृष्ठों का यह खण्ड हम समझते हैं कि १५ सितम्बर तक तैयार हो जायगा।

अपने संरक्षक सदस्यों से भी हम इस विलम्ब के लिए क्षमा चाहते हैं।

मंत्री, शाश्वत संस्कृति परिषद्

दस वर्ष पूर्व

सांप्रदायिकता और हिंदू महासभा

☐

हिन्दू महासभा में हिन्दू समुदाय को सम्प्रदाय के रूप में मानने का सदैव भ्रम बना रहा है। हिन्दू-इतर सम्प्रदाय जब कोई कार्य अथवा सम्मेलन करता है तो हिन्दू महासभा में उसकी तुरन्त प्रतिक्रिया होती है। और फिर उस प्रतिक्रिया को वह हिन्दू समाज में प्रसारित करना चाहती है। उसका परिणाम यह होता है कि हिन्दू समाज के अधिकांश घटक, जो स्वयं को मुसलमान अथवा ईसाई की ही भाँति का प्राणी नहीं समझते, हिन्दू महासभा के कार्य से अप्रभावित रहते हैं। उदाहरणार्थ १९४१ में मुस्लिम लीग ने हिन्दू, मुसलमान भिन्न-भिन्न जाति के आधार पर भारत विभाजन की माँग की तो हिन्दू महासभा ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए इन दोनों को दो विभिन्न जातियाँ मानते हुए यह भी माना कि दो जातियाँ एक देश में एक साथ रह सकती हैं। जबकि उनको कहना चाहिए था कि यह हिन्दुओं का देश है, जो हिन्दुओं के साथ मिलकर नहीं रहना चाहते वे इस देश में न रहें।

उस समय हिन्दू महासभा ने मुसलमानों को ब्रिटिश सरकार से सहयोग करते देख स्वयं भी उसके साथ सहयोग करने का यत्न किया था। इस बार क्या फिर यह कांग्रेस से सहयोग कर वह हिन्दू पक्ष को सबल करने का यत्न करेगी? मार्च १९६१ के संसदीय उपचुनाव में नई दिल्ली क्षेत्र में हिन्दू महासभा के दूरदर्शी (?) नेताओं ने यही किया। हिन्दू महासभा मुसलमानों की ही भाँति पहले अंग्रेज भक्त थी और अब काँग्रेस भक्त है। किन्तु मुसलमानों की भाँति हिन्दू महासभा पर न अंग्रेज सरकार की सुदृष्टि पड़ी और न काँग्रेस सरकार की। अंग्रेज सरकार मुसलमानों की सहायता इस कारण करती थी कि वे देशद्रोह कर अंग्रेजों की सहायता करते थे और अब काँग्रेस मुसलमानों की सहायता इसलिये करती है उनके मतों से वह अपनी सरकारी स्थिति सुदृढ़

करती है। मुसलमान तब भी राष्ट्रघाती था और अब भी है। क्या हिन्दू महासभा भी वर्तमान काँग्रेस सरकार की सहायता कर देशद्रोही की उपाधि से विभूषित होना चाहेगी ?

हिन्दू महासभा अथवा किसी भी हिन्दू संस्था के लिए एक ही मार्ग है। वह यह कि विशुद्ध राष्ट्र-भावना से प्रेरित होकर देश को सुसंगठित और सुदृढ़ करना। भारत की आज की सबसे प्रमुख आवश्यकता है 'राष्ट्रीयता' की व्याख्या और उसके आधार पर राष्ट्र को सुदृढ़ करना। यह निश्चित है कि काँग्रेस राष्ट्रीय संगठन नहीं अतः उसका सर्वथा बहिष्कार कर राष्ट्रीयता का प्रसार होना चाहिये।

(शाश्वत वाणी, अगस्त १९६१)

[पृष्ठ ३४३ का शेष]

काशी, प्रयाग, रामेश्वरम् आदि मुसलमानों के लिये पवित्र नहीं हैं। भारतवर्ष के रहने वाले मुसलमान मुहम्मद, मक्का, मदीना तथा काबा को पाक मानते हैं। भारत को नापाक समझकर मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान बनाया। इसी प्रकार हिन्दू धर्म से च्युत ईसाई भी बपतिस्मा के बाद ईसा तथा फिलिस्तीन को पाक मानने लगते हैं भारत को नहीं।

(१८) हिन्दू-कर्त्तव्य के सम्बन्ध में हिन्दु-राष्ट्र-मीमांसा में मेरी परिभाषा है—

ओ३म् काराम्नाय गो भक्तो धर्मात्मा भारत व्रतः।
शास्त्र शास्त्र क्रिया निष्ठो हिन्दुर्वै दुष्टहिंसकः॥

—हिन्दु राष्ट्र मीमांसा

अर्थात् जो ओ३म्कार, आम्नाय तथा गौ का भक्त है, धर्मात्मा तथा भारत रक्षा का व्रती है, शस्त्र-शास्त्र के प्रयोग में तत्पर है, तथा जो दुष्ट, हिंसक है, उसे हिन्दू कहते हैं। इसकी व्याख्या अग्रिम निबन्ध में की जायगी। •

समाचार समीक्षा

□

रक्षक या भक्षक ?

विगत मास इसी स्तम्भ में हमने इस शीर्षक से विस्तृत समाचारों को प्रकाशित किया था। उतने विस्तार के साथ सूचित करने के उपरान्त कदाचित हम इस विषय में मौन हो जाना ही उपयुक्त समझते यदि २२ जुलाई के दिल्ली के दैनिकों में जर्मनी से आये एक प्रोफेसर डॉ० फ्रेना की उघड़ी पीठ पर पुलिस के डंडों के चिह्न उभरे न दिखाई देते। हुआ यह कि दो विदेशी पर्यटकों का किसी टैक्सी ड्राइवर से किराये के पैसों पर विवाद हो रहा था कि इधर से डॉ० फ्रेना गुज़रे और विवाद बढ़ता देख उन्होंने समीप बैठे पुलिस के जवानों को सहायता के लिए बुलाया। किन्तु सहायता की अपेक्षा पुलिसवालों ने किसी भ्रमवश (किन्तु इस भ्रम का हम कोई कारण नहीं समझ पा रहे हैं) डॉ० फ्रेना को ही डंडों से पीटना आरम्भ कर दिया। पुलिस के इस निर्मम व्यवहार पर डॉ० फ्रेना ने कुछ भी करने से इन्कार कर दिया, यहाँ तक कि उन्होंने अपनी डाक्टरी परीक्षा कराने से भी इन्कार किया।

इन्हीं दिनों एक समाचार छपा कि कनाट प्लेस में दो सिपाहियों ने किसी विजय कुमार के भोलेपन का लाभ उठाकर या यातायात नियमों के उल्लंघन में उसको चालान करने की धमकी देकर उससे रुपये ऐंठ लिये। इसी प्रकार उन्हीं दिनों एक साइकिल सवार मजदूर को भी डरा-धमकाकर ढाई रुपये ऐंठ लिये। २४ जुलाई को एक समाचार प्रकाशित हुआ कि भोगल के एक दुकानदार को इसलिए पीटा गया कि वह किसी छानबीन में थाने पर चलने के लिए तैयार नहीं हो रहा था।

प्रतीत होता है कि पुलिस का यह सिलसिला तो बन्द होने वाला नहीं है, हम समझते हैं कि भविष्य में हमारा इस विषय पर कुछ लिखना केवल पत्रिका के पृष्ठ काले करना ही होगा। अतः यहीं पर विराम करना उचित है।

भारतीय जीवन में चलचित्र

यूनाइटिड न्यूज़ ऑफ इण्डिया के अनुसार हाल में 'संयुक्त राष्ट्र सांख्यिकी वार्षिकी' में प्रकाशित विवरण से ज्ञात हुआ है कि सिनेमा देखने में भारत का संसार में तीसरा स्थान है। प्रथम दो स्थान प्राप्त हैं भारतीयों के राजनीतिक गुरु रूस और चीन को।

सिनेमा देखने में भले ही भारत का तीसरा स्थान हो किन्तु सिनेमा के हीरो हीरोइन और विलिन के हाव-भाव, चाल-ढाल, फैशन और चाल-चलन में भारत का प्रथम स्थान ही होगा। सांख्यिकी विभाग वालों ने इस विषय में यद्यपि गणना नहीं की तदपि भारत के नगर-नगर और डगर-डगर में घूमते-फिरते ये नकली हीरो, हीरोइन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

मतभेद नहीं दृष्टिभेद

पिछले मास उदयपुर में सम्पन्न जनसंघ के अधिवेशन में अनेक बातें उजागर हुई हैं। मतभेद किस दल में नहीं होते? होते हैं और निबटते हैं। किन्तु जहाँ दृष्टिभेद हो वहाँ का क्या हाल होगा, इसे जनसंघ के अध्यक्ष श्री बाजपेयी ही बता सकते हैं। मधोक प्रकरण को लेकर वाजपेयीजी का कहना है कि 'मेरे उनसे कोई मतभेद नहीं हैं, किन्तु दल के साथ उनका दृष्टिभेद अवश्य है। मधोक साहब जो कुछ चाहते हैं दल उससे सहमत नहीं है।' इस सिलसिले में उन्होंने यह भी कहा है कि यदि जनसंघ को दक्षिण अथवा वामपन्थी बनाना ही हो तो इसे 'मध्यमार्गी' दल ही कहना चाहिए। और यह भी कि 'स्थापना काल के समय दल के उद्देश्य चाहे कुछ भी क्यों न रहे हों, पिछले बीस वर्ष में हमने बहुत ऊँच-नीच देखा है और अब हम परिपक्व हो गये हैं।'

हम इस बात को तो समझ सकते हैं कि समयानुसार दल की कार्यविधि में परिवर्तन लाया जाता है, उचित भी है। अन्यथा कार्य कर पाना सम्भव नहीं होता। किन्तु यह कहना कि 'स्थापनाकाल में दल के उद्देश्य चाहे कुछ भी रहे हों' दल की राजनीति अपरिपक्वता का परिचायक है। दल के संस्थापक यदि ऐसे उद्देश्य निश्चित करते हों कि जो बीस वर्ष बाद बदल जाएँ तो उनको हम समझदार संस्थापक नहीं कह सकते। और न ही हम उसे समझदार राजनीतिज्ञ कह सकते हैं कि जो दल के प्रारम्भिक उद्देश्यों को कालातीत की बात मानकर उनमें परिवर्तन की चाह करता हो।

अब यह निर्णय करना जनसंघ का काम है कि दल की स्थापना के समय उद्देश्य-निर्धारण में अदूरदर्शिता का परिचय दिया गया था अथवा आज उन

उद्देश्यों को कालातीत की बात मान कर अदूरदर्शिता का परिचय दिया जा रहा है ?

उनकी एक अदा ठहरी और…

अभी हाल ही में इंगलैंड के भूतपूर्व मजदूर प्रधान मन्त्री श्री विल्सन की आत्म-कथा 'आवर डेज़ इन पावर' नाम से प्रकाशित हुई है। आत्म-कथा में जो कुछ होता है वह सब कुछ तो उसमें है ही और क्योंकि विल्सन मजदूर नेता हैं, प्रधान मन्त्री रह चुके हैं, भविष्य में फिर भी प्रधान मन्त्री बन सकते हैं, इसलिए उसमें राजनीति की ही बातें अधिक हैं। 'यथा नाम' सब कुछ है। उसमें उनका कहना है कि "कच्छ समझौते के बावजूद अगस्त, १९६५ के आरम्भ में भारत और पाकिस्तान के मध्य मुठभेड़ हुई। लड़ाई की सम्भावना देख मैंने शास्त्री और अयूब को निजी सन्देश भेजे। किन्तु फिर भी ६ सितम्बर को पाकिस्तान की ओर से युद्ध आरम्भ हो ही गया। कौमनवैल्थ मन्त्रालय के अधिकारियों ने मुझे यह कहकर कि अकाट्य प्रमाण विद्यमान हैं मुझसे भारत को आक्रामक ठहराने वाला वक्तव्य दिलवा दिया। वास्तव में तथ्य बहुत ही विवादास्पद थे। कई मास तक भारत और ब्रिटेन के सम्बन्ध कटु रहे।

"जब कौमनवैल्थ मन्त्री आर्थर वाटमली अगले दिन छुट्टी से वापस आये तो उन्होंने कहा कि यदि मैं कल लंदन में होता तो प्रधान मन्त्री निवास १० डाउनिंग स्ट्रीट से कोई वक्तव्य प्रसारित न होता। विल्सन का कहना है कि कौमनवैल्थ मन्त्रालय में पाकिस्तान समर्थक गुट ने उन्हें गुमराह कर दिया था।"

यह है अंग्रेजों के कूटनीतिक चरित्र का एक प्रमाण।

गरीबी में पनपता समाजवाद

१५ अगस्त के दिन लाल किले पर झंडा फहराने की रस्म होती है। जिस स्थान पर झंडा लहराया जाता है वहाँ तक पहुँचने के लिए दसेक सीढ़ियाँ भी चढ़नी पड़ती हैं। आयु में वृद्ध और दिल का मरीज नेहरू उन सीढ़ियों को खटाखट चढ़ता रहा किन्तु उसकी लाडली के युग में वहाँ लिफ्ट लगा दी गई है। स्मरणीय है कि वर्ष में केवल एक बार केवल १०-२० मिनट के लिए ही यह मेला जुड़ता है और केवल एक बार ही प्रधान मन्त्री का उस लिफ्ट से आवागमन होता है। इसके लिए लाखों रुपया बरबाद कर उस लिफ्ट से देश समाजवाद की कितनी सीढ़ियाँ आसानी से चढ़ गया है ? हम देवी इन्दिरा से यह प्रश्न करते हैं।

देवी इन्दिरा से हमारा दूसरा प्रश्न है 'जवाहर ज्योति' के विषय में। समाजवादियों की दृष्टि में पूजा, अर्चना, यज्ञ, हवन, धूप-बत्ती सब राष्ट्रीय अपव्यय है, ढकोसला है। तब क्या कारण है कि नेहरू के देहावसन के तुरन्त बाद से आज तक और अनन्तकाल के लिए 'जवाहर ज्योति' के नाम पर २६,३८१ हजार रुपये वार्षिक व्यय किया जा रहा है। साढ़े उन्तीस हजार रुपया कोई साधारण राशि नहीं। अर्थात् इतनी राशि से अनेक जनों की रोजी-रोटी की व्यवस्था की जा सकती है। जब यह आवाज़ संसद में उठी तो समाजवादियों को कुछ लज्जा अनुभव हुई। उन्होंने इस राष्ट्रीय अपव्यय के लिए कोई प्रायश्चित तो नहीं किया हाँ, अब इतना कर दिया गया है कि ज्योति अब तेल से नहीं गैस से प्रज्ज्वलित रहेगी। सुनते हैं इसमें १५१५ रुपया वार्षिक व्यय का अनुमान है। हमारा प्रश्न है कि इतना भी क्यों? समाजवाद में इसका कोई विधान नहीं अपितु इसका विरोध किया जाता है। क्या समाजवाद के नाम पर यह देश को धोखा देना नहीं?

परिषद् के प्रकाशन

४. धर्म संस्कृति तथा राज्य
लें० श्री गुरुदत्त

तीनों की विवेचना, तीनों का परस्पर सम्बन्ध, यह इस पुस्तक का विषय है। अत्यन्त ही सरल भाषा में यह पुस्तक लिखी गयी है, परन्तु विषय अत्यन्त ही गम्भीर है।

मूल्य रु० ८.००

५. धर्म तथा समाजवाद

समाजवाद क्या है तथा धर्मवाद क्या है ? दोनों की विस्तृत विवेचना तथा समाजवाद का युक्तियुक्त खण्डन इस पुस्तक का विषय है। लेखक का मत है कि दोनों विपरीत दिशा में ले जाने वाले तन्त्र हैं।

लेखक हैं श्री गुरुदत्त — मूल्य रु० ६.००

कुछ अन्य प्रकाशन

६. भारत में राष्ट्र — ले० श्री गुरुदत्त — मू० सजिल्द रु० २.५०
पाकेट संस्करण रु० १.००

७. समाजवाद : एक विवेचन — " — मूल्य (केवल पाकेट सं०) १.००

८. गान्धी और स्वराज्य — " — मूल्य (केवल पाकेट सं०) १.००

९. भारतीयकरण एक अध्ययन — सं० अशोक कौशिक — मूल्य ८.००

१०. प्रजातन्त्र अथवा वर्ण व्यवस्था — ले० श्री गुरुदत्त
मूल्य सजिल्द रु० ४.००
(पाकेट में) २.००

११. हिन्दू का स्वरूप — श्री गुरुदत्त — ०.५०

वितरक

भारती साहित्य सदन सेल्स

३०।९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे) नई दिल्ली-१

उपर्युक्त सभी पुस्तकों का लाभांश तथा उनकी रायल्टी परषद् के उद्देश्यों के प्रचार तथा प्रसार पर व्यय की जाती है।

पाकेट संस्करण सम्पूर्ण हैं संक्षिप्त नहीं हैं। आर्डर देते समय कृपया स्पष्ट लिखें किस संस्करण की पुस्तकें भेजी जायें।

कुछ अत्यन्त रोचक व प्रेरणाप्रद पुस्तकें

जो प्रत्येक को पढ़नी चाहियें

श्री सावरकर साहित्य

पुस्तक	मूल्य
आजन्म कारावास (सम्पूर्ण)	१५.००
1857 War of Independence	35.00
प्रतिशोध (नाटक)	४.००
मोपला-गोमान्तक	३.००
अमर सेनानी सावरकर	२.५०
हिन्दुत्व	२.००
हिन्दुत्व के पंच प्राण	२.००

श्री बलराज मधोक साहित्य

पुस्तक	मूल्य
जीत या हार	३.००
हिन्दू राष्ट्र	२.००
श्यामाप्रसाद मुखर्जी : जीवनी	४.००
भारत की सुरक्षा	४.००
भारत और संसार	६.००
भारत की विदेश नीति	४.००
भारतीय जनसंघ एक राष्ट्रीय मंच	१.५०
Indian Nationalism	1.50
What Jana Sangh Stands For	1.50
Nationalism Democracy and Social Change	1.50
Kashmir Centre of New Alignments	15.00
India's Foreign Policy And National Affairs	3.00

डा० रामलाल वर्मा

पुस्तक	मूल्य
दिल्ली से कालीकट	५.००

श्री तनसुखराम गुप्त

पुस्तक	मूल्य
हिन्दुत्व का अनुशीलन	४.००

श्री गुरुदत्त साहित्य

पुस्तक	मूल्य
अन्तिम यात्रा	१.००
समाजवाद : एक विवेचन	१.००
गांधी और स्वराज्य	१.००
भारत में राष्ट्र	१.००
वन्दे मातरम् (नाटक)	२.००
भारत गांधी नेहरू की छाया में	४.००
देश की हत्या (उपन्यास)	४.००
भग्नाश ,,	३.००
छलना ,,	४.००
धर्म, संस्कृति और राज्य	८ ००
जमाना बदल गया (नौ भाग)	२०.००
महर्षि दयानन्द	२.००
श्रीमद्भगवद्गीता:एक अध्ययन	१५.००
India in the Shadow of Gandhi and Nehru	20.00

श्री पी० एन० ओक

पुस्तक	मूल्य
ताजमहल	३.००
भार० इतिहास की भयंकर भूलें	४.००
कौन कहता है अकबर महान् था	१०.००
भारत के मुस्लिम सुल्तान	१०.००
Some Blunders of Indian Historical Research	15.00

HANSRAJ BHATIA

पुस्तक	मूल्य
Fatehpur Sikri is a Hindu City	10.00
फतेहपुर सीकरी हिन्दू नगर	६.००

श्री गुरुदत्त का सम्पूर्ण साहित्य हमारे सदन से उपलब्ध है। १० रुपये की पुस्तकों पर डाक व्यय फ्री; २० रुपये की पुस्तकों पर १० प्रतिशत छूट।

भारती साहित्य सदन सेल्स

३०/९०, कनाट सरकस, (मद्रास होटल के नीचे), नई दिल्ली-१

संरक्षक सदस्य

१. केवल एक सौ रुपये भेजकर शाश्वत संस्कृति परिषद् के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बन कर रहेगा।

शाश्वत संस्कृति परिषद् का उद्देश्य

विशुद्ध भारतीय तत्त्व दर्शन पर सम्यक् गवेषणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उनके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख सभी समस्याओं का सुलझाव प्रस्तुत करना।

संरक्षक सदस्यों की सुविधाएं

१. परिषद् के नवीनतम प्रकाशन तथा आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। नवीन प्रकाशन हैं—इतिहास में भारतीय परम्पराएँ (मूल्य १० रुपये), हिन्दू का स्वरूप (मूल्य ०.५०) आगामी प्रकाशन हैं—ब्रह्मसूत्र हिन्दी विवेचना (मूल्य ३० रु०) १५ सितम्बर तक।
२. परिषद् की पत्रिका शाश्वत वाणी आप जब तक सदस्य रहेंगे प्राप्त कर सकेंगे।
३. परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ (सूची इसी अंक में अन्यत्र देखें) आप २५ प्र० श० छूट के साथ प्राप्त कर सकेंगे।
४. जब भी आप चाहेंगे एक मास पूर्व सूचना देकर अपनी धरोहर वापस ले सकेंगे। धन मनीआर्डर द्वारा भेज सकते हैं। किन्तु छः मास के भीतर ही धरोहर वापस माँगने वाले महानुभावों को वार्षिक शुल्क के पाँच रुपये तथा निर्मूल्य दिये गए प्रकाशनों का मूल्य काटकर ही राशि वापस की जा सकेगी।

शाश्वत संस्कृति परिषद्

३०/९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे)-नई दिल्ली-१

शाश्वत संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं विकास आर्ट प्रिंटर्स शाहदरा-दिल्ली-३२ में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

वर्ष ११—अंक ६ सितम्बर, १६७१ रजि क्र० ६६८६/६०

विक्रमी संवत् २०२८ ईसवी सन् ६७१ सृष्टि संवत् १,६६,०८,५३,०७०

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

हिन्दू का स्वरूप

व्याख्याकार श्री गुरुदत्त

आज हमारे देश में हिन्दू समुदाय पूर्ण जनसंख्या का अस्सी प्रतिशत के लगभग होने पर भी अपने को हिन्दू कहने में लज्जा एवं संकोच अनुभव करने लगा है। इस संकोच अथवा लज्जा का कारण यह है कि हिन्दू अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर स्वयं को कुछ वैसा ही समझने लगा है जैसा कि अहिन्दू उसका वर्णन करते हैं। यह पुस्तिका हिन्दू का स्वरूप समझने का एक प्रयास है।

हिन्दू समाज—समाज की तात्त्विक मान्यताएँ—हिन्दू समाज के तात्त्विक आधार—हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू समाज तथा धर्म आदि विषयों पर प्रकाश डालने वाली यह पुस्तिका ज्ञानवर्धक है।

परिषद् के प्रकाशन

इतिहास में भारतीय परम्पराएँ	श्री गुरुदत्त	१०.००
श्रीमद्भगवद्गीता : एक अध्ययन (समाप्त)	,,	१५.००
धर्म, संस्कृति तथा राज्य	,,	८.००
धर्म तथा समाजवाद (समाप्त)	,,	८.००
भारत गांधी नेहरू की छाया में	,,	१०.००
भारत गांधी नेहरू की छाया में (पॉकेट संस्करण)	,,	४.००
India In the Shadow of Gandhi & Nehru	,,	२०.००
भारत में राष्ट्र (सजिल्द)	,,	४.००
भारत में राष्ट्र (पॉकेट संस्करण)	,,	२.००
समाजवाद : एक विवेचन (पॉकेट)	,,	१.००
गांधी और स्वराज्य (पॉकेट)	,,	१.००
भारतीयकरण	सं० श्री अशोक कौशिक	८.००

शाश्वत संस्कृति परिषद्

३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक
श्री गुरुदत्त

सम्पादक
अशोक कौशिक

व्यवस्थापकीय-कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,
नई दिल्ली-१

वर्ष ११ अंक ९

सम्पादकीय कार्यालय
७ एफ, कमला नगर,
दिल्ली-७

सम्पादकीय

स्वाधीनता के विगत चौबीस वर्ष

१५ अगस्त के दिन हमने अपनी स्वाधीनता की चौबीसवीं वर्षगांठ मनाई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अंग्रेज़ों की दासता से मुक्त हुए हमें २४ वर्ष हो गये हैं। किन्तु क्या अंग्रेज़ियत की दासता से भी हम मुक्त हो गये हैं? यदि इस ओर हम ध्यान दें तो देखेंगे कि दिनानुदिन हम दासता की शृंखला में निबद्ध होते जा रहे हैं। भारतवासी स्वाधीन भले ही हों किन्तु भारत न स्वतन्त्र है न उसमें स्वराज्य है। जब स्वराज्य नहीं तो फिर सुराज्य कहाँ से होगा?

आदिकाल से जो देश स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष एवं युद्धरत रहा हो, 'क्लैव्यं मास्म गमः, जिसके लिये आदर्श वाक्य रहा हो, उसी देश के वासी विगत एक सहस्राब्द से निरन्तर क्लीवता का प्रदर्शन करेंगे, इसकी किसी को कल्पना भले ही न हो, किन्तु है यह तथ्य ही। मुगलों की दासता से आरम्भ कर आज तक भले ही भारत में शासनतन्त्र बदलते रहे हों और भले ही उसको स्वतन्त्रता एवं अर्द्धस्वतन्त्रता का नाम दिया हो, किन्तु भारत में न स्वराज्य की आज तक स्थापना हो सकी है और न दासता से मुक्ति।

मुगलों की दासता तो हमारे जनजीवन में इतना स्थान पा चुकी है कि भले ही हम अपने रीति-रिवाजों को एक बार रूढ़िवादी कह दें किन्तु उनसे जो हमने ग्रहण किया है वह सभ्यता की सीमा में समाहित है। यह ग्राह्यता यहाँ के मूल निवासियों की विशेषता है अन्यथा आक्रामक वंश के वंशधरों ने अभी तक भी इस देश की मुख्यधारा से किसी प्रकार का अपनत्व नहीं जोड़ा है। उनके आदि पुरुष अभी भी मक्कामदीनावासी ही हैं, उनके तीर्थस्थल भी वहीं हैं, उनकी दृष्टि अभी भी उधर की ओर ही निबद्ध होकर अर्चना के लिये अग्रसर होती है। न केवल इतना, इस भूमि में निरन्तर एक सहस्राब्द के निवास के अनन्तर भी उनके आततायीपन में किसी प्रकार की न्यूनता का आभास नहीं दिखाई देता। आज भी वे उसी प्रकार हमारे श्रद्धा-स्थलों को भ्रष्ट करने में गौरव का अनुभव करते हैं, हमारी ललनाओं के शीलहरण को अपना पुनीत कर्तव्य एवं अधिकार मानते हैं। कतिपय व्यक्ति इसके अपवाद भी हो सकते हैं और हैं भी, किन्तु अपवाद को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करना बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती।

मुगलों के बाद हम दास बने अंग्रेजों के। अंग्रेजों का शासन करने का ढंग कुछ परिष्कृत था। उन्होंने हमारे पूजास्थलों को भ्रष्ट नहीं किया, हमारे मान-विन्दुओं पर मानवीय आघात नहीं किया, हमारी ललनाओं का शीलहरण भी उन्होंने प्रत्यक्षतया नहीं किया। किन्तु किया उन्होंने भी वही सब कुछ जो उनके पूर्ववर्ती मुगल दुःशासकों ने किया था। अंग्रेजों के शासन करने की परिष्कृत पद्धति में इतनी विकृति थी कि उस विकार को ही हमने परिष्कार मानकर उसे आत्मसात् कर लिया। उन्होंने तेग और तलवार की धार से यहाँ के मूल निवासियों का धर्म परिवर्तन नहीं किया। न ही उन्होंने धर्म ग्रन्थों को जलाकर अथवा मन्दिर मठों को भ्रष्ट कर यह कुकृत्य सम्पन्न किया। अपितु धर्मग्रन्थों की दुरालोचना करके, शिक्षा के नाम पर कुशिक्षा का प्रचार करके अपने उद्देश्य की सिद्धि की।

स्वाधीनता के बाद, होना तो यह चाहिये था कि मुगलों एवं अंग्रेज़ों की दासता के यदि कोई चिह्न भी यहाँ अवशिष्ट रह गये थे तो उन्हें निश्शेष कर दिया जाता और यहाँ की मुख्य धारा, उसकी जीवन-पद्धति, उसके मानदण्ड, उसके शास्त्रों की प्रतिष्ठा की ज़ाती। क्योंकि अंग्रेज़ तो चले ही गये थे और जो मक्कामदीना को केन्द्र विन्दु अथवा मानविन्दु मानते थे, उन्होंने अपने लिये पृथक् देश की माँग कर भारत माँ के टुकड़े कराकर उसे प्राप्त कर लिया था। स्वाभाविक था कि जो भारत में रहे गये थे, वे भारतवासी थे और यहाँ की

जीवनपद्धति ही उनके जीवन का अनिवार्य अंग थी ।

किन्तु वर्तमान शासनाधिकारियों को यह स्वीकार नहीं था । वर्तमान शासनाधिकारियों से हमारा अभिप्राय काँग्रेस शासन से है । क्योंकि स्वतन्त्रता के बाद से प्रारम्भ कर अद्यपर्यन्त वही भारत पर शासन कर रही है । काँग्रेस जानती है कि उसके वर्तमान अथवा तत्कालीन नेताओं ने स्वतन्त्रता के लिये न कोई बलिदान किया और न त्याग ही । अतः स्वाभाविक था कि जब यह पोल खुलती तो उनका शासन डोलता । उसका पहले से ही प्रबन्ध कर अल्पसंख्यकों की एक नई श्रेणी अथवा वर्ग बनाकर काँग्रेस ने अपना शासन तो सुरक्षित कर लिया किन्तु भारत पर सदा के लिये आततायियों को प्रतिष्ठित करने का घृणास्पद कुकृत्य भी सम्पन्न कर लिया । अन्यथा वर्तमान प्रधान मन्त्री को निर्लज्जतापूर्वक यह कहने का दुस्साहस नहीं होता कि देश के लिये त्याग एवं बलिदान के नाम पर वह भी तीन वर्ष की अल्पवयस में ही अपने दादा के कंधों पर चढ़कर, उन पर चलाये जा रहे अभियोग को सुनने के लिये न्यायालय में गई थी ।

आरे से जिनके शीश कटे, लोहे की गरम शलाकाओं से जिनकी आँखें निकाली गईं, माँस के लोथड़े किये गए, फाँसी के फंदों पर जिनको फंसाया गया वे सब तो भावुक, मूर्ख और विघटनकारी कहलाये और बकरी के दूध के माध्यम से बादाम और अंगूर तथा सेवों का रस पीने वाले तथा दादा के कंधों पर चढ़कर न्यायालय में खेलने के लिये जाने वाले त्यागी, बलिदानी, हुतात्मा और शहीदों की पंक्ति में प्रतिष्ठित हो गये । सर्वाधिक दुःख और खेद की बात तो यह है कि प्रधानमन्त्री के उस मूर्खतापूर्ण निर्लज्ज कथन पर मुग्ध होने वाले महामूर्खों की इस देश में कभी नहीं । तब दादा ने उसे कंधों पर चढ़ाया था और अब ये वज्र-मूर्ख काँग्रेसी उसको कंधों पर चढ़ाकर देश को डुबोने में तल्लीन हैं ।

२४ वर्षों की इस सुदीर्घ अवधि में भी इस देश का न संविधान ही बन पाया है, न राष्ट्रभाषा को ही उसके उचित पद पर प्रतिष्ठित किया जा सका है। यहाँ तक कि राष्ट्रध्वज भी आज अपमाननित एवं लांछित है । २४ वर्ष की अवधि में संविधान में २६ संशोधन होने जा रहे हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि जब तक संसद के कुल ५५० सदस्य प्रत्येक अपनी इच्छानुसार कम से कम एक-एक संशोधन स्वीकार नहीं करा लेगा तब तक संशोधन की यह शृंखला बन्द नहीं होगी । इसी प्रकार प्रत्येक प्रदेश प्रयत्नशील है कि उसकी प्रादेशिक भाषा राष्ट्र-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो और उसके मनभावने रंग वाला ध्वज ही राष्ट्र-ध्वज के रूप में लहराये ।

२४ वर्षों के अबाध शासन में काँग्रेस राष्ट्र को न एक संविधान दे सकी, न

एक निशान दे सकी और न एक राष्ट्रभाषा ही। जहाँ एक ओर हम देख रहे हैं कि कतिपय जन भारत को पुनः अखण्ड बनाने के स्वप्न देख रहे हैं वहाँ दूसरी ओर यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि देश को खण्ड-खण्ड करने में ही काँग्रेसजन अपना हित समझ रहे हैं। ऐसी स्थिति में कौन इस देश की डूबती नैया को पार लगावेगा! देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि जो इसको अखण्ड करने का सबसे प्रखर नारा लगा रहे हैं वे भी दादा के कंधों पर चढ़कर चलने वाली प्रधान मन्त्री को ही देश की 'स्वामिनी' मानकर, उसकी चरण-वन्दना करने में तल्लीन हैं।

देश की सीमाएँ सर्वथा असुरक्षित हैं। चीन का भय तो सदा बना ही रहता है। पाकिस्तान सदृश क्षुद्र देश से भारत का शासन एवं भारतवासी भी डरते हैं। सद्यः सम्पन्न सोवियत-भारत सन्धि इसका स्पष्ट प्रमाण है। संधि का स्वागत भारतवासी ने इसलिये किया कि इसके डर से पाकिस्तान भारत पर आक्रमण नहीं कर सकेगा। देशवासियों का मनोबल, साहस, नैतिकता एवं राष्ट्रीय-चरित्र का इतना ह्रास हो गया है कि वे पाकिस्तान सदृश क्षुद्र राष्ट्र से भी भय खाने लगे हैं। देश में अनैतिकता, अनाचार, अत्याचार निरन्तर बढ़ता जा रहा है। चीनी पंचमांगी, पाकिस्तानी पंचमांगी, रूसी पंचमांगी, अमरीकी पंचमांगी देश-भर में छाये हुए हैं। सर्वत्र पंचमांगियों का जाल बिछा हुआ है।

यदि इन चौबीस वर्षों का लेखा-जोखा एकत्रित किया जाय तो हम पायेंगे कि इस अवधि में देश की सीमा संकुचित हुई है। स्वाधीन राष्ट्र अपनी सीमाओं का विस्तार किया करते हैं किन्तु भारत ही एक ऐसा अपवाद है जो सीमा का संकोचन करने में लज्जा का नहीं, गौरव का अनुभव करता है। इस अवधि में शत्रु द्वारा विजित क्षेत्र को हमने वापस तो किया है किन्तु शत्रु द्वारा अधिकृत अपने प्रदेश को हम उससे साम, दाम, दण्ड तथा भेद किसी नीति से भी वापस नहीं ले पाये हैं। यहाँ तक कि ताशकन्द सन्धि द्वारा तो हमने देश का क्षेत्र भी खोया और शासक भी। इसके बावजूद हम उस सन्धि की निरन्तर माला जपते रहते हैं। जैसा कि हमने ऊपर लिखा है इस अवधि में हमने राष्ट्रीय-चरित्र, नैतिकता, मनोबल, देश का भू-भाग और देशरक्षक सैनिकों के प्राण खोये हैं और उसके विनिमय में पाया है अनाचार, अत्याचार, दुराचार, पराजय और पापाचार। अर्थात् जिसे खोना चाहिए था वह हमारी उपलब्धि है और जो प्राप्त करना चाहिए था उसको हमने खोया है। संसार के किसी भी देश में ऐसा अनोखा उदाहरण देखने को नहीं मिलेगा। आज हमारा मित्र कोई नहीं किन्तु शत्रुओं की कमी नहीं।

[शेष पृष्ठ ३७३ पर]

निक्सन की चीन यात्रा : रूस-भारत संधि

□

श्री आदित्य

संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन चीन के सर्वेसर्वा माओ-त्से-तुंग तथा प्रीमियर चाऊ-एन-लाई से मिलने पीकिंग जा रहे हैं। यह भेंट सन् १९७२ के मई महीने के पूर्व ही सम्पन्न होने की आशा की जा रही है।

इस भेंट से बहुत बड़ी आशायें और सम्भावनाओं के घटने के लक्षण देखे जा रहे हैं। इस भेंट की घोषणा करते हुए निक्सन स्वयं बहुत प्रसन्न प्रतीत होते थे।

हैनरी कैसिंगर, जिसने इस होने वाली भेंट का प्रबन्ध किया है, भारत और पाकिस्तान के सम्बन्धों के विषय में जानकारी प्राप्त करने आया हुआ था कि एक दिन रावलपिण्डी से लापता हो गया। प्रकट यह किया गया कि कैसिंगर तीन दिन के लिये मरी के समीप नथिया गली के एक होटल में स्वास्थ्य-लाभ कर रहा है। उससे मिलने के लिए आने वालों को रोक दिया गया। परन्तु वास्तव में वह पीकिंग में वार्त्तालाप करने गया हुआ था।

सोलह घण्टे के वार्त्तालाप का यह परिणाम निकला कि निक्सन और चाऊ-एन-लाई मिल रहे हैं। कैसिंगर और चीनी अधिकारियों की एक भेंट को छुपा कर रखा गया। भूमण्डल तथा अमेरिका के समाचार-पत्रों ने हैनरी कैसिंगर की इस यात्रा को किसी प्रकार का महत्त्व नहीं दिया था।

ऐसा प्रतीत होता है कि पाकिस्तान के अधिनायक याहिया खाँ ही केवल इस यात्रा के उद्देश्य को जानते थे। इस रहस्यमय यात्रा में पाकिस्तान के डिक्टेटर ने एक अति आवश्यक भूमिका निभायी है।

कहा जाता है कि हैनरी कैसिंगर बहुत से कागज़ात और दस्तावेज़ लेकर पीकिंग गया। सोलह घण्टे के वार्त्तालाप में केवल दो देशों के नेताओं का मिल कर चाय-पानी लेने की बात तो नहीं होती रही होगी। यह निश्चित है कि अति गंभीर विषयों पर बातचीत हुई है और इस बातचीत ने भूमण्डल के भविष्य

के रंग पर प्रभाव डाला है।

यह भविष्य किस रूप में उभरेगा, कहना कठिन है। इस पर भी यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अमेरिका ने वर्तमान शताब्दी की सब कलाबाज़ियों से अधिक दर्शनीय और चकाचौंध कर देने वाली कलाबाज़ी लगायी है।

एक बार सन् १९१९ में भी संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति विलसन को अमेरिका ने पराजित कर कलाबाज़ी लगायी थी। प्रथम जर्मन युद्ध जीतने के उपरान्त अमेरिका ने वारसेल्स की संधि पर पृथक् रहने का निर्णय दिया। यह इसलिये नहीं कि अमेरिका दुर्बल हो गया था अथवा इसे युद्ध में भाग लेने का पश्चात्ताप लग रहा था। ऐसी कोई बात नहीं थी। प्रेज़ीडेण्ट विलसन चाहते थे कि अमेरिका यूरोप की संधि में सक्रिय भाग ले और उस संधि की ईमानदारी से पालन कराने में सहयोग दे। परन्तु अमेरिका ने विलसन को राष्ट्रपति के चुनाव में पराजित कर विलसन की नीति को अस्वीकार कर दिया।

परिणाम यह हुआ कि वारसेल्स की संधि अस्वाभाविक, अयुक्तिसंगत और भविष्य में एक नये महायुद्ध की नींव डालने वाली सिद्ध हुई। साथ ही वह संधि इंगलैण्ड तथा फ्रांस ने कर तो ली, परन्तु उसके पालन कराने की सामर्थ्य उनमें नहीं थी।

प्रजातन्त्रवाद का यही सबसे बड़ा दोष है कि सामान्य जनता, जिसे नित्य के भोजन की चिन्ता लगी रहती है, उन विषयों पर सम्मति देने की सामर्थ्य रखते हैं जिसका प्रभाव दस-बीस वर्ष ही नहीं, वरंच कभी-कभी तो शताब्दियों को भी पार करने वाला होता है।

जातियों के उत्थान और पतन में सामयिक आवश्यकताओं का दबाव बुद्धि को कुण्ठित, दृष्टि को सीमित और हृदय को कठोर बना देता है। यदि किसी बालक की शिक्षा-दीक्षा पर माता-पिता की दैनिक स्थिति को पथ-प्रदर्शन में हस्तक्षेप करने दिया जाये तो बालक का भविष्य अंधकारमय बना रहेगा। जन-साधारण के विचार उनके रोटी-कपड़े से प्रभावित रहते हैं। यदि इनको जातियों के भविष्य को दिशा देने की स्वीकृति दी जाये तो संसार की प्रगति विगति में बदल जायेगी। जब से भूमण्डल पर प्रजातन्त्रवाद का कुचक्र चला है, तब से मानव समाज में ह्रास ही उत्पन्न हुआ है। मानव समाज के लिए खाना-पीना, सोना, भय और मैथुन के अतिरिक्त भी बहुत कुछ है। ये प्राणी के कर्म अवश्य हैं, परन्तु मनुष्य अन्य प्राणियों से कुछ अधिक है और उसमें ही प्रजातन्त्र ने ह्रास उत्पन्न किया है।

अमेरिका ने वारसेल्स संधि से तटस्थ रहकर संधि को बिगाड़ा था। यह

कहना कुछ दूर जाना होगा, परन्तु जो लोग किसी हो रही घटना से पृथक् रह कर यह समझते हैं कि वे उस घटना के उस शुभ अथवा अशुभ होने में उत्तरदायी नहीं हैं, यह भी ग़लत है।

गीता में यह कहते हैं कि अकर्म भी कर्म ही होता है और जो इसको ऐसा मानता है, वही विद्वान् है। अमेरिका के सम्मिलित होने पर भी वारसेल्स संधि ख़राब हो सकती थी, परन्तु अमेरिका का तटस्थ रहना उसे संधि के ख़राब होने के उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं कर सकता।

अमेरिका ने इस शताब्दी में और भी भूलें की हैं। याल्टा कान्फ्रेंस में उसका यह मान जाना कि चीन रूस के प्रभाव क्षेत्र में रहेगा, एक दूसरी महान भूल थी। उस समय यह समझा जाता था कि चीन को रूस के प्रभाव क्षेत्र में देने से मित्र राष्ट्रों ने महान् नीतिज्ञता का प्रदर्शन किया है, परन्तु उसके परिणाम स्वरूप जो कुछ हुआ, वह अब सबके सम्मुख है। चीन विश्व की एक गंभीरतम समस्या बन गया है।

बर्लिन रूस को देना एक अन्य महान् भूल थी, परन्तु यह माना जाता था कि अमेरिका शीघ्रातिशीघ्र युद्ध की स्थिति में से बाहर होना चाहता था।

दक्षिण पूर्व एशिया को छोटे-छोटे देशों में विभक्त करना भी एक महान् भूल थी। तब ऐसा कहा जाता है कि अमेरिका युद्ध से थक गया था। फ्रांस को तो जापानियों ने निकाल बाहर कर दिया था। इस कारण चीन के कम्युनिस्टों की बात माननी पड़ी।

वहाँ ने कम्युनिष्ट नेता थके नहीं थे और अमेरिका के नेता थक चुके थे। यह कारण था उस सब भगदड़ का जो एशिया और यूरोप के मित्र राष्ट्रों में मची थी। रूस भी एक भयंकर युद्ध से निकला था, परन्तु शक्तिशाली था और अमेरिका, इंगलैण्ड, फ्रांस इत्यादि दुर्बल पड़ गये थे।

हम समझते हैं कि मित्र राष्ट्र उतने ही बलशाली राष्ट्र थे जितने कि पराजित राष्ट्र तथा मित्र राष्ट्रों में कम्युनिस्ट राष्ट्र। वास्तविक बात यह थी कि प्रजातन्त्रात्मक देशों की बागडोर मूढ़ जनता के हाथों में थी। मूढ़ जनता ने मूढ़ नेता बना रखे थे और ये मूढ़ नेता अपनी नाक से दूर तक देख नहीं सकते थे।

निक्सन और चाऊ-एन-लाई की संभावित भेंट का निश्चय भी महान् प्रजातन्त्रात्मक देश के राष्ट्रपति की मूढ़ता का ही यह परिणाम है। अमेरिका की स्थिति भूमण्डल के राष्ट्रों में नम्बर तीन पर होने वाली है। ताईवान भूमण्डल के मानचित्र से विलुप्त होमे वाला है। भारत को अब अमेरिका, चीन और

पाकिस्तान की सम्मिलित शक्ति का सामना करना पड़ेगा। जापान अपार धन सम्पदा की उपलब्धि के उपरांत उसके छिन जाने की चिन्ता में पड़ गया है। रूस भी पाँव तले से मिट्टी खिसकती अनुभव करने लगा है।

कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि भविष्य में रूस को भी चीन का एक छोटे दर्जे का भागीदार बनकर रहना होगा।

हम भारतवासियों की स्थिति यह है कि हम प्रजातन्त्र द्वारा निर्वाचित मूर्ख नेताओं के अधीन अपने को विश्व में अकेले, निस्सहाय और पंगु अनुभव करते हैं।

इस हिंसक पशुओं के संसार में भारत एक निरीह, पालतू जानवर की भाँति अपनी चीर-फाड़ किये जाने की प्रतीक्षा कर रहा है। हिंसक पशुओं के संसार में हिंसा करने की शक्ति ही एक आश्रय है। यह भारत उपलब्ध नहीं कर सका।

निक्सन की चीन-यात्रा के समाचार की भाँति रूस-भारत संधि भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। निक्सन तथा चाऊ-एन-लाई में किसी प्रकार का समझौता हो सकता है, अथवा नहीं। परन्तु रूस और भारत में तो बहुत दूर तक समझौता हो गया है।

इस हिंसक संसार में भारत तो पहले ही दुर्बल और निस्सहाय है। चीन, अमेरिका और पाकिस्तान का परस्पर तालमेल बढ़ता देख भारत अपने को बचाने के लिये सिंह की गुफ़ा में सिर छुपाने जा पहुँचा है। सिंह ने भी एक मस्कीन ख़रगोश को शरण में आया देख गुर्रा दिया है और उस ख़रगोश की ओर आँखें दिखाने वालों को भगा देने का यत्न किया है।

भारत और रूस की आने वाले बीस वर्षों के लिये यह संधि हो गई है कि दोनों एक दूसरे को मित्र मानेंगे। दोनों में से किसी पर भी आक्रमण होने पर अथवा आक्रमण की धमकी होने पर परस्पर मिल, सम्मति कर अपना व्यवहार निश्चय करेंगे। किसी एक के शत्रु को शस्त्रास्त्र से सहायता नहीं करेंगे और युद्ध काल में एक दूसरे की सहायता करेंगे। किसी दूसरे के साथ ऐसी संधि नहीं करेंगे जो इस संधि का विरोध करे···इत्यादि।

इस समझौते से किसको लाभ होगा, यह कहना कठिन है। कारण यह कि भूमण्डल का भविष्य डाँवाडोल है। भूमण्डल के सब राज्य निपट स्वार्थी बन रहे हैं और संधियों के पालन करने में स्वार्थपरता सबसे महान् बाधा है।

आज अमेरिका और चीन में समझौता होता देख रूस को यह अनुभव होने लगा था कि उसका पक्ष दुर्बल हो रहा है। इस कारण उसने यत्न किया था

कि पश्चिमी जर्मनी से साँठ-गाँठ लगाये। उसमें कुछ विशेष सफलता होती दिखाई नहीं देती। कारण यह कि बर्लिन झगड़े की हड्डी है। पश्चिमी जर्मनी, पूर्वी जर्मनी को बर्लिन दे नहीं सकता। यद्यपि बर्लिन पूर्वी जर्मनी में दो सौ मील भीतर आकर स्थित है, परन्तु पश्चिमी जर्मनी इसे पूर्वी जर्मनी को देना पसन्द नहीं करता और पूर्वी जर्मनी इसको इस कारण अपना समझता है; क्योंकि यह उसके राज्यान्तर्गत है।

यह झगड़ा भी अमेरिका का उत्पन्न किया हुआ है। द्वितीय जर्मन युद्ध समाप्त होने से पूर्व अंग्रेज़ और अमेरिकन सेनायें ऐसी स्थिति में थीं कि रूसियों से पहले ये पूर्ण जर्मनी और बर्लिन पर अधिकार जमा सकती थीं परन्तु याल्टा समझौते के अनुसार बर्लिन और प्रायः वह सब क्षेत्र जो बर्लिन के चारों ओर था, रूस का प्रभाव क्षेत्र मान लिया गया था।

मित्र राष्ट्रों में इस विषय पर मतभेद हो गया था। सन् १९४७ में पुनः समझौता हुआ था कि वह सब क्षेत्र जो रूसी सेना ने अधिकार में कर लिया है, वह पूर्वी जर्मनी बन जाये, परन्तु दक्षिण जर्मनी का क्षेत्र पूर्वी जर्मनी को दे दिया जाये और उसके प्रतिकार में आधा बर्लिन पश्चिमी जर्मनी को मिल जाये। दक्षिण जर्मनी पर अमरीकी सेनाओं का अधिकार था।

यह झगड़ा जिसका निर्माण भी अमेरिका की मूर्खता के कारण हुआ था, वह आज भी रूस के पश्चिमी जर्मनी में सुलह में बाधक हो रहा है।

इस प्रकार जर्मन और रूस में दोनों ओर से इच्छा होते हुए भी समझौता नहीं हो सका।

अब रूस को पूर्व की ओर से चीन का भय बढ़ रहा दिखाई दिया है। यदि चीन और अमेरिका में कुछ ऐसा समझौता हो जाये जैसे भारत और रूस की संधि में हुआ है तो रूस अत्यन्त दुर्बल हो जायेगा। यही कारण है कि पूर्व में रूस को एक बड़े देश की सहायता चाहिये थी।

रूस के भाग्य से अमेरिका आरम्भ से ही मूर्खतापूर्ण नीति अपनाता रहा है। यह द्वितीय युद्ध समाप्ति से पूर्व चीन और यूरोप को रूसी प्रभाव क्षेत्र मान चुका था। अमेरिका ने ताईवान को चीन का शासक बनाने का यत्न नहीं किया। अमेरिका ने चीन के विरुद्ध जापान को सबल बनाने का यत्न नहीं किया। कम्युनिस्ट चीन स्वयं भी तो अमेरिका की सृष्टि है।

अब अमेरिका ने भारत को नीचा दिखाने के लिये अथवा अपनी किसी अन्य मूर्खतापूर्ण नीति को चलाने के लिए पाकिस्तान को भरपूर शस्त्रास्त्र देने

[शेष पृष्ठ ३८५ पर]

माण्डूक्योपनिषद

श्री प्रभाकर

[गतांक से आगे]

उपनिषद् के आठ मन्त्रों की व्याख्या की जा चुकी है। अब नवां मन्त्र इस प्रकार है—

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्त्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद ।

अन्वय=जागरित, स्थानो, वैश्वानरः, अकारः, प्रथमा मात्रा आप्तेः, आदिमत्त्वाप्नोति ह वै, सर्वान्कामानादिः च, भवति, य एवं वेद ।

इसका अर्थ है—जागृत स्थान वाले (जगत् में) वैश्वानर (ओंकार अक्षर) में अकार की भाँति प्रथम मात्रा है। यह व्यापक, आदि में, सबको जानता है और जो इसे जानता है (इसका ज्ञान प्राप्त कर लेता है) वह सब कामनादि का फल प्राप्त कर लेता है।

इसका अभिप्राय यह है कि इस (कार्य-जगत्) जागरित अवस्था में सबसे पहले वैश्वानर अग्नि प्रकट होती है जैसे कि ओंकार अक्षर में से अकार की मात्रा है। यह वैश्वार पूर्ण जगत् में व्यापक है, सबको जानता है (सबसे इसका सम्पर्क है) जो व्यक्ति इस (वैश्वानर अग्नि) को जान जाता है उसकी सब कामनादि फल देती हैं।

ओं शब्द तीन मात्राओं से बना है। अ, ऊ, और म। यह परब्रह्म अर्थात् ब्रह्म चक्र का प्रतीक है। इसकी पहली मात्रा अकार प्रतीक वैश्वानर शक्ति की है। वैश्वानर शक्ति इस जगत् का आरम्भ (आदि) है सबमें व्यापक है, सबके सम्पर्क में है। जो इसे प्राप्त करता और इसको जान जाता है, उसकी सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। अभिप्राय यह है कि वैश्वानर अग्नि ही इस संसार में एक व्यापक शक्ति है जिससे जगत् के सब काम होते हैं। उसे ही जानना चाहिये।

यहाँ सृष्टि रचना का रहस्य बताया है। इस उपनिषद् के पूर्व के मन्त्रों में

तीन अवस्थाओं का वर्णन किया है। उसमें परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति का स्वरूप वर्णन किया है। जागरित अवस्था का वर्णन मंत्र संख्या (३) में किया है। इस अवस्था में प्रकट रूप में चेतना रहती है। इसके सात अंग हैं और उन्नीस मुख है। इन उन्नीस मुखों से स्थूल सृष्टि में परिवर्तन हो रहे हैं और ये परिवर्तन वैश्वानर अग्नि से हो रहे हैं।

यहाँ वर्णन किया है कि यह अग्नि पूर्ण जगत् में व्याप्त है। सबके सम्पर्क में है और संसार के सब कार्य करती है।

हमने मन्त्र संख्या तीन की व्याख्या में वेद मन्त्र उद्धृत किया है जिसमें बताया गया है कि यह अग्नि जगत् का प्रारूप है और पूर्ण जगत् की रचना इसी से होती है।

इसी वैश्वानर अग्नि के विषय में यह बताने के लिये कि यह जगत् की महान शक्ति जगत्-रचना में सब प्रकार का कार्य करती है। छान्दोग्य उपनिषद् के पाँचवें प्रपाठक के खण्ड ११ से १८ तक एक कथा कही है। क्या प्रकार है।

एक बार पाँच जिज्ञासु उपमन्यु का पुत्र प्राचीन शाल, पुलुष का पुत्र सत्य यज्ञ, मल्लवि के पुत्र का पुत्र इन्द्रद्युम्न, शर्वराक्ष का पुत्र जन और अश्वतराश्व का पुत्र बुडिल, आत्मा और ब्रह्म के विषय में जानने के लिये अरुण के पुत्र उद्दालक के पास पहुँचे। वह उन्हें कैकेय कुमार अश्वपति के पास ले गया। उसका कहना था कि विश्व की आत्मा को वह भली भाँति जानता है।

ये सब अश्वपति के पास गये तो उसने इनकी जिज्ञासा जानकर इनको वैश्वानर के विषय में समझाते हुए कहा—

..."एष वै सुतेजा आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव सुतं प्रसुतमासुतं कुले दृश्यते। (छा० ५-१२-१)

इसका अर्थ है—तुम जिस आत्मा की उपासना करते हो वह निश्चय ही 'सुतेजा' (श्रेष्ठ वीर्य) वही प्रसिद्ध वैश्वानर आत्मा है। इसी से तुम्हारे कुल में सुत (पुत्र) प्रसुत (पौत्र) और असुत (पर पौत्र) दिखायी देते हैं।

यहाँ वैश्वानर वीर्य रूपी तेज को बताया है।

अश्वपति ने यह भी बताया—

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते मूर्धा त्वेष आत्मन इति होवाच मूर्धा ते व्यपतिष्यद्यन्मां नागमिष्य इति। (छा० ५-१२-२)

इसका अर्थ है—तुम अन्न भक्षण करते हो और प्रिय (प्रिय पत्नी) का दर्शन करते हो। उससे ब्रह्म वर्चस (तेज युक्त सन्तान) होती है। यह

वैश्वानर आत्मा का मस्तक (एक अंग) है। राजा ने यह भी कहा कि यदि तुम मेरे पास न आते (इस पूर्ण को न जानते) तो तुम्हारा मस्तक गिर जाता। अर्थात् तुम्हारा ह्रास होने लगता। इसका अभिप्राय है अन्न से वीर्य और और सन्तान होती है यह उन्नति का साधन है।

अश्वपति ने दूसरे जिज्ञासु से पूछकर उसे बताया—

...एष वै विश्वरूप आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव बहु विश्वरूपं कुले दृश्यते। (छा० ५-१३-१)

अर्थात्—(तुम आदित्य की उपासना करते हो) यह निश्चय से विश्व रूप (संसार को रूप प्रदान करने वाला) वैश्वानर आत्मा है। इससे तुम्हारे कुल में बहुत सा विश्व रूप (सौन्दर्य) दिखायी देता है। अश्वपति ने इसी जिज्ञासु को यह भी कह दिया—

प्रवृत्तोऽश्वतरीरथो दासीनिष्कोऽत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते चक्षुष्ट्वेतदात्मन इति होवाचान्धोऽभविष्यो यन्मां नागमिष्य इति। (छा० ५-१३-२)

अर्थ है—अश्व से जुते रथ और दासियों सहित हार तुम्हें प्राप्त है। तुम अन्न खाते हो, प्रिय को देखते हो और प्रिय होती हो। तुम्हारे कुल में ब्रह्म वर्चस होता है। यदि अत्मा (वैश्वानर) आत्मा का (विषय) ही है। यदि तुम मेरे पास न आते और पूर्ण वैश्वानर को न जानते तो अन्धे (आँखों से देखते-देखते ज्योतिहीन) हो जाते। अर्थाथ् तुम संसार को न जान पाते।

इसी प्रकार तीसरे, चौथे और पांचवें शिष्य को वैश्वानर आत्मा के भिन्न-भिन्न रूपों का वर्णन कर कह दिया कि पूर्ण वैश्वानर को जानो। अन्यथा हानि होगी।

पूर्ण वैश्वानर के स्वरूप के विषय में हम अप्रैल १९७१ की पत्रिका में लिख आये हैं। वहाँ (छा० ५-१८-२ में) लिखा है। सम्पूर्ण विश्व के सम्पूर्ण कार्य जिससे होते हैं, वह वैश्वानर अग्नि है।

इस (माण्डू० ९) में इसके विषय में लिखा है कि यह 'ओंकार 'अ' मात्रा की भाँति जगत् के आरम्भ में प्रकट होती है।

उपनिषद् का अगला मन्त्र (१०) इस प्रकार है—

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद।

अवन्य इस प्रकार है—

स्वप्न स्थानः, तैजस, उकारः, द्वितीया, मात्रा, उत्कर्षात्, उभयत्वात्,

उत्कर्षति, ह वै ज्ञान, सन्ततिम्, समानः, च भवति न, अस्य, ब्रह्म, अवित्कुले, भवति, य, एवं, वेद ।

स्वप्न स्थान वाला (जगत्) तेजस है। (ओंकार के) उकार (अक्षर) की भाँति यह दूसरा है। यह दोनों से ('अ' और 'भ' से) ऊँचा मध्य में होने के कारण ज्ञान (चेतना) का विस्तार करता है और दोनों के समान भाव हो जाता है। जो ऐसा जानता है उसका कुल ब्रह्मज्ञान से रहित नहीं होते।

मन्त्र ६ में वैश्वानर की उत्पत्ति और कार्य की बात कही है और उसको जगत् रचना में वर्णन किया है। इसमें 'अ' मात्रा है जो चेतना का विस्तार करता है। यह जीवात्मा है। यह 'ओं' शब्द को ओं की भाँति 'अ' (वैश्वानर) और 'भ' जड़ प्रकृति के मध्म में और दोनों से ऊपर 'ओं' मात्रा अर्थात् जीवात्मा के विषय में कहा है।

जीवात्मा वैश्वानर (परमात्मा की शक्ति) और प्रकृति पर आरूढ़ होकर चेतना का विस्तार करता है। यह प्राणी के निर्माण की ओर संकेत है। ईश्वरीय शक्ति प्राण (वैश्वानर) और प्रकृति (शरीर) पर सवार होकर सन्तान उत्पन्न करता है जो चेतन ही होती है।

अभिप्राय यह कि जीवात्मा जो सुषुप्ति स्थान (अवस्था) में सोया हुआ था, वह स्वप्नावस्था (जगत् के ऊषा काल) में जाग पड़ता है और फिर परमात्मा के वैश्वानर (प्राण) से तथा जड़ प्रकृति के संयोग से प्राणी बनाने लगता है।

जब वैश्वानर से जगत् रचना आरम्भ हो गयी तो स्वप्नावस्था में जागा हुआ जीवात्मा वैश्वानर शक्ति और सुषुप्ति काल में सोयी हुई प्रकृति दोनों के मध्य और उत्कर्ष स्थान पर प्राणी-जगत् की रचना करने लगता है।

(क्रमशः)

[पृष्ठ ३६४ का शेष]

आज आवश्यकता है देशवासियों में राष्ट्रचरित्र एवं नैतिकता की। किन्तु वर्तमान कांग्रेस के शासन में यह सम्भव हो सकेगा, इसमें हमें सन्देह है और इस में भी सन्देह है कि कांग्रेस का शासन शीघ्र ही समाप्त हो जावेगा। उर्दू की कहावत के अनुसार "घर को आग लग गई घर के चिराग से।" जब तक हिन्दुओं में पंचमांगियों को पंचत्व प्राप्त नहीं होता तब तक देश का उद्धार सम्भव नहीं। और तब तक ही यह स्वाधीनता भी निरर्थक है। सहअस्तित्व के स्वप्न को भूलकर स्व-अस्तित्व को स्थिर करना होगा। तटस्थता का त्यागकर धारा के मध्य उतनी ही तीव्रता से तैरने में ही कल्याण है।

महाभारत युद्ध के बाद श्रीकृष्ण का निस्तेज जीवन और मर्मान्तक मरण

श्री दीनानाथ सिद्धान्तालंकार

भारत के इतिहास में महाभारत युद्ध का विशिष्ट स्थान है। यह सर्वसंहारक युद्ध था। ऐतिहासिकों का यह प्रायः सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि इस महायुद्ध के परिणामस्वरूप देश अधःपतन के गर्त में गिरने लगा। इसके विपरीत कुछ की यह भी सम्मति है कि भारत के गिरावट के फलस्वरूप ही यह महायुद्ध हुआ। पर एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इतने महान् नर-संहार के पश्चात् युधिष्ठिर ने, कृष्ण के परामर्श से पुनः अश्वमेध यज्ञ किया और तीन दशक से अधिक समय तक संसार पर एकछत्र राज्य किया। इस प्रकार दुखान्त ऐतिहासिक गाथा को सुखान्त रूप दे दिया गया। इसे तत्कालीन राजनीतिज्ञों का बुद्धिचातुर्य ही समझना चाहिये।

महाभारत काल में, हिमालय के धवल शिखर सदृश दो महापुरुष हैं जिन्हें इस समूचे घटनाचक्र का सूत्रधार कहा जा सकता है। वे हैं श्रीकृष्ण और भीष्म पितामह। पितामह का चरित्र विद्या, त्याग, तपस्या, वीरता और नैतिक दृष्टि से बड़ा उज्वल और निष्कलंक है, परन्तु उसमें क्रान्ति, उथल-पुथल, पापोन्मूलन की प्रबल आकांक्षा, राजनीतिक दूरदर्शिता तथा काल की नब्ज़ को ठीक प्रकार पहचानने की शक्ति—इन सबका खेदजनक अभाव है। दूसरी ओर श्रीकृष्ण इसके सर्वथा विपरीत, क्रान्ति का झण्डा ऊँचा करने में सशक्त, गम्भीर राजनीतिज्ञ, वीर, अन्याय-अत्याचार के विरुद्ध सदा तत्पर, दूरदर्शी और काल चक्र को समझने वाला—इत्यादि अति मानवीय गुणों के पुंज हैं।

युधिष्ठिर द्वारा इन्द्रप्रस्थ में आयोजित प्रथम राजसूय यज्ञ के अवसर पर सभापति का पद किसे दिया जाये ? जब यह प्रश्न उपस्थित हुआ उस समय भीष्म ने कृष्ण का नाम प्रस्तुत किया और उसकी प्रशंसा में कहा—

"श्रीकृष्ण के यश, शौर्य और विजय को भलीभाँति जानकर उसकी पूजा की जा रही है। हमने यहाँ सबके गुणों की परीक्षा की है और उस परीक्षा में श्रीकृष्ण के गुणों को दृष्टि में ही रखकर उसे पूजनीय समझा गया है। जो ज्ञान में और क्षत्रियों में बड़ा है, वही पूजनीय समझा जाता है। कृष्ण में ये दोनों गुण पाये जाते हैं। साथ ही वह बल में भी सर्वाधिक है।...श्रीकृष्ण हमारे ऋत्विक्, गुरु, आचार्य, स्नातक, राजा, परम मित्र—सब-कुछ हैं। इसीलिये हमने इन्हें अग्रपूजा के योग्य माना है।'

(महाभारत सभा पर्व ३८-१६,१७,२२,२३)

श्रीकृष्ण बाल्यकाल से ही अपूर्व शारीरिक बलयुक्त थे। एक ताल के समीप रहने वाले कालिय राक्षस का, धनुकं नामक दैत्य का और मथुरा जाकर पहले कंस के मल्ल योद्धा चाणूर और मुष्टिक को और तत्काल ही अपने माता-पिता देवकी और वसुदेव को वर्षों तक कारावास में रखने वाले कंस का जीवन समाप्त कर दिया। कंस के मारे जाने के बाद मथुरा में गणराज्य की स्थापना श्रीकृष्ण ने की।

श्रीकृष्ण कितने तेजस्वी, शूरवीर, शत्रुनाशक और आत्मगौरव-रक्षक थे, इसका एक प्रमाण उस घटना से मिलता है जिसका सम्बन्ध शिशुपाल-वध से है। इसी राजसूय यज्ञ की सभा में श्रीकृष्ण के फुफेरे भाई शिशुपाल ने श्रीकृष्ण के सभापतित्व का, किसी देश का राजा न होने के हेतु विरोध किया और उसे १०० गालियाँ दीं। श्रीकृष्ण सुनते रहे और जब शिशुपाल ने १०१वीं गाली दी, तब उसकी माता से की गयी प्रतिज्ञा के अनुसार दूसरे ही क्षण, श्रीकृष्ण ने निःसंकोच सुदर्शन चक्र द्वारा शिशुपाल का सिर काट सभास्थल में ही गिरा दिया।

महाभारत युद्ध में श्रीकृष्ण ने बिना किसी शस्त्रास्त्र का स्पर्श किये, अर्जुन के सारथी के रूप में, जिस राजनीति-चातुर्य, अथाह बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता का परिचय दिया, एकमात्र उसी का परिणाम था कि भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, दुःशासन, दुर्योधन सदृश महारथियों का अन्त हो सका और अल्प संख्या में होते हुए भी पाण्डवों की विजय हुई।

गीता के १८ अध्यायों को समाप्त कर और महाभारत युद्ध का वर्णन धृतराष्ट्र को सुनाने के बाद संजय ने जो अन्तिम श्लोक कहा है, वह श्रीकृष्ण के गुण समुच्चय की कितनी भावपूर्ण अभिव्यक्ति है—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥ (भ० गी० १८-७८)

जहाँ योगीराज कृष्ण हैं, जहाँ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन है, वहाँ (१) राज्य लक्ष्मी, (२) विजय, (३) उत्तरोत्तर ऐश्वर्य और (४) निश्चल तथा दृढ़ राजनीतिक बुद्धि—इन चारों फलों की प्राप्ति निश्चित है।

यहाँ तक, अर्थात्, शैशव-काल से युवा-काल में महाभारत युद्ध की समाप्ति तक, श्रीकृष्ण का चरित्र, वस्तुतः महान् उदात्त, प्रेरणा और स्फूर्तिप्रद, नव-जीवन-प्रेरक, गौरवशील और विश्व के इतिहास में सर्वथा अद्वितीय और अनुपम है। पर इसके बाद श्रीकृष्ण का वार्धक्य का जीवन अत्यन्त दुखान्त, निस्तेज, शक्तिहीन और असहाय सदृश है।

श्रीकृष्ण के दुखान्त जीवन का प्रारम्भ महाभारत युद्ध के पश्चात् ही होता है। कंस के श्वसुर जरासंध ने मथुरा पर आक्रमण कर दिया। कृष्ण की यादव-सेना मथुरा की रक्षा न कर सकने के कारण वहाँ से भाग खड़ी हुई। पश्चिम दिशा में समुद्र के किनारे द्वारिका नगरी की स्थापना कर यादव यहाँ रहने लगे।

महाभारत के मौसल पर्व में लिखा है कि यादव जाति के वृष्णि, अंधक तथा भोज वंशियों में परस्पर कलह आरम्भ हो गया। और मदोन्मत्त हो यादव वंशी एक-दूसरे के संहार में लग गये; क्योंकि मौसल पर्व अध्याय २ के श्लोक २८ से ३० तक में कहा गया है कि नगर में घोषणा कर दी गयी कि आज से कोई वृष्णिवंशी और अंधकवंशी मदिरा पान नहीं करेगा और जो कोई मदिरा तैयार व उसका पान करेगा उसे सूली पर चढ़ा दिया जायेगा। पर विनाशोन्मुख यादवों पर इस आदेश का कोई प्रभाव नहीं हुआ। मौसल पर्व के अध्याय ३ के श्लोक १६ के अनुसार—

कृष्णस्य संनिधौ रामः सहितः कृतवर्मणा।
अपिबद् युयुधानश्च गदो बभ्रुस्तथैव च ॥

अर्थात्—श्रीकृष्ण के पास ही कृतवर्मा सहित बलराम, सात्यकि, गद और बभ्रु मद्य पीने लगे। ध्यान देने योग्य यह है कि बलराम श्रीकृष्ण का बड़ा भाई और सात्यकि कृष्ण के साले तथा गद और बभ्रु कृष्ण के पुत्र थे। कृष्ण के तीसरे और ज्येष्ठ पुत्र प्रद्युम्न भी इस मदिराजन्य युद्ध में मारे गये। इसी अध्याय के श्लोक ४१,४२ के अनुसार—पिता ने पुत्र को और पुत्र ने पिता को मार डाला। जैसे पतंगे आग में कूद पड़ते हैं, उसी प्रकान वृष्णि और अंधक वंश के लोग परस्पर जूझते हुए मरने लगे। इस गृह-युद्ध में श्रीकृष्ण का पौत्र अनिरुद्ध भी मारा गया। अपने सब पुत्रों और पौत्रों की मृत्यु से श्रीकृष्ण की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी और वह स्वयं अपने हाथों यादववंश का संहार

करने लगे। कृष्ण के बड़े भाई बलराम वन में जा एकान्त में ध्यानावस्थित बैठे थे कि एक नाग ने आकर उन्हें डस लिया और उनका जीवन समाप्त हो गया।

अब अकेले श्रीकृष्ण ही बच गये। उन्होंने बड़े शोक से कहा कि मैंने कुरु-वंश का नाश देखा है और अब यादववंश का संहार देख रहा हूँ। अब मुझे भी अपना मार्ग निश्चित करना होगा।

महाभारत युद्ध के बाद कृष्ण और अर्जुन दोनों ही कितने निस्तेज, शक्ति-हीन और अपने प्राचीन गौरव से रहित हो गये थे, इसकी पुष्टि तत्कालीन एक अन्य घटना से होती है। जब पाण्डव हस्तिनापुर में सुखपूर्वक राज्य कर रहे थे, तब एक दिन अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा कि जिस गीता का आपने युद्धकाल में उपदेश दिया था और अपना विराट् स्वरूप दिखाया था, मैं पुनः उसे सुनना और देखना चाहता हूँ। श्रीकृष्ण बोले—उस समय मैं योगयुक्त होकर परमात्म-तत्त्व का वर्णन कर रहा था। अब मैं उस उपदेश को दोबारा नहीं कह सकता; क्योंकि मुझे वह स्मरण ही नहीं रहा और न ही अब मेरी वह स्थिति है। इससे स्पष्ट है कि युद्ध के बाद श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों ही सांसारिक ऐश्वर्य में फँस गये थे और उनमें वह साधना, अभ्यास, कर्मयोग का जीवन और जाग-रूकता नहीं रही थी जो युद्धकाल में थी।

श्रीकृष्ण का अन्तकाल बड़ा दुःखपूर्ण है। जो व्यक्ति अपने शैशव, यौवन और युद्धकाल तीनों अवस्थाओं में यश, ख्याति, आदर, प्रभाव, शक्ति और गौरव की दृष्टि से उच्चतम शिखर तक आरूढ़ हो गया हो, वह अपने वार्धक्य में और अपने ही नगर तथा अपनी जाति के सम्मुख इतना नगण्य, सामर्थ्यहीन और पंगु हो गया हो कि कोई उसकी बात ही सुनने को तैयार न हो तो इससे अधिक हृदयवेधक घटना क्या हो सकती है? ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण यादववंश का सामाजिक सुधार करना चाहते थे और द्वारका को आदर्श राज्य बनाने के इच्छुक थे, पर विपरीत स्थिति ने उन्हें निकम्मा बना दिया था। महा-भारत युद्ध के तत्काल बाद ही यदि श्रीकृष्ण संन्यास ले लेते तो सम्भवतः उनका देह-अवसान इतना मर्मान्तिक न होता। पर दुर्भाग्य से वे द्वारका और यदुवंश (नगर और जाति) के तंग दायरे के मोह में फँसे रहे जिससे एक सामान्य पुरुष की तरह उनकी मृत्यु हुई।

अपने बड़े भाई बलराम की सर्प दंश से मृत्यु होने तथा यादव जाति के वृष्णिक और अन्धक वंशों के दुर्व्यसनों से ग्रस्त हो गृह-युद्ध में सर्वथा नष्ट हो जाने से श्रीकृष्ण खिन्न चित्त के साथ जंगल में विश्राम के लिए चले गये। वहाँ

[शेष पृष्ठ ३८५ पर]

शिक्षा की आड़ में छिपा भयंकर ईसाई षड्यन्त्र

श्री ब्रह्मदत्त भारती

सारे संसार को कुछ समय तक धोखा दिया जा सकता है अथवा कुछ व्यक्तियों को सर्वथा भ्रम में रखा जा सकता है परन्तु सबको सब समय धोखा देना किसी के लिए भी सम्भव नहीं। ईसाई मत ने भी यथाशक्ति संसार की आँखों में धूल झोंकने का योजनाबद्ध यत्न करते हुए अपनी शिक्षा की श्रेष्ठता का ढिंढोरा पीट-पीटकर हिन्दुस्तान को मूर्ख बना लूटने की चेष्टा की है। हिन्दुस्तान में ईसाई शिक्षा को उसकी बी० डी० (B. D. is equal to Bachelor of Divinity) और डी० डी० (D. D. is equal to Doctor of Divinity) की उपाधियों को बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा अप्रामाणित घोषित करके एक ऐसी बड़ी चपत मारी है कि ईसाइयत बिलबिला ही तो उठी।

खरा सोना बेचने के लिए कुछ अधिक शोर मचाने की आवश्यकता शायद ही किसी को पड़ती हो। परन्तु सोने के धोखे में क्रेता के गले पीतल मढ़ने वाले सदा सच और झूठ बोलते ही रहते हैं। कुछ ऐसा ही ईसाई मत ने अपने स्कूल और महाविद्यालयों और अध्यापकों के लिए किया है। हिन्दुस्तान की जनता के सामने इन सबकी प्रशंसा कुछ ऐसी बढ़ा-चढ़ाकर और कुछ इस ढंग से की गई है कि हिन्दुस्तान के निष्कपट और भावुक जन इस झूठ को सत्य मान बैठे। उन्हें बहुत समय तक यह सन्देह भी न हुआ कि इस ईसाई शिक्षा के पीछे उनका सर्वनाश छिपा है और इस सर्वनाश के लिए ईसाईमत और इसके विदेशी ईसाई पादरियों के गुट सदा से छिपे-छिपे कार्य करने में तत्पर रहे हैं।

हाथी की भाँति ईसाई मत के भी दो दाँत हैं, एक दिखाने और देखने वालों को रिझाने और खुश करने के लिए और दूसरे भक्षण के लिए। जो ईसाई नहीं उन्हें ईसाइयत सदा यही कहती आई है कि यह पादरी केवल विद्यादान देने के

लिए ही अपना घर छोड़कर हिन्दुस्तान आते हैं। हिन्दुस्तान के सीधे-साधे लोगों को यह आश्वासन भी 'होली क्रास' और 'ईसा' तथा 'मेरी' की कसमें खाकर दिलाने की चेष्टा की जाती है कि ईसाई शिक्षा के पीछे ईसाइयत का ध्येय केवल हिन्दुस्तान के लोगों को विद्यादान देकर उन्हें सभ्य बनाना है। इस पाखण्ड के पीछे कितना भयंकर षड्यंत्र छिपा है यह वही लोग जान पाते हैं जिनको ईसाइयत की गुप्त गतिविधियों का कुछ ज्ञान हो। ऐसा कितना ही ईसाई साहित्य उपलब्ध है जिसमें यह प्रत्यक्ष रूप में माना गया है कि ईसाई शिक्षा का एकमात्र ध्येय और अभिप्राय लोगों को ईसाई बनाना और उनके 'स्वधर्म' को किसी प्रकार भी नष्ट करना है।

पादरी, डब्ल्यू० जे० विलकिन्स (W. J. Wilkins) ने अपनी पुस्तक डेली वर्क एण्ड लाइफ़ इन इंडिया में यह स्वीकार किया है कि यदि हम (ईसाइयत) वेदों के प्रति हिन्दुओं की आस्था को नष्ट कर सकें तो कुछ आशा है कि यह लोग ईसाइयत सम्बन्धी हमारे विचारों को खुले दिल से सुनें और स्वीकार करें······इसी लक्ष्य को लेकर ईसाई स्कूल खोले गये थे।

यह है ईसाइयत और ईसाई शिक्षा का नंगा रूप जिस पर कितने ही हिन्दुस्तानी मोहित हो रहे हैं। यदि केवल विदेशी ईसाई पादरियों के वक्तव्यों को ही बटोरा जाय तो एक पुस्तिका तैयार हो जाये। सी० बी० इवी० पी० एच० डी० ने जो व्हीटन विश्वविद्यालय अमरीका के शिक्षा और मनोविज्ञान विभाग के अध्यक्ष रहे हैं, एक पुस्तक लिखी है, प्रिंसिपल ऑफ टीचिंग फॉर क्रिस्चियन टीचर्स (ईसाई शिक्षकों के लिए शिक्षा के सिद्धान्त)। इस पुस्तक के लिये प्रस्तावना क्लेरेंस एच० बेनसन ने लिखी जो इवैंजेलीकल टीचर ट्रेनिंग एसोसिएशन के मन्त्री थे। इसी कारण इस पुस्तक में दिये गये सिद्धान्तों को ईसाई शिक्षा के प्रामाणिक सिद्धान्त मानना कुछ भी भूल नहीं। इसी पुस्तक के पृष्ठ ५२ पर डीन गुडेरिच सी० ह्वाइट (Dean Goodrich C. White) का मत दिया गया है। वह कहता है कि ईसाई शिक्षा का मुख्य और केवल मात्र लक्ष्य हर विद्यार्थी को ईसाई बनाना है ("To lead each pupil to an acceptance of Jesus Christ as a personal saviour") डा० एच० ई० कार्नक (Dr. H. E. Carnock) का मत भी इसी से मेल खाता है। उसके मतानुसार ईसाई शिक्षा का ध्येय विद्यार्थी को ईसा के निकट लाना (ईसाई बनाना) है। ऐसा ही मत अन्य अनेकों ईसाई पादरियों और ईसाई शिक्षकों का भी है। इन्हीं ईसाई पादरियों और शिक्षकों के हाथों में आज हिन्दुस्तान के लोगों की शिक्षा दम तोड़ रही है।

जिस समय हिन्दुस्तान पर अंग्रेज राज करते थे तब अंग्रेजी राज्य से विदेशी ईसाई पादरियों को इस देश में ईसाई पाठशाला, स्कूल और महाविद्यालय खोलने के लिये और उनके माध्यम से हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए खुले और चोरी छिपे आर्थिक सहायता मिलती थी। इसका विशेष कारण यह रहा है कि जो लोग ईसाई बनते थे वे प्रायः अपनी देशभक्ति को भी तिलांजलि दे देते थे। गांधीजी ने भी कहा है कि ईसाइयत और अराष्ट्रीयता एक ही वस्तु है ("It is not unusal to find Christianity synonymous with denatianalization"—Christian Missions by Gandhi, p. 101)। यह केवल गांधी और दूसरे गैरईसाइयों का ही विचार नहीं है, कुछ ईसाई पादरी लेखकों ने भी इस कथन की सत्यता को स्वीकार किया है कि ईसाई प्रायः अंग्रेजी सरकार के राजभक्त रहेंगे।

ईसाई शिक्षा का घिनौना रूप देखने और इस महा-षड्यन्त्र को समझने के लिए ऐसे गुप्त और निजी ईसाई साहित्य का अध्ययन आवश्यक है जो ईसाइयत का पथ-प्रदर्शन करने के लिए लिखा जाता है और जिसको गैरईसाई हाथों में पड़ने से रोकने की सदा कोशिश की जाती है। ऐसी ही एक पुस्तिका प्रथम महायुद्ध के प्रारम्भ में कैथोलिक साप्ताहिक पत्रिका एग्जामिनर (Examinor) के सम्पादक, अरनैस्ट आर० हल, ने लिखी थी। यह हल पादरी सोसायटी ऑफ जीसस के सदस्य थे। यह पुस्तक विशेष रूप से ईसाई जगत के मनन के लिए लिखी गई थी और इसकी बिक्री का विशेष प्रबन्ध बम्बई, अमरीका, फ्रांस, इंगलैंड, स्पेन, आस्ट्रेलिया जैसे देशों में किया गया था। इस पुस्तिका के पृष्ठ ३२ पर वह कहता है कि 'जर्मन पादरी हिन्दुस्तान में इसलिए हैं कि वे यहाँ कैथोलिक ईसाइयत को फैलायें। ऐसा वे कई प्रकार से करते हैं। लोगों में और सेना के सैनिकों में पादरी का काम संभालकर और कैथोलिक ईसाइयों के लिए पाठशालायें खोलकर। इन पाठशालाओं का एकमात्र उद्देश्य ईसाइयों की शिक्षा की देखभाल करना है, परन्तु कुछ कारणवश इस देश (हिन्दुस्तान) में इन्हें (पादरियों को) इस लक्ष्य से कुछ दूर हटना पड़ता है। कैथोलिक ईसाई बहुत कम हैं और इस कारण यदि केवल ईसाइयों को ही इन ईसाई पाठशालाओं और स्कूलों में भरती किया जाये तो इन ईसाई पाठशालाओं की संख्या ही घट जायेगी और आर्थिक कठिनाइयां भी ईसाइयत के, सामने आ खड़ी होंगी। इस संकट से छुटकारा पाने के लिए ही ईसाई पाठशालायें गैरईसाइयों को विवश होकर भरती करती हैं।"

उपरलिखित तथ्य ने यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है कि ईसाई पाठ-

शालाओं में एक तो विद्यार्थियों को ईसाई बनाने के लिए और दूसरे इस कारण भी भरती किया जाता है कि ये ईसाई पाठशालाएँ हिन्दुओं के बच्चों को भरती करके उनसे शिक्षा शुल्क लेकर आर्थिक संकट से बच सकें। जिस हाण्डी में खाना उसी में छेद करना इसी को कहते हैं। गैरईसाई और विशेषकर हिन्दुओं से पैदा की हुई आमदनी और हिन्दुस्तानी सरकार से मिली हुई आर्थिक सहायता पर जीवित रहने वाले ईसाई स्कूल और पाठशालाओं के यह इरादे घोर षड्यंत्र से किसी प्रकार भी कम नहीं। जिनकी सहायता से यह ईसाई स्कूल और पाठशालाएँ आज पनप रही हैं, समय आने पर उन ही की पीठ में छुरा घोंपने का काम भी यही करेंगे।

ईसाई स्कूल और कॉलेज गैर-ईसाइयों को ईसाई बनाने के काम लाये जाते हैं, यह बात हिन्दुस्तानी सरकार से कुछ छपी नहीं है। इसी पर कुछ रोक लगाने के लिए सरकार ने अन्तःकरण धारा (Conscience clause) को भारतीय शिक्षा प्रणाली का एक अंग बना दिया था। इस धारा के अन्तर्गत किसी भी विद्यार्थी को उसके माता-पिता की अनुमति और स्वीकृति के बिना ऐसे किसी पंथ की शिक्षा नहीं दी जा सकती जो उसके माता-पिता का पंथ नहीं है। इस अन्तःकरण धारा ने ईसाई शिक्षा जगत में खलबली सी मचा दी और विदेशी ईसाई पादरी तो तिलमिला ही उठे। मई १९२१ में पादरी जे० एन० ओगलवी (J. N Ogalvie) हिन्दुस्तान आये थे। नवम्बर १५ को इन्होंने सियालकोट में (जो अब पाकिस्तान में है) एक गुप्त सभा में भाग लिया था। इस सभा में यह फैसला किया गया था कि यदि हिन्दुस्तान की सरकार अन्तःकरण धारा लगाती है और उस पर जोर देती है तो ईसाइयत को अपनी सारी शिक्षा नीति पर पुनर्विचार करना पड़ेगा। इस सभा में जमा हुए पादरियों के तो हाथ के तोते उड़ते ही दिखाई दिये, उन्होंने अनुभव किया कि यदि वे सरकार की आज्ञा का पालन ईमानदारी से करेंगे तो शिक्षा के माध्यम से ईसाई बनाने की उनकी सारी आशाओं पर पानी पड़ जायेगा।

ईसाइयत ने कुछ कच्ची गोलियाँ नहीं खेली हैं। इतनी आसानी से हार मानने वाली वह नहीं। जब सरकार ने अन्तःकरण धारा लागू की तो सारे ईसाई जगत का ध्यान एक ही ओर लग गया कि किस प्रकार विधिपूर्वक इस धारा का उल्लंघन किया जाये। जिस प्रकार ईसाइयत ने इस अन्तःकरण धारा का दुरुपयोग किया, वह धोखाधड़ी की एक और बड़ी मिसाल है। ऐडी आसीर्वाथम (Eddy Asirvatham) ने अपनी पुस्तक क्रिस्टियेनिटी इन दी इंडियन क्रूसीबल (Christianity in the Indian Crucible) के पृष्ठ २२ पर स्वीकार किया

है कि ईसाई पाठशालाओं ने इस धारा का उल्लंघन एक विचित्र रूप में किया है। बालक और बालिकाओं को ईसाई पाठशालाओं में प्रवेश प्रदान करते समय प्रवेश-पत्र में उनके माता-पिता से ऐसे अभावसूचक प्रश्नों का उत्तर माँगा जाता है कि जिनका उत्तर सर्वदा ही ऐसा दिया जाता है जिससे वह उस बालक अथवा बालिका को ईसाई मत की शिक्षा दे सकें। इस ईसाई लेखक ने कहा है कि कुछ ईसाई शिक्षा-संस्थायें इस अन्तःकरण धारा की बाधा को प्रवेश-पत्र में ऐसा प्रश्न डालकर पार करती हैं कि विद्यार्थी को धर्म की शिक्षा दी जाये या नहीं ? कितने ही माता-पिता अपने बच्चे को प्रवेश दिलाने के हित में उस प्रश्न का उत्तर "हाँ" में ही दे देते हैं।

इस लेखक के मत में अन्तःकरण धारा ईसाई शिक्षा संस्थाओं के रास्ते में एक बाधा और अड़चन है। यह प्रश्न भी इस भाँति किया जाता है कि माता-पिता को यह ध्यान भी नहीं आता कि 'धर्म' से इन ईसाई स्कूलों का एकमात्र अभिप्राय 'ईसाई मत' से ही है।

ईसाइयत अपना काम निकालने के लिए कुछ भी करने पर उतारू है। ईसाई मत के अनुसार अपनी कार्य-सिद्धि के लिए झूठ भी बोला जा सकता है। ईसाइयत ने हिन्दुस्तानी सरकार की अन्तःकरण धारा का इस भाँति उल्लंघन करके एक बार फिर अपनी धोखाधड़ी का प्रमाण दे दिया और उन हिन्दू माता-पिता को जिन पर ईसाई शिक्षा का नशा चढ़ा हुआ है, खूब अच्छी तरह बता दिया कि इंसानियत उन्हें कैसे उल्लू बनाती है। खेद केवल इस बात का है कि ये माना-पिता इस सत्य को स्वीकार नहीं करते। ईसाइयत का गुप्त और निजी साहित्य ऐसे प्रमाणों से भरा पड़ा है जिनके सहारे यह पूरी तरह सिद्ध किया जा सकता है कि इस चमकती हुई ईसाई शिक्षा के पीछे, जिसका बखान करते ईसाइयत थकती ही नहीं, एक घोर षड्यन्त्र छिपा है। इस शिक्षा का एकमात्र लक्ष्य हिन्दुओं की परम्पराओं, उनके साहित्य, उनकी सभ्यता, उनकी धर्म-निष्ठा और उनके धर्म-ग्रंथों को नष्ट करके उनको ईसाई बनाना है। ईसाइयत के इस घृणित रूप का एक और छोर हम दिखाने जा रहे हैं।

ईसाइयत और विशेषकर विदेशी ईसाई पादरी इस बात का ढिंढोरा पीटा करते हैं कि ईसाइयत मानव को मानव से प्रेम करना सिखाती है। ईसाइयत के इस कथन में कितना छल कपट छिपा है और वह हमारी बात को झुठला न दे, इस कारण हम ईसाइयत की माननीय गुप्त रिपोर्ट का ही सहारा लेंगे। जो ईसाई मसीही संस्थाएँ हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानियों को ईसाई बनाने के कार्य में संलग्न हैं उनमें 'लंदन मिशन सोसायटी' का नाम उल्लेखनीय है।

इसका कार्यक्षेत्र विशेषकर सारा केरल प्रदेश, कलकत्ता और वाराणसी के पास का कुछ भाग है। दूसरी मसीही ईसाई संस्थाओं की भाँति स्कूल और हस्पताल खोलकर उनके माध्यम से लोगों को ईसाई बनाना इसका भी मूल कार्य है। १६२२ में इस संस्था ने पाँच पादरियों के एक दल को यह मालूम करने के लिये हिन्दुस्तान भेजा कि लंदन मिशन सोसायटी के कार्य संगठन में क्या त्रुटियाँ और दोष हैं और किस तरह यह लोगों को ईसाई बनाने का काम अधिक तीव्रता से कर सकती है। इस टोली ने जो गुप्त वृत्तान्त लन्दन भेजा उसमें निर्लज्जता-पूर्वक यह कहा गया है—"इस देश में हमारे (लंदन मिशन सोसायटी के) स्कूलों में हिन्दू अध्यापकों की संख्या ईसाई अध्यापकों से कहीं अधिक है और यह हमारे माथे पर कलंक है। हम इस बात पर कटिबद्ध हैं कि इस कलंक को पूर्णतया धो डाला जाये। ऐसा करने के लिये यदि कुछ स्कूल बन्द भी करने पड़ें तो उन्हें बन्द कर देना चाहिए।"

प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या? क्या इससे यह साफ जाहिर नहीं होता कि ईसाइयत का मानव-प्रेम का राग केवल पाखण्ड, ढकोसला और बड़ा धोखा है जो केवल गैरईसाइयों को भ्रम में डालने के लिये है। ईसाइयत की असली मंशा इस देश में हिन्दुओं को धार्मिक और आर्थिक रूप से नष्ट करके राज-नैतिक दास बनाना है।

ईसाई पाठशालाओं और स्कूलों में शिक्षा का स्तर ऊँचा है, ऐसा भ्रम कई हिन्दुस्तानियों को है। यह सब भी ढकोसलामात्र ही है। यदि इसमें कुछ लेश-मात्र सत्य है तो केवल इतना ही कि १६४७ से पहले इन ईसाई स्कूलों से निकले विद्यार्थियों को सरकारी नौकरियाँ अधिक आसानी से दी जाती थीं। इसका भी विशेष कारण यह रहा है कि ईसाई स्कूलों में शिक्षा-प्राप्त अधिकांश हिन्दु-स्तानी अपने देश से कुछ अधिक प्रेम नहीं रखते थे। ईसाई स्कूलों और महा-विद्यालयों में पढ़ाने वाले अधिकांश पादरी केवल ईसाई साम्प्रदायिक शिक्षा प्राप्त किये हुए ही होते हैं। और वे सोसायटी ऑफ जीसस के सदस्य होते हैं जो अपने नाम के पीछे एस. जे. (S. J.) उपाधि के रूप में जोड़ते हैं। ईसाइ-यत के अपने निजी विश्वविद्यालय हैं जिनका काम ईसाई पादरी तैयार करना है। इनमें शिक्षा प्राप्त किये हुए ईसाई ही 'बी. डी.' और 'डी. डी.' की उपा-धियाँ लेकर निकलते हैं और फिर ईसाइयत के स्कूलों में ही अध्यापक और शिक्षक बन बैठते हैं। सत्य यह कि ये पादरी जो शिक्षा इन ईसाई विश्वविद्या-लयों से लेकर निकलते हैं उस शिक्षा का आधार ऐसी हास्यप्रद जानकारी पर है जो बाईबल से मिलती है जैसे कि पृथ्वी नहीं अपितु सूर्य घूमता है और कि

इस संसार को बने ६००० वर्ष से भी कम हुआ है। अंग्रेज़ी सरकार का वरद-हस्त सदा ईसाइयत और ईसाई स्कूलों पर रहा है। उनके राज्य में हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े विश्वविद्यालय और उनके प्रायः सब ही उच्च अधिकारी अंग्रेजी सरकार के पिट्ठू ही होते थे। इसी कारण इन विश्वविद्यालयों ने ईसाइयत की बी. डी. और डी. डी. की उपाधियों को प्रामाणिकता प्रदान कर रखी थी। इसका भयंकर प्रभाव इस देश की शिक्षा पर हुआ। कितने ही अधपढ़े और कुशिक्षित ईसाई पादरी इन उपाधियों से सुसज्जित होकर हिन्दुस्तान आ धमके और यहाँ आकर अध्यापक और आचार्य बन बैठे। जो स्वयं ही अधपढ़ा अथवा कुशिक्षित हो वह दूसरे को क्या विद्यादान देगा? इनमें कितने ही ऐसे पादरी भी रहे हैं जिनकी शिक्षा का स्तर आज की आठवीं और दसवीं कक्षा के बराबर भी नहीं रहा परन्तु इस अभागे देश में उनके हाथों ही देश की शिक्षा की खिल्ली उड़ने लगी।

ईसाई शिक्षा संस्थाओं के प्रबन्धक कुछ वर्षों से यह बावेला मचा रहे हैं कि इन संस्थाओं में अध्यापकों की नियुक्ति और वियुक्ति ईसाइयत का मूल अधिकार है। इसके पीछे भी एक गहरी चाल है। इसकी आड़ लेकर ईसाइयत उन सब हिन्दू अध्यापकों को हटाकर उनकी जगह पर ईसाइयों को नियुक्त करना चाहती है। ईसाइयत के मस्तिष्क में एक और दुर्भावना भी खलबली मचाये हुए है। ईसाइयत हिन्दुस्तान में अपना एक निजी विश्वविद्यालय स्थापित करना चाहती है। जिस सियालकोट में हुई गुप्त सभा का वर्णन हम कर चुके हैं उसी सभा में इस विषय पर भी विचार किया गया था कि पंजाब में अमरीका की सहायता से एक ईसाई विश्वविद्यालय खोला जाये जिसका अपना ही संविधान हो।

कुछ ईसाई पाठशालाएँ किस निर्लज्जता और अनियमितता से कार्य करती हैं उसकी एक झलक गत वर्ष नागपुर से प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी दैनिक 'नागपुर टाइम्स' में देखने को मिली थी। इस समाचार के अनुसार नागपुर के एक ईसाई स्कूल ने सरकारी सहायता का धन बटोरने के लिये अपने भंगी चौकी-दार और बावर्ची का नाम भी अध्यापकों के साथ ही लिखा हुआ था। कल-कत्ता का एक ईसाई कालेज हिन्दुओं से प्रवेश के समय 'सलामी' के रूप में काला धन लेता है जिसका कुछ अंश उन विद्यार्थियों की सहायता पर व्यय किया जाता है जो ईसाई होते हैं। ईसाई शिक्षा संस्थाओं को आर्थिक स्वतंत्रता शीघ्र-से-शीघ्र चाहिए और इसकी प्राप्ति के लिये ईसाइयत कुछ भी करने से नहीं हिचकिचायेगी।

ईसाई स्कूलों में आज भी कितने ही हिन्दू शिक्षा पा रहे हैं और कितने ही हिन्दू पढ़ा भी रहे हैं परन्तु जैसे ही ईसाइयत को उन पर निर्भर रहने की आवश्यकता न रही, वह उन्हें दूध में से मक्खी की तरह निकाल बाहर फैंकेगी। जो देश अपने बच्चों की शिक्षा विदेशियों के हाथ सौंपते नहीं लजाता उसकी स्वाधीनता भी कभी स्थायी नहीं रहती। विदेशी कभी न कभी उस पर डाका डालता ही है। जो माता-पिता चाहे वे मंत्री और उच्चाधिकारी ही क्यों न हों यदि ईसाई स्कूलों में अपने बच्चों को भेजते हैं वे हिन्दुस्तान की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक दासता की नींव रखने में भागीदार हुए बिना नहीं रह सकते। सत्य कितना भी कठोर क्यों न हो, इससे कोई भी मुँह नहीं मोड़ सकता। •

[पृष्ठ ३६९ का शेष]

आरम्भ कर दिये। किसी भी नीयत से हो, ये शस्त्रास्त्र भारत के लिये भय का कारण बन रहे थे। अब अमरीका चीन से समझौता करने के लिये तैयार हो रहा था। भगवान् जाने किसलिए ? परन्तु यह समझौता भी भारत के लिए भय का कारण बनने वाला था। चीन भारत का शत्रु और पाकिस्तान का मित्र हैं। इनमें अमेरिका के आकर मिल जाने से भारत की स्थिति अति डाँवाडोल हो रही थी।

भारत के लिये यह अनिवार्य हो रहा था कि किसी बड़ी शक्ति से गठजोड़ करे।

यह गठजोड़ हो तो गया है परन्तु यह खरगोश के सिंह की गुफा में जाकर प्राण बचाने के तुल्ल ही दिखायी दे रहा है। •

[पृष्ठ ३७७ का शेष]

वे लेट गये। जरा नामक व्याध मृगों को मारने की इच्छा से उधर आ निकला। उस व्याध ने दूर से श्रीकृष्ण को ही मृग समझ उनके पैर में तीक्ष्ण बाण मार घाव कर दिया। जब उस मृग को पकड़ने के लिये व्याध पास आया तब श्रीकृष्ण को देख बड़ा घबराया और अपने अपराध की क्षमा माँगने लगा।

पर, श्रीकृष्ण व्याध के इस तीर से बच न सके। कुछ क्षण बाद ही उनके प्राण निकल गये। एक युग-निर्माता की इस प्रकार अरण्य में जीवन-लीला समाप्त हो गयी। •

प्रकृति की लीला

□

श्री प्रणव प्रसाद

इस लेखमाला के पूर्व के लेख में हमने यह वचन दिया था कि हम इस लीला का वर्णन उस छोर से आरम्भ करेंगे जिससे वर्तमानयुगीन वैज्ञानिक ने आरम्भ की है।

वैसे तो भारतीय वैज्ञानिक (ब्रह्मविद्) इस छोर की अवहेलना नहीं कर रहा। उसने जब समस्या को अपने सम्मुख रखा तो यह कहा था (स्म जाता जीवाम केन क्व च संप्रतिष्ठाः) हम कहाँ से उत्पन्न हुए हैं, किससे हम जीवित हैं और किसमें हम स्थित हैं ?

प्रश्न उत्पन्न होता है कि हम कौन हैं जो यह प्रश्न कर रहे हैं ? दूसरे शब्दों में वह वैज्ञानिक क्या है जो जगत् के पदार्थों की खोज कर रहा है ? एक सरल-सा प्रश्न है कि भाई, वैज्ञानिक तुम क्या हो ? तुम जो संसार की खोज पर चल पड़े हो ? पहले यह तो जानो कि कौन खोज कर रहा है ?

इस प्रश्न का अनुभव वैज्ञानिक को भी हुआ है। तभी तो उसने इस जगत् के पदार्थों को दो श्रेणियों में बँटा हुआ देखा है। एक श्रेणी में जड़ पदार्थ हैं, इन्हें अंग्रेज़ी में (inanimate) पदार्थ कहते हैं। दूसरी श्रेणी में जीवित पदार्थ हैं, इन्हें ये लोग (animate) पदार्थ कहते हैं।

वैज्ञानिकों ने दोनों के विषय में खोज आरम्भ की हुई है। उसने अपने विज्ञान को दो भागों में बाँट दिया है। एक का नाम उसने (biology) रख दिया है और दूसरी श्रेणी के पदार्थों का नाम उसने (Physics) रखा है।

दोनों विज्ञान अपने विकास में चलते-चलते बहुत दूर तक निकल गये हैं। इस पर भी जीवित पदार्थ (living being) में जीवन तत्त्व जिसे भारतीय ब्रह्म विद् जीवात्मा कहते हैं, वैज्ञानिक उसे पहचान नहीं सके।

वर्तमान युग के वैज्ञानिक प्राणी को एक ही मूल पदार्थ मानकर चले हैं। वह यह समझा है कि शरीर तो जड़ पदार्थों (inart matter) का ही बना है।

अन्तर यह है कि इसकी बनावट (composition) इस ढंग की है कि यह अन्य जड़ पदार्थों से भिन्न प्रतीत होता है।

अतः वर्तमान युग के वैज्ञानिक इस खोज में लगे हैं कि जड़ पदार्थों के संयोग का वह कौन-सा ढंग है जिससे उसमें जीवन के लक्षण आ जाते हैं ?

वैज्ञानिक प्राणी के शरीर का विश्लेषण करते-करते एक पदार्थ 'जीन' तक जा पहुँचा है और वह समझा है कि यह एक प्रकार का रासायनिक संयुक्त पदार्थ है।

इस विषय में हम अपने किसी अन्य लेख में लिखेंगे। वैज्ञानिक जीवन (life) के लक्षण क्या करता है और भारतीय ब्रह्मविद् क्या करता है ? इसे हम यहाँ स्पष्ट कर रहे हैं। आजकल का वैज्ञानिक जीवन के तीन लक्षण बताता है—१. (assimilation) भोजन लेकर उसे शरीर का अंग बना लेना।

२. (resistance) बाहरी घात-प्रतिघात की प्रतिक्रिया।

३. (procreation) अपने जैसी ही सन्तान उत्पन्न करना।

भारतीय विज्ञान प्राणी के शरीर को जीवित नहीं मानता। वह इसे जड़ पदार्थ ही मानता है और प्राणी के शरीर में जीवन के लक्षण उसमें उपस्थित जीवात्मा के कारण मानता है। अतः वह प्राणी के शरीर में जीवन के लक्षण और आत्मा के लक्षण एक सांस में कहता है। अर्थात् दोनों को एक ही बात मानता है। वैशेषिक दर्शन में इस प्रकार वर्णन किया है—

प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराःसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्ना श्चात्मनो लिंगः। (वै० सूत्र—३-१-४)

अर्थात्—प्राण=सांस भीतर लेना। अपान=साँस बाहर फेंकना। निमेष-उन्मेष=आँख खोलना और बन्द करना। जीवन, (ये लक्षण वैज्ञानिकों के हैं) मनोगति=मन की गति। इन्द्रितान्तर-विकाराः=इन्द्रियों के विकार अर्थात् विषय। सुख-दुःख=सुख तथा दुःख का अनुभव। इच्छा=कामना। द्वेष=विरोध। प्रयत्न=कर्म करने का यत्न। यह आत्मा के लक्षण हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि वैज्ञानिकों ने जो जीवन (life) के तीन लक्षण बताये हैं (पाचन क्रिया, सन्तानोत्पत्ति, प्रतिक्रिया) इनमें और वैशेषिक दर्शन के लक्षणों में बहुत समानता है। प्रतिक्रिया (realtion) में प्राण-अपान, निमेष-उन्मेष, इन्द्रियों के विषय और प्रयत्न आ जाते हैं।

वैज्ञानिकों के लक्षणों में मन की गति, सुख-दुःख और प्रयत्न नहीं है। वैज्ञानिकों के लक्षणों में सन्तानोत्पत्ति वैशेषिक के लक्षणों से नहीं है।

न्याय-दर्शन में भी आत्मा के लक्षण लिखे हैं—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति। (न्याय १-१-१०)

इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और चेतना यह आत्मा के लिंग हैं।

वैशेषिक दर्शन और न्याय दर्शन के आत्मा के लिंगों के निरीक्षण करने से यह स्पष्ट है कि वैषेशिक दर्शन में जीवित शरीर के लक्षण भी हैं और शरीर में आत्मातत्त्व के लक्षण भी हैं और न्याय दर्शन के लिंगों में केवल आत्मतत्त्व के ही लक्षण हैं।

और आजकल के वैज्ञानिकों ने जो (living body) जीवित शरीर के लक्षण बताये हैं, वे केवल जीवित शरीर के ही है। उनमें आत्मा के लक्षण नहीं हैं।

शरीर की क्रियाओं के लक्षण जीवात्मा के लक्षण से पृथक् हैं। इस विषय में इतना और समझ लेना चाहिये कि जीवित शरीर (living body) उस शरीर को कहते हैं जिसमें आत्मतत्त्व रहता है। इस पर भी आत्मतत्त्व जीवित शरीर से पृथक् वस्तु है।

इसको इस प्रकार समझना चाहिये जैसे कि चीनी के हण्डे (globe) में बिजली का बल्ब लगा हो। जब बल्ब में बिजली जलती है तो हण्डा भी चमकने लगता है। यह चमकना बिजली के बल्ब के जलने से ही होता है। इस पर भी बिजली का बल्ब हण्डे से पृथक् पदार्थ है।

इसी प्रकार शरीर में जीवात्मा आता है तो इसमें जीवित शरीर के गुण आ जाते हैं। इस पर भी जीवात्मा शरीर से पृथक् है। जब शरीर में जीवात्मा होता है तब भी शरीर जीवात्मा से पृथक् ही है।

इस (biology) विषय को हम किसी अगले लेख के लिए छोड़ते हैं। यहां तो हम जड़ पदार्थों का वर्णन पहले करना चाहते हैं।

प्राणी का शरीर लोहे की डली से भिन्न है। हम अपने अगले लेख में ऐसे पदार्थों को ही लेंगे जो लोहे की डली की भांति ही हैं। •

भारत की सम्पदा

□

श्री स्वामी विवेकानन्द

(निरंजन मुखोपाध्याय द्वारा बंगला 'परिव्राजक'
से संकलित एवं अनूदित)

भूमध्य सागर एवं लोहितसागर के संयोग होने से, योरोप और भारतवर्ष के बीच व्यवसाय-वाणिज्य की अत्यन्त सुविधा हुई है। मानव जाति की उन्नति की वर्तमान स्थिति के लिए जितने कारण प्राचीन काल से काम करते आये हैं, उनमें भारत का वाणिज्य सर्वप्रधान है। अनादि काल से, उर्वरता और वाणिज्य शिल्प में, भारत जैसा देश क्या और है ? दुनिया के जितने सूती कपड़े, पटसन, कपास, नील, लाख, चावल, हीरा, मोती इत्यादि वस्तुओं का व्यवहार जो सौ साल पूर्व पर्यन्त था, वह सभी भारतवर्ष से निर्यात होते रहे हैं। इसके अतिरिक्त रेशमी वस्तु इत्यादि इस देश की तुलना में और कहीं उत्पन्न नहीं होते थे। फिर लवंग, इलायची, मिरची, जायफल, जावित्री इत्यादि नाना प्रकार के मसालों का स्थान भी भारतवर्ष है। अतएव अति प्राचीन काल से ही, जो देश जब भी सभ्य हुआ है, इन वस्तुओं के लिये भारत पर निर्भरशील रहा है। ये दोनों व्यापार प्रधान रूप से चलते थे। एक स्थल मार्ग से—अफगानिस्तान, ईरान देश होकर और दूसरा जल मार्ग से लाल सागर होकर। सिकन्दर ने ईरान, विजय के बाद नियर्कुस नाम के सेनापति को, जल मार्ग से सिन्धु नदी के मुहाने से समुद्र पार कर लोहित सागर होकर रास्ता ढूंढने के लिए भेजा था। बेबीलोन, ईरान, ग्रीस, रोम प्रभृति प्राचीन देशों का ऐश्वर्य भारत के वाणिज्य पर कितना निर्भर करता था, यह बात अधिकांश लोगों को मालूम नहीं है। रोम-ध्वंस के बाद मुसलमानी बगदाद एवं इटलीय विनिस और जेनेवा भारतीय वाणिज्य के प्रधान केन्द्र हुए थे। जब तुर्की लोगों ने रोम राज्य पर अधिकार कर इटली निवासियों का भारतीय वाणिज्य-मार्ग बन्द कर दिया। तब जेनेवा निवासी कोलम्बस (क्रिस्टोफर कोलम्बस) ने अटलांटिक सागर पार, भारत आने का नया रास्ता निकालने का

प्रयत्न किया, परिणामस्वरूप अमेरिका महाद्वीप की खोज हो गई। अमेरिका में पहुँचकर भी कोलम्बस का भ्रम नहीं गया कि यह भारतवर्ष नहीं है। इसीलिये अमेरिका के आदिम निवासी अभी भी रेड इण्डियन नाम से अभिहित होते हैं।

इधर पुर्तगाली लोगों ने भारत आने का नया रास्ता, अफ्रीका घूमकर, खोजा। भारत की लक्ष्मी पहले पुर्तगाल पर प्रसन्न हुई और बाद में फरासी, ओलन्दज, डेनमार्क और अंग्रेजों पर। अंग्रेजों के घरों में भारत का वाणिज्य और राजस्व सभी पहुँचते रहे हैं। तभी अंग्रेज अब सब देशों से ऊपर बड़ा राज्य है। हाँ, अमेरिका प्रभृति देशों में भारतीय सामग्रियाँ अनेक स्थानों पर भारत की अपेक्षा उत्तम उत्पन्न हो रही है, इसीलिये भारत की अब उतनी कदर नहीं है।

योरोपीय लोग यह स्वीकार करना नहीं चाहते। यह बात ये मानना नहीं चाहते, समझना नहीं चाहते कि, इनके धन-सम्पन्नता का प्रधान सहायक व सम्बल भारत है। हम भी समझाने में क्या पीछे हटेंगे? सोचकर देखो बात क्या है? ये जो किसान, मजदूर, ताँति, जुलाहे, चमार, रंगरेज इत्यादि भारत के नगण्य मनुष्यों विजाति-विजित, स्वजाति-निन्दित छोटे जात हैं—वे ही आवहमान काल से नीरव काम करते आ रहे हैं। अपने परिश्रम का फल भी वे नहीं पा रहे हैं। हे, भारत के श्रमजीवि! तुम्हारा नीरव, अनवरत-निन्दित परिश्रम के फलस्वरूप ही बेबीलोन, ईरान, अलेकजैन्द्रिया, ग्रीस, रोम, विनस, जेनेवा, बगदाद, समरकन्द, स्पेन, पुर्तगाल, फरासी, डेनमार्क, ओलन्दज एवं अंग्रेजों की क्रमान्वय में आधिपत्य एवं ऐश्वर्य है। और तुम! कौन सोचता है यह बात? जिनके रुधिर स्राव से मनुष्य जाति की जो कुछ उन्नति—उनका गुणगान कौन करें? लोकजयी धर्मवीर, रणवीर काव्यवीर सबकी आँखों में समाये रहते हैं, सबके पूज्य होते हैं। किन्तु जहाँ कोई नहीं देखता, जहाँ कोई इनकी प्रशंसा नहीं करता, जहाँ सभी घृणा की दृष्टि से देखते, वहाँ पर है अपार सहिष्णुता, अनन्त प्रीति एवं निर्भीक कार्यकारिता। बड़ा काम हाथ में आने से अनेक लोग ही वीर बन जाते हैं। दस हजार जनता की प्रशंसा के लिये कापुरुष भी अश्लेष प्राण त्यागते हैं; नितान्त स्वार्थी भी निष्काम बन जाते है। किन्तु अतिक्षुद्र कार्य में सबके अनजाने में भी, जो वही नि:स्वार्थता और कर्तव्यपरायणता दिखाते हैं, वे ही धन्य—वह तुम—भारत के चिरपददलित श्रमजीवी तुम्हें मैं प्रणाम करता हूं।

भारत-सोवियत-सन्धि : वरदान या अभिशाप

□

प्रो० बलराज मधोक

६ अगस्त, १९७१ को प्रातः नई दिल्ली में जिस भारत-सोवियत मैत्री संधि पर सोवियत विदेश मन्त्री श्री ग्रोमिको और भारत के विदेश मन्त्री श्री स्वर्ण सिंह ने हस्ताक्षर किए, वह भारत की विदेश नीति के विकास में एक निर्णायक मोड़ है। तत्काल इसका जो स्वागत हुआ उसका प्रमुख कारण अब तक अपनाई गई विदेश नीति के कारण भारत का एकाकीपन और पाकिस्तान की युद्ध की धमकियों के कारण जनता में व्याप्त भय की भावना थी। पाकिस्तान और चीन की मैत्री, अमरीका और चीन के बीच प्रेमालाप और अमरीका द्वारा पाकिस्तान को शस्त्र देने की नीति को जारी रखने के कारण अकेलेपन और भय की भावना को बढ़ावा मिला। ऐसे समय पर यह आश्वासन मिलना कि भारत का भी कोई मित्र है, जनसाधारण को रुचिकर लगना स्वाभाविक होगा। इसलिए सन्धि की पहली प्रतिक्रिया सर्वथा अनुकूल रही।

परन्तु जब सन्धि का पूरा मसविदा समाचार-पत्रों में छपा और उसका ग्रोमिको-स्वर्णसिंह संयुक्त विज्ञप्ति के प्रकाश में गहरा अध्ययन किया गया तो बहुतों को लगा कि यह सन्धि एक विषभरा अमृत है जिसमें विष का अंश अधिक है और उसके निरन्तर बढ़ने की आशंका है। फलस्वरूप आज सभी विचारवान् लोग यह सोचने लगे हैं कि यह संधि वास्तव में भारत के लिए वरदान है कि अभिशाप। इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर तो समय ही देगा परन्तु संधि और संयुक्त विज्ञप्ति के विश्लेषण से इस प्रश्न का उत्तर ढूंढने में सहायता अवश्य मिलती है।

इस संधि की निर्णायक धाराएँ ९, १० और ११ हैं। धारा ९ के अनुसार यदि उभयपक्षों में से किसी एक पर आक्रमण या आक्रमण का खतरा होगा तो

ये तुरन्त उसको रोकने या उसका मुकाबला करने के लिए आपस में सलाह करेंगे। धारा १० के अनुसार उभयपक्षों में से कोई भी किसी तीसरे राष्ट्र के साथ गुप्त या खुलकर कोई ऐसी संधि नहीं करेगा जो इस संधि के साथ मेल न खाती हो। धारा ११ के अनुसार उस संधि की अवधि २० वर्ष होगी और यदि अवधि के समाप्त होने से १२ महीने पहले किसी पक्ष की ओर से इसे खत्म करने का नोटिस नहीं दिया जायगा तो इसकी अवधि अपने आप ५ वर्ष के लिए और बढ़ जाएगी।

इन धाराओं से यह स्पष्ट है कि इस संधि ने २० वर्ष के लिए भारत को सोवियत रूस के साथ बाँध दिया है। अब भारत सोवियत रूस के साथ जुड़ गया है और इसे हर मामले में रूस के दृष्टिकोण और हितों का भी विचार रखना होगा। अतः भारत अब तटस्थ देश नहीं रहा इसलिए अब गुटनिरपेक्षता की बात करना और यह कहना कि भारत ने अपनी नीति नहीं बदली आत्मवंचना मात्र है। यह ठीक है कि संधि की धारा ४ में यह कहा गया है कि सोवियत रूस भारत की तटस्थता की नीति का आदर करता है। परन्तु यह केवल मुँह रखने की बात है। सारी संधि का अध्ययन करने के बाद और इसको सोवियत रूस और मिस्र के बीच हुई इसी प्रकार की संधि से तुलना करने के बाद यह मानना पड़ेगा कि इस संधि के बाद भारत को तटस्थ देश नहीं कहा जा सकता।

तटस्थता के खत्म होने पर आँसू बहाने का भी कोई कारण नहीं। आचार्य चाणक्य के अनुसार संसार में हर देश को मित्र और साथी चाहिएँ। अर्थशास्त्र के अनुसार केवल वही देश 'उदासीन' अथवा तटस्थ रह सकता है जो इतना बलवान हो कि उसे न किसी की शत्रुता की चिन्ता हो और न किसी की मित्रता की आवश्यकता हो। आज के संसार में ऐसे देश केवल दो हैं—एक संयुक्त राज्य अमरीका और दूसरा सोवियत रूस। परन्तु ये भी तटस्थ नहीं हैं। अमरीका ने अपने हितों की सुरक्षा के लिए नाटो, सेंटो और सुहार्तो के साथ संधियाँ करके पश्चिमी यूरोप, पश्चिमी एशिया और पूर्व एशिया में अपने साथी बना रखे हैं। रूस ने वारसा संधि के द्वारा पूर्वी यूरोप के कम्युनिस्ट देशों के साथ रिश्ता जोड़ा हुआ है। इन हालात में भारत जैसे दुर्बल देश का अपने आपको तटस्थ अथवा मित्रहीन रखना न तर्कसंगत है और न राष्ट्रहित में ही है। भारत को भी पक्के साथी चाहिएँ जो संकट के समय इसके साथ खड़े हो सकें।

वास्तव में व्यावहारिक रूप में भारत तटस्थता को काफी समय से तिलांजलि दे चुका था। भारत की विदेश नीति सोवियत रूस की विदेश नीति के साथ कई वर्षों से बँध चुकी थी। इस संधि ने उस वस्तुस्थिति को औपचारिक

रूप देदिया है।

परन्तु एक बड़ा वक्त हुआ था। अभी तक व्यवहारिक रूप से भले भारत सोवियत रूस के साथ बँध चुका हो, सैद्धान्तिक और कूटनीतिक दृष्टि से वह स्वतन्त्र था और हर विषय पर स्वतन्त्र मत रख सकता था। अब वह ऐसा नहीं कर सकता। अब यह मानकर चलना होगा कि भारत तटस्थता के युग से निकल उभयपक्षी समझौतों के युग में पदार्पण कर चुका है। यदि यह उभयपक्षी समझौता केवल सोवियत रूस के साथ ही रहा तो भारत शनैः-शनैः पूर्व यूरोप के देशों की तरह रूसी गुट का अभिन्न अंग बन जायगा। भारत के सैनिक और आर्थिक दृष्टि से रूस के मुकाबले में बहुत दुर्बल होने और भारत को रूस पर बढ़ती हुई निर्यात के कारण इसकी संभावना और भी बढ़ गई है। कहने को तो यह बराबरी की संधि है परन्तु वास्तव में न शक्ति में भारत रूस के बराबर है और न यह समानता की संधि है।

यह बात संयुक्त विज्ञप्ति ने स्पष्ट कर दी है। जनसाधारण की समझ में भारत ने यह संधि प्रमुख रूप में बंगला देश की समस्या के समाधान और पाकिस्तान का प्रतिरोध करने के लिए की है। इसीलिए उसने इसका पहले स्वागत भी किया था। परन्तु संयुक्त विज्ञप्ति में न केवल बंगला देश का सही उल्लेख तक नहीं था अपितु उसमें यह भी कहा गया है कि पूर्वी पाकिस्तान का ऐसा राजनैतिक हल निकालना होगा जोकि पाकिस्तान की सारी जनता का समाधान कर सके। इससे स्पष्ट है कि रूस बंगला देश की समस्या सम्पूर्ण पाकिस्तान के अन्तर्गत करना चाहता है और वह पाकिस्तान के विघटन के विरुद्ध। परन्तु हर विचारवान् भारतीय बंगवासी जानता है कि बंगला देश की समस्या का एक मात्र हल जिससे वहाँ से आए ८० लाख अतिथि वापस अपने घरों को जा सकते हैं और बंगला देश को जनता का समाधान हो सकता है वह बंगला देश को पाकिस्तानी उपनिवेशवाद से पूर्व मुक्त है। उसको यह हल स्वीकार नहीं क्योंकि अमरीका की तरह वह भी पाकिस्तान और भारत में संतुलन बनाये रखना चाहता है ताकि भारत महाशक्ति न बन सके। इसलिए यह आशंका बढ़ रही है कि इस संधि के द्वारा रूस ने भारत पर एक और 'ताशकंद' लाद दिया है। इस दृष्टि से यह संधि भारत और बंगला देश की जनता से बहुत बड़ा विश्वासघात है।

इस संधि की अवधि २० वर्ष रखने का भी कोई कारण नहीं था। साधारणतया संधियाँ ४-५ वर्ष के लिए होती हैं। फिर उन्हें बढ़ाया या खत्म किया जा सकता है। भारत २० वर्ष से पूर्व इस संधि से तभी निकल सकता है जब

वह एकतरफा कार्यवाही करे। उस हालत में इस बात की क्या गारंटी है कि रूस भारत के साथ भी 'चेकोस्लोवाकिया' जैसा व्यवहार नहीं करेगा ?

यह ठीक है कि भारत क्षेत्रफल और जनसंख्या में चेकोस्लोवाकिया और हंगरी से बहुत बड़ा है। इसलिए रूस के लिए भारत को उस ढँग से दबाना आसान नहीं होगा। परन्तु भारत में साम्यवादियों और उनके सहपात्रियों को सत्तारूढ़ काँग्रेस दल के अन्दर और बाहर बढ़ती हुई शक्ति को देखते हुए इस संभावना से आँखें बन्द भी नहीं की जा सकतीं। जिस प्रकार भारत में समाजवाद के नाम पर प्रेस के आजादी और मूल अधिकारों पर हमले किए जा रहे हैं, उसे देखते हुए इस संधि ने भारत के लोकतन्त्र और स्वतन्त्र विकास के लिए नए खतरे पैदा कर दिए हैं।

उपरलिखित बातों से यह सिद्ध होता है कि भले इस संधि ने कुछ समय के लिए पाकिस्तान से युद्ध को टाल दिया है। अन्ततोगत्वा यह भारत के लिए वरदान के स्थान पर अभिशाप सिद्ध हो सकता है। इस संभावना से देश को बचाने के लिए यह आवश्यक है कि भारत की सरकार और जनता इस संधि से उत्पन्न खतरों के विषय में पगबंदी करे। उस दृष्टि से तीन बातें आवश्यक है।

पहला यह है कि भारत को तुरन्त इसी प्रकार की द्विपक्षी संधियाँ और देशों विशेष रूप से जापान, आस्ट्रेलिया और इंडोनेशिया के साथ जिनके भारत के हितों से मेल खाते हैं करने का प्रयत्न करना चाहिए। साथ ही संभव हो तो ऐसी संधि अमरीका के साथ भी कर लेनी चाहिए। शिष्टमण्डल अब मृतप्राय हो चुका है। इसलिए ब्रिटेन के साथ भी इसी प्रकार की द्विपक्षी संधि करने पर विचार होना चाहिए। पश्चिम एशिया में इज़ाइल के साथ सम्बन्धों को दृढ़ करना चाहिए। यदि भारत ऐसा कर ले तो इस संधि द्वारा रूस का दुमछल्ला बनने की संभावना बहुत कुछ कम हो सकती है।

दूसरे, भारत को अपनी निर्भरता रूस पर कम करनी चाहिए। जब तक भारत रूस, अमरीका और अन्य देशों की सहायता पर निर्भर रहेगा वह अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सकेगा। जब तक चीन, रूस के साथ बंधा रहा और उसकी सहायता पर निर्भर रहा उसे किसी ने नहीं पूछा। जब रूस से नाता तोड़कर चीन ने अपने बल पर अपनी शक्ति बनाई और अणु आयुधों का निर्माण किया सभी उससे डरने लगे और अमरीका भी उसकी मित्रता को इच्छुक हो गया। 'भय बिन होत न प्रीति' के वास्तविक अर्थ को समझे बिना भारत को समानता के आधार पर साथी नहीं मिल सकते।

[शेष पृष्ठ ३९९ पर]

दस वर्ष पूर्व

पाकिस्तान में रहने वाले हिन्दुओं की जो दुर्दशा पाकिस्तान बनने से पूर्व और उसके बाद हुई और जिस बुरी दशा में उनको वहाँ से धकेलकर निकाला गया उसे स्मरण कर आज भी रोना आता है और पन्द्रह अगस्त का यह दिन सदा उस दुर्दिन और दुर्दशा का प्रतीक रहेगा। ···यह कहा जाता है कि कुछ भी हो अब तो हम स्वतन्त्र हैं और अपना भविष्य बनाने के लिए भी हम स्वतन्त्र हैं। किन्तु हमें इसमें सन्देह है। देश के द्वार को शत्रुओं के हाथ में देकर स्वयं को स्वतन्त्र कहने वालों की बुद्धि पर हमें सन्देह होता है। ···पाकिस्तान के भय से हम चीन से नहीं लड़ पाते और चीन के भय से पाकिस्तान से।···

प्रान्तीयता, भाषा-विवाद, व्यापार और औद्योगीकरण की अन्धी प्रतिद्वन्द्विता, अध्यात्म से पराङमुखता और भौमिकता के प्रति अत्यधिक लगाव यह देश का चरित्र है। ···१४ वर्ष की स्वतन्त्रता के काल में सहस्त्रों मील देश का भाग हम से छिन गया और हम देखते रह गये।···

ये स्वतन्त्रता के लक्षण हैं क्या? आज भी विश्वविद्यालय का प्राध्यापक तुलसी, बालमीकि, कालिदास, व्यास, गौतम, कणाद आदि नामों से तो सर्वथा अपरिचित है और शेक्सपियर, मिल्टन, मार्क्स, फ्रायड, गोर्की और टाल्सटाय की जयन्तियाँ मनाने के लिये उत्सुक है।···

हम रूस के मित्र हैं। चीन हमारा भाई है। तिब्बत से हमारा कोई लेना-देना नहीं। माओ हमारा प्रतिष्ठित अतिथि है, च्यांगकाई-शेक हमारा शत्रु। अमेरिका के राष्ट्रपति से हम सहमत नहीं किन्तु खुश्चेव से हमारा किसी प्रकार का मतभेद नहीं। क्या इसी को स्वतन्त्रता कहते हैं? क्या इसी को स्वतन्त्र देश की विदेश नीति कहते हैं? क्या यही तटस्थता की नीति है?

(पूर्वी बंगाल से आये और निरन्तर आने वाले हिन्दू शरणार्थियों के प्रसंग में और एक ओर पाकिस्तान और दूसरी ओर चीन से युद्ध की आशंका के सन्दर्भ में दस वर्ष पूर्व का यह उल्लेख कितना यथातथ्य है?)

(शाश्वत वाणी सितम्बर १९६१)

समाचार-समीक्षा

□

'भारत स्वामिनी' इन्दिरा गांधी

दवी इन्दिरा को यह उपाधि किसी वज्रमूर्ख कांग्रेसी ने नहीं अपितु स्वयं को हिन्दू कहने वाले, इस देश को भारतवर्ष की अपेक्षा हिन्दुस्तान कहने में अधिक गौरव अनुभव करने वाले, खण्डित देश को अखण्ड करने का संकल्प करने वाले, भारत को भारत कहने वालों को सैक्यूलर मानने वाले, भारतवासियों को हिन्दुओं की अपेक्षा भारतीय कहने वालों को हिन्दू-विरोधी मानने वाले, न जाने और क्या-क्या मानने वाले अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के वर्तमान पीठाधीश्वर श्री पं० ब्रजनारायण ब्रजेश ने दी है।

हिन्दू महासभा की कांग्रेस भक्ति और श्री ब्रजेश की इन्दिरा भक्ति की ओर इससे पूर्व भी हम पाठकों का ध्यान आकर्षित कर चुके हैं और अपने इस पुनीत कर्तव्य में अपने कतिपय सुबन्धुओं का भृकुटी-कटाक्ष भी हमने सहन किया है। हिन्दु महासभा का जनसंघ विरोध कुछ समझने की बात हो सकती है। किन्तु कांग्रेस भक्ति और इन्दिरार्चन क्यों यह हम अभी तक नहीं समझ पाये। कदाचित जनसंघ विरोध ही इसका मुख्य कारण हो।

अंग्रेजी समाचार एजेंसी प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया ने यह समाचार प्रसारित किया है—"हिन्दू महासभा के अध्यक्ष पण्डित ब्रजनारायण ब्रजेश ने प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को 'भारत की स्वामिनी' बताते हुए कहा कि उनके हाथ अखण्ड हिन्दुस्तान की स्थापना के लिए मजबूत किये जाने चाहिये।" इससे बलिदानियों में वरेण्य, स्वातन्त्र्य-वीर सावरकर की आत्मा को कितना गहन आघात पहुँचा होगा इसकी कल्पना कदाचित् पण्डितजी एवं उनके चाटुकार साथी कर पाते ?

हिन्दू महासभा के इन कर्णधारों को 'भारतीय' शब्द में सैक्युलरिज़्म की गंध आती है। किन्तु स्वयं जब पंडितजी 'भारत की स्वामिनी' शब्द का प्रयोग करते हैं तो वे तथा उनके अनुयायी यह क्यों भूल जाते हैं कि यदि देश भारत हो

सकता है तो उसके निवासी भारतीय क्यों नहीं हो सकते। जबकि हिन्दू शब्द कहीं भी शास्त्र-सम्मत नहीं। हिन्दुस्तान के निवासी यदि हिन्दू कहला सकते हैं तो भारत के निवासी भारतीय ही कहे जायेंगे न कि कुछ और। भारत के प्रसंग में भारतीय को हिन्दू मानने में उनको क्यों संकोच होता है ? क्या हिन्दू महा-सभाध्यक्ष एवं उनके सहयोगी इस प्रश्न पर इन्दिरा के इन्द्रजाल से इतर अवस्था में विचार करेंगे ?

प्रचारित प्रेस विधेयक

समाचार पत्रों के सरकारीकरण की चर्चा इन दिनों जोरों पर है। किन्तु इसकी सम्भावना मध्यावधि निर्वाचन के दिनों में ही प्रकट हो रही थी जब देवी इन्दिरा कहा करती थी कि समाचार पत्र उसका विरोध कर रहे हैं। इस प्रसंग में वह समाचारपत्रों की काफी प्रताड़ना किया करती थी। निर्वाचन जीतने के तुरन्त बाद देवी इन्दिरा की सहयोगिनी, वामापन्थानुयायिनी किन्तु अरविन्द की भक्त नन्दिनी शतपथी ने भी समाचार पत्रों पर विपथगमन का आरोप लगाते हुए इसी दिशा की ओर संकेत किया था।

विधेयक, जो अभी स्पष्ट नहीं है, उसके द्वारा पत्रों की प्रबन्ध-व्यवस्था में श्रमजीवी पत्रकारों एवं गैर-पत्रकार कर्मचारियों को ५० प्रतिशत प्रतिनिधित्व प्रदान किया जायेगा। जिसका अभिप्राय होगा 'दायित्व बिना नियन्त्रण'। और दायित्व बिना नियन्त्रण क्या प्रबन्ध करेगा, इसको सरकार भले ही समझने की कोशिश न करे किन्तु जो भुक्त-भोगी हैं वे भली प्रकार जानते हैं कि व्यवस्था के नाम पर जो अव्यवस्था फैलेगी उसको रोकने के लिए कदाचित सरकार को फिर एक अन्य विधेयक न प्रस्तुत करना पड़ जाय।

यह माना जा सकता है कि भारत के समाचार पत्र पत्रिकारिता के क्षेत्र में आदर्श समाचार पत्र नहीं और उनमें सुधार की नितान्त आवश्यकता है, किन्तु उसके लिए सरकार ने जो मार्ग अपनाया है उससे सुधार की सम्भावना कम और बिगाड़ की सम्भावना अधिक है। दायित्व बिना नियन्त्रण के कारण प्रबन्ध कार्य में राजनीति इतनी बढ़ जायेगी कि कार्य करना सुगम नहीं होगा।

जो सरकार समाचार पत्रों के लिये विधेयक बनाने जा रही है उसी सरकार के नियन्त्रण में आकाशवाणी भी है किन्तु उसको निगम के अन्तर्गत देने के लिये सरकार राजी नहीं है। क्योंकि ऐसा करने से उस पर से सरकार का एका-धिकार समाप्त हो जाता है। यदि किसी रोग विशेष की एक औषध जान ली जाती है तो फिर उन सबको उसी का सेवन क्यों नहीं कराया जाता जो कि उस-

से पीड़ित हैं ?

हमारी दृष्टि में इस प्रस्तावित विधेयक से सरकार का कलुषित मन्तव्य ही प्रकट होता है । जिस प्रकार प्रत्येक उद्योग के सरकारीकरण के लिये सरकार स्वयं को प्रतिबद्ध मान रही है उसी प्रक्रिया में वह समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता का हनन करने के लिए कटिबद्ध प्रतीत होती है ।

विशेषाधिकार श्रौर संसद सदस्य

जब से इन्दिरा गांधी का शासन स्थापित हुश्रा है तब से विशेषाधिकारों की चर्चा इस श्रथवा उस रूप में निरन्तर रही है । इन्दिरापक्षीय संसद सदस्य इसके श्रगुश्रा रहे हैं । सर्वोच्च न्यायालय का विशेषाधिकार उन्हें स्वीकार नहीं, भूत-पूर्व राजा-महाराजाश्रों के विशेषाधिकार उन्हें सह्य नहीं, समाचारपत्रों के विशेषाधिकार उन्हें मान्य नहीं, सुरक्षाव्यवस्था की गोपनीयता का विशेषाधिकार उनको ग्राह्य नहीं, श्रौर श्रभी सुना गया है कि सिविल सर्वेन्ट्स के विशेषाधिकारों को भी वे समाप्त करने के लिए एक विधेयक प्रस्तुत करने वाले हैं ।

किन्तु इस विषय में यह स्मरणीय है कि उपरिलिखित विशेषाधिकारों के विरोधी श्रपने विशेषाधिकारों के लिये इस प्रकार लड़ते-झगड़ते देखे एवं सुने गये हैं कि मछली बाजार में भी कदाचित ही उतना कोलाहल होता हो । दिल्ली दुग्ध वितरण योजना से दूध की बोतल का विशेषाधिकार उन्हें चाहिये, नियन्त्रित वस्तुश्रों की उपलब्धि का विशेषाधिकार उन्हें चाहिये, रेल-यात्रा का विशेषाधिकार उन्हें चाहिये, श्रौर श्रब तो दिल्ली में मकान के लिये भूमि लेना भी उनका विशेषाधिकार बनने जा रहा है, उनके बच्चों को पाठशालाश्रों एवं विद्यालयों में प्रवेश का उनका विशेषाधिकार कोई छीन नहीं सकता । भाषण का विशेषाधिकार तो वे परमात्मा से पट्टे में लिखाकर लाये थे श्रौर भाई-भतीजावाद नेहरू से उनको विरासत में मिला ही है । इसका सबसे ताजा एवं ज्वलंत उदाहरण इन्दिरा-पुत्र संजय गांधी को छोटी कार बनाने का लाइसेंस दिये जाने के सम्बन्ध में स्वयं इन्दिरा गांधी द्वारा दिया गया वक्तव्य, भाषण श्रथवा स्पष्टीकरण, जो कुछ भी उसे कहा जाय, वह है ।

दूसरे के विशेषाधिकार का हनन करने वाले ये सदस्य क्या स्वयं के विषय में भी कभी कुछ सोचेंगे ? श्रथवा श्रन्यों के श्रधिकार श्रपहरण श्रौर स्वयं के श्रधि-कार संरक्षण में ही वे श्रपने कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं ?

सरकारी समाजवाद का उदाहरण

विगत लोक सभा निर्वाचन की भारी विजय के बाद इन्दिरा कांग्रेस को प्रथम पराजय दिलाने वाले नागपुर से निर्वाचित संसद सदस्य श्री धोते ने हाल में ही रहस्योद्घाटन किया है कि महाराष्ट्र के वर्तमान मुख्यमन्त्री श्री नाईक, जो श्री धोते के जिले के ही निवासी हैं उनकी समाजवाद में कितनी आस्था है।

मुख्यमन्त्री बनने से पूर्व श्री नाईक के पास केवल १०० एकड़ भूमि थी और अब उनके पास १२०० एकड़ भूमि है। यवतमाल जिले के पुसांड में ३५ लाख की लागत से उन्होंने एक अमरीकी ढंग का बंगला बनवा लिया है। २० लाख रुपये की लागत का दूसरा बंगला गाहुली में तथा डेढ़ लाख का तीसरा बंगला कोपाड़ा में बनवाया है। पूसाड़ बंगले का फर्श मकराने के पत्थर का है और आयातित मूल्यवान वस्तुओं से उसको सुसज्जित किया गया है। उनका कहना है कि केवल उसके फर्नीचर में ही पाँच लाख रुपया व्यय किया गया है। इन बंगलों और कोठियों के अतिरिक्त शैल्यूग्राम स्थित उनके अंगूरों के उद्यान के मध्य भी ३५ हजार की लागत का एक छोटा-सा मकान और भी है। श्री धोते का कथन है कि विगत ६ वर्षों में अपने परिवार के विभिन्न सदस्यों के नाम से श्री नाईक ने ११६ लाख रुपया एकत्रित कर लिया है।

श्री धोते ने प्रधानमन्त्री को पत्र लिखकर केन्द्रीय जाँच ब्यूरो द्वारा समाजवाद के इस अनुकरणीय उदाहरण की जाँच की माँग की है। जाँच कैसी होगी, होगी भी अथवा नहीं, यह भविष्य का विषय है। •

[पृष्ठ ३६४ का शेष]

तीसरे, भारत की जनता और सरकार को देश के अन्दर कम्यूनिस्ट पार्टी से सावधान रहना होगा। यह सर्वविदित है कि भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी भारत में रूस का खेल खेलती है जिस प्रकार इस संधि के बाद इस दल ने बंगला देश के सम्बन्ध में अपनी नीति बदली है उससे हर किसी को इस संधिजनक खतरों का पता लग जाना चाहिए। रूस और कम्यूनिस्ट पार्टी का प्रयत्न होगा कि इस संधि की आड़ में वे भारत के आर्थिक और राजनीतिक जीवन तथा प्रशासन पर अपना प्रभाव बढ़ाकर भारत को कम्यूनिस्ट संसार में शामिल कर ले। यदि वे ऐसा करने में सफल हो गए तो यह संधि भारत की बर्बादी और लोकतन्त्र की हत्या का कारण बन जायगी।

यदि भारत की जनता और सरकार चाहती है कि यह संधि भारत के लिए अभिशाप न बने तो उसे उपरिलिखित पेचीदगियाँ अभी से करनी चाहिएँ। •

दशहरा—दीपावली के शुभ अवसर पर

हर वर्ष की भाँति इस वर्ष पुन: उपहार-योजना चला रहे हैं। पाँच नये पाठकों को पत्रिका एक वर्ष के लिए उपहार में दीजिए। आप पाँच सम्बन्धियों, मित्रों व परिचितों के पते लिख भेजिए, जिन्हें आप पत्रिका एक वर्ष के लिए उपहार में देना चाहते हैं। इनका शुल्क केवल रु० २० (बीस रुपये) आप हमें भेजें और हम उन पाँच पाठकों को वर्ष भर पत्रिका आपकी ओर से भेजते ही रहेंगे तथा आपको अपनी ओर से—

एक अनुपम उपहार भेजेंगे

१. उपहार में आप पत्रिका में विज्ञापित प्रकाशनों में से कोई भी एक अथवा अधिक अपने पसन्द की चुनी हुई चार रुपये मूल्य की पुस्तकें मँगवा सकेंगे। भेजने का व्यय लगभग १.२० भी हम देंगे। पाँच व्यक्तियों का शुल्क भेजने पर चार रुपये तथा आठ व्यक्तियों का शुल्क भेजने पर ८ रुपये मूल्य की पुस्तकें उपहार में आप मँगवा सकते हैं।

२. शुल्क मनीआर्डर द्वारा भेजें; पाठकों के नाम तथा पते स्पष्ट लिखें, उपहार में जो पुस्तक आप मँगवाना चाहें, आप उसका नाम लिख भेजें। नाम न आने पर हम अपनी पसन्द की कोई पुस्तक भेज देंगे जो बाद में परिवर्तन नहीं की जा सकेगी।

शाश्वत वाणी

३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

संरक्षक सदस्य

१. केवल एक सौ रुपये भेजकर शाश्वत संस्कृति परिषद् के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बन कर रहेगा।

शाश्वत संस्कृति परिषद् का उद्देश्य

विशुद्ध भारतीय तत्त्व दर्शन पर सम्यक् गवेषणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उनके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख सभी समस्याओं का सुलझाव प्रस्तुत करना।

संरक्षक सदस्यों की सुविधाएं

१. परिषद् के नवीनतम प्रकाशन तथा आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। नवीन प्रकाशन हैं—इतिहास में भारतीय परम्पराएँ (मूल्य १० रुपये), हिन्दू का स्वरूप (मूल्य ०.५०) आगामी प्रकाशन हैं—ब्रह्मसूत्र हिन्दी विवेचना (मूल्य ३० रु०) १५ सितम्बर तक।

२. परिषद् की पत्रिका शाश्वत वाणी आप जब तक सदस्य रहेंगे प्राप्त कर सकेंगे।

३. परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ (सूची इसी अंक में अन्यत्र देखें) आप २५ प्र० श० छूट के साथ प्राप्त कर सकेंगे।

४. जब भी आप चाहेंगे एक मास पूर्व सूचना देकर अपनी धरोहर वापस ले सकेंगे। धन मनीआर्डर द्वारा भेज सकते हैं। किन्तु छः मास के भीतर ही धरोहर वापस माँगने वाले महानुभावों को वार्षिक शुल्क के पाँच रुपये तथा निर्मूल्य दिये गए प्रकाशनों का मूल्य काटकर ही राशि वापस की जा सकेगी।

शाश्वत संस्कृति परिषद्

३०/९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे)-नई दिल्ली-१

शाश्वत संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं विकास आर्ट प्रिंटर्स शाहदरा-दिल्ली-३२ में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।

वर्ष ११—अंक १२ दिसम्बर, १९७१ रजि० क्र० ६६८९/६०

विक्रमी संवत् २०२८ ईसवी सन् १९७१ सृष्टि संवत् १,९६,०८,५३,०७०

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणा: रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥
ऋ०-१०-१२३-३

विषय-सूची

शाश्वत संस्कृति परिषद का मासिक मुखपत्र

एक प्रति ०.५०
वार्षिक ५.००

सम्पादक
अशोक कौशिक

संरक्षक सदस्य

१. केवल एक सौ रुपये भेजकर शाश्वत संस्कृति परिषद् के संरक्षक सदस्य बनिये। यह रुपया परिषद् के पास आपकी धरोहर बनकर रहेगा।

शाश्वत संस्कृति परिषद् का उद्देश्य

विशुद्ध भारतीय तत्त्व दर्शन पर सम्यक् गवेषणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उनके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख सभी समस्याओं का सुलझाव प्रस्तुत करना।

संरक्षक सदस्यों की सुविधाएं

१. परिषद् के नवीनतम प्रकाशन तथा आगामी सभी प्रकाशन आप बिना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। नवीन प्रकाशन है—ब्रह्मसूत्र : हिन्दी विवेचना (मूल्य ३० रु०)

२. परिषद् की पत्रिका शाश्वत वाणी आप जब तक सदस्य रहेंगे प्राप्त कर सकेंगे।

३. परिषद् के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ (सूची इसी अंक में अन्यत्र देखें) आप २५ प्र० श० छूट के साथ प्राप्त कर सकेंगे।

४. जब भी आप चाहेंगे एक मास पूर्व सूचना देकर अपनी धरोहर वापस ले सकेंगे। धन मनीआर्डर द्वारा भेज सकते हैं। किन्तु छः मास के भीतर ही धरोहर वापस माँगने वाले महानुभावों को वार्षिक शुल्क के पाँच रुपये तथा निर्मूल्य दिये गए प्रकाशनों का मूल्य काटकर ही राशि वापस की जा सकेगी।

शाश्वत संस्कृति परिषद्

३०/९० कनाट सरकस (मद्रास होटल के नीचे) नई दिल्ली-१

शाश्वत वाणी

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणाः रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ।।
ऋ०-१०-१२३-३

संरक्षक		सम्पादक
गुरुदत्त		अशोक कौशिक
व्यवस्थापकीय-कार्यालय	वर्ष ११ अंक १२	सम्पादकीय कार्यालय
३०/९०, कनाट सरकस,		७ एफ, कमला नगर,
नई दिल्ली-१		दिल्ली-७

सम्पादकीय

केवल अपनी ही बात

इस अंक के साथ 'शाश्वत वाणी' अपने जीवन के एकादश वर्ष पूर्ण करेगी। इस अवधि में पत्रिका की जो उपलब्धियाँ हैं, उससे पाठक भली-भाँति अवगत हैं। उस सम्बन्ध में अपने मुख से कुछ कहना उपयुक्त नहीं होगा। कठिनाइयों एवं बाधाओं के झंझाओं में भी हमारे सहयोगियों ने हमारा साथ निभाया इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

विगत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी हमने एक विशेषांक प्रकाशित करने का प्रयत्न किया था मध्यावधि चुनाव विशेषांक। हमारा विचार था कि वर्ष में एक और स्थायी विशेषांक प्रकाशित करेंगे किन्तु कुछ अनिवार्य कारणों से यह सम्भव नहीं हो पाया। पाठकों का यदि सहयोग प्राप्त होता रहा तो आगामी वर्ष इस कमी की पूर्ति कर दी जावेगी।

नवम्बर अंक में अपने मुख्य लेख में हमने धर्म-निरपेक्षता एवं धर्म-ग्रंथ की ओर संकेत किया था। हमारा विचार इसको लेखमाला के रूप में प्रकाशित करने का था। किन्तु अब उपयुक्त यही समझा गया है कि नये वर्ष के नये अंक

से इस विषय पर विशद विचार किया जाय। अतः जिन किन्हीं पाठकों को संशयों के समाधान की अपेक्षा है उन्हें कुछ समय और प्रतीक्षा करनी होगी। 'धर्म' की आज विस्तार से व्याख्या की आवश्यकता है और हम उस आवश्यकता की पूर्ति का प्रयत्न करेंगे।

पत्रिका के स्थायी एवं सामयिक सभी लेखकों के हम आभारी हैं कि समय-समय पर अवसरानुकूल सामग्री भेजकर उन्होंने पत्रिका को सुरुचिकर बनाने में हमें सहयोग दिया है।

पत्रिका के ग्राहकों के भी हम आभारी हैं कि अपना वार्षिक शुल्क वे बिना किसी 'ननु नच' के यथावसर स्वयंमेव भेज दिया करते हैं, स्मरण कराने का अवसर बहुत कम आता है।

वर्षानुवर्ष ग्राहक संख्या में थोड़ी बहुत वृद्धि होती रहती है किन्तु कभी-कभी पूर्व उत्साह की कमी खटकती है। उत्साह की वह कमी किस कारण है इसका आभास हम नहीं पा सके। अन्यथा हमने अनुभव किया कि विगत वर्षों में 'शाश्वत वाणी' के ऐसे भी कतिपय पाठक थे जो २०-३० ग्राहक एकाकी ही बना लिया करते थे। संरक्षक सदस्यों की विगत वर्ष अनुपात में कम ही वृद्धि हुई है।

हम उन पाठकों के अत्यन्त आभारी हैं कि जो हमें अपने परिवार का ही एक सदस्य समझकर अपने संशयों का निवारण पत्र-व्यवहार द्वारा करवाने का प्रयत्न करते हैं। इसी निमित्त कभी परस्पर कुछ शास्त्रचर्चा भी हो जाती है।

देश, जाति और धर्म तीनों ही संकटग्रस्त हैं। इस अवसर पर हमारा क्या कर्तव्य है इसकी ओर संकेत करने का हमारा सदा प्रयत्न रहता है। पाठक अपने कर्तव्य के प्रति सजग रहें इस दिशा में भी हमारा प्रयास है। तदपि हमारा विनम्र निवेदन है कि यदि प्रमाद, भ्रम अथवा भूलवश कभी हम अपने कर्तव्य से च्युत होने लगें तो सहृदय एवं सुविज्ञ पाठक समय पर हमें सचेत करने में किंचित भी संकोच न करें।

पत्रिका के कलेवर को देखकर पाठक सहज ही अनुमान लगा सकेंगे कि यह आत्मनिर्भर नहीं है। वास्तव में यह ग्यारह वर्ष से निरन्तर घाटे में चल रही है। इस घाटे की पूर्ति सदा हमारे संस्थापक संरक्षक श्रद्धेय वैद्य गुरुदत्तजी ने अपनी निजी आय से की है। विगत कुछ वर्षों से उन्होंने अपनी रचनायें पत्रिका को प्रदान कर दी हैं उन ग्रन्थों की आय से यह क्षति-पूर्ति हो रही है। अब तक कुल मिलाकर श्रद्धेय वैद्यजी ने १४ महान् ग्रन्थ पत्रिका को प्रदान किये हैं।

अपनी स्थिति स्पष्ट करने का हमारा अभिप्राय पाठक किसी प्रकार अन्यथा न समझें। अपनों से ही अपनी अन्तरंग बात की जा सकती है। इस कृत्य को भी

हम कर्तव्य की ही संज्ञा देते हैं। परस्पर सोचना-समझना सदा श्रेयस्कर होता है।

कोई भी कार्यालयीय सदस्य पत्रिका का वेतन भोगी नहीं है। सभी सहयोग एवं सहकारिता की भावना से कार्य कर रहे हैं और न पत्रिका का कोई किराये का कार्यालय ही है। किन्तु सबसे बड़ी कभी जो हमें खटकती है वह यह कि अपने सीमित साधनों के कारण हम अपने विद्वान लेखकों को कभी भी कुछ भेंट नहीं कर पाते। तदपि लेखकों की हम पर कृपा बनी रहती है, यह हमारा सौभाग्य है और हमारे पाठकों का भी। भविष्य में हम इस विषय में कुछ कर पावें इस योजना पर भी विचार होना चाहिये।

जैसा कि हमने ऊपर संकेत किया है देश, जाति एवं धर्म इस समय संकट-ग्रस्त हैं। देशवासियों में कर्तव्यपरायण जन की कमी दृष्टिगोचर होती हैं। भारतवासी कर्तव्य विमुख स्वभाव के प्राणी बनते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में हमारा दायित्व और बढ़ जाता है। हमारे दायित्व से हमारा अभिप्राय समस्त शाश्वत वाणी परिवार से है। अतः अंत में विनम्र प्रार्थना है कि हमारा प्रत्येक सदस्य स्वयं अपने कर्तव्य के प्रति जागरुक रहकर अपने समीपवर्ती जन को भी इसके लिये जागृत करने की तत्परता दिखाये अन्यथा देश की इस डूबती नौका को उबारना अत्यन्त कठिन हो जावेगा।

सजातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्

'शाश्वत वाणी' के पाठकों को यह जानकर अपार हर्ष होगा कि पत्रिका के संस्थापक संरक्षक, लोकप्रिय उपन्यासकार तथा विचारक वैद्य गुरुदत्तजी का इसी मास ८ दिसम्बर को ७८वाँ जन्म दिवस है। न केवल गल्प साहित्य द्वारा अपितु दशाधिक अन्य गहन चिन्तनपरक ग्रन्थों का प्रणयन कर श्रद्धेय वैद्यजी ने भारतीय संस्कृति एवं धर्म की जो सेवा की है वह अतुलनीय है। हिन्दी का पाठक फिर चाहे वह साहित्य का हो अथवा शास्त्र का वैद्यजी की वाणी से अभिषिक्त होकर आज स्वयं को धन्य अनुभव कर रहा होगा। ऐसे मनीषी की जितनी प्रशंसा, अभिनन्दन एवं अभिवादन किया जाय वह अपूर्ण ही होगा। धर्म और संस्कृति को उनकी जो देन है उसका प्रतिदान किसी एक के वश की बात नहीं हैं।

दो वर्ष पूर्व जब उन्होंने अपने जीवन के ७५ वर्ष पूर्ण किये थे दिल्ली के कतिपय साहित्य-प्रेमियों एवं संस्कृतनिष्ठों के सहयोग से एक अभिनन्दन समिति गठित कर उपराष्ट्रपति डा० गोपाल स्वरूप पाठक द्वारा उनके सम्मान में एक

[शेष पृष्ठ ४९९ पर]

अन्तर्राष्ट्रीय हलचल

□

श्री आदित्य

चीन और संयुक्त राष्ट्रसंघ

यदि यह कहा जाये कि अक्टूबर सन् १९७१ में भूतल पर एक तूफ़ान आया है तो अनुचित नहीं होगा। इस तूफ़ान ने भूमण्डल की राजनीति में ऐसे परिवर्तन उत्पन्न किये जिनका दूरगामी परिणाम होने की सम्भावना है।

राष्ट्रसंघ की जनरल असेम्बली ने न केवल यह निश्चय किया है कि कम्युनिस्ट चीन राष्ट्रसंघ का सदस्य है, वरंच यह भी कि ताईवान राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं।

यों तो पहले भी राष्ट्रसंघ के महासचिव वामपंथियों की ओर झुके हुए प्रतीत होते थे। मिस्टर यू थाण्ट का व्यवहार अरब-ईस्राइल संघर्ष में, भारत-पाकिस्तान युद्ध में और अन्य भूमण्डल में चल रहे संघर्षों में न केवल अयुक्तिसंगत रहा है, वरंच वामपथियों के पक्ष में भी रहा है। हम वामपंथी उनको ही समझते हैं जो दिमाग से अधिक पेट के अधीन काम करते हैं। तानाशाही अथवा सामाजिक न्याय सर्वथा अयुक्तिसंगत और सामयिक शारीरिक सुविधाओं को पूर्ण करने के ही उपाय हैं।

अरब-ईस्राइल संघर्ष में, भारत-पाकिस्तान युद्ध में, रूस-युगोस्लावाकिया सैनिक आक्रमण में तथा रोम-पोलिश विवाद में राष्ट्रसंघ के सैक्रेटरी जनरल का व्यवहार हमारे उक्त कथन को सत्य सिद्ध करता है कि वह वामपंथ की ओर झुकता रहा है।

हम यह जानते हैं कि महासचिव राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद् की सम्मति के बिना कुछ नहीं कर सकता। इसी कारण जब हम महासचिव के व्यवहार की बात कहते हैं तो वास्तव में सैक्युरिटी कौंसिल (सुरक्षा परिषद्) की ही बात कह रहे हैं।

हमारा यह कहना है कि सैक्युरिटी कौंसिल का पहला व्यवहार भी अत्यन्त

अयुक्तिसंगत था और अब चीन के सुरक्षा परिषद् में सम्मिलित होने से भूमण्डल से प्रजातन्त्र की अर्थी उठाने का प्रबन्ध हो रहा है।

यदि प्रजातन्त्र के स्थान पर कोई सुधार-योजना उपस्थित होती तो कहा जा सकता था कि मानव समाज किसी स्थायी शान्ति की दिशा में जा रहा है। परन्तु यह तो मध्यकालीन अज्ञान और अन्धकार की ओर पग उठाना ही प्रतीत हुआ है।

तानाशाही अर्थात् एक अथवा दो-तीन व्यक्तियों को लाखों, करोड़ों जन-समुदायों पर अपनी इच्छा का शासन चलाना पृथिवी पर कोई नई घटना नहीं। यह कई बार पहले भी व्यवहार में आ चुकी है और इसका परिणाम कभी भी सुखद नहीं हुआ। तैमूर, नादिरशाह इत्यादि से लेकर हिटलर, मुसोलिनी तक तानाशाही का इतिहास ज़ोरो-जुल्म से भरा हुआ है। चीन और रूस की तानाशाही तैमूर और महमूद की तानाशाही से भिन्न प्रतीत नहीं हुई।

हम प्रजातन्त्र को भी किसी प्रकार से आदर्श-शासन पद्धति नहीं मानते। इस पर भी तानाशाही से तो इसे बहुत ही श्रेष्ठ मानते हैं। हमें प्रजातन्त्र में दोष यह अनुभव होता है कि यह भी बुद्धि से रहित विधान है। इसमें जनता अपने को राजा समझती है, परन्तु वास्तव में अपने मस्तिष्क पर उनको बैठा लेती है जिनके समाघोष सुख और भोग का आश्वासन देने में सफल हो जाते हैं। प्रजातन्त्र अन्त में दासता की ओर ले जाने वाली पद्धति ही है। कारण यह कि इसमें अविद्वानों और अयोग्यों के हाथ में सत्ता सौंपना होता है।

कुछ भी हो, हमें तो यही प्रतीत होता है कि भूतल पर मानव की बढ़ रही जनसंख्या के संहार का प्रबन्ध मानव स्वयंमेव ही कर रहा है।

चीन के राष्ट्रसंघ में सम्मिलित होने पर तो हम किसी प्रकार की आपत्ति नहीं कर रहे। हाँ, चीन को सुरक्षा परिषद् में स्थान मिलने पर हमें आपत्ति है। सुरक्षा परिषद् में स्थायी स्थान उनको मिला था जिन्होंने द्वितीय विश्व-युद्ध को जीता था। द्वितीय विश्वयुद्ध जीतने में माओ की चीन का हाथ नहीं था। इस कारण इस चीन का सुरक्षा परिषद् में स्थायी स्थान किसी भी प्रकार युक्तियुक्त आधार पर नहीं है।

यों तो रूस ने भी द्वितीय विश्वयुद्ध में कोई मानयुक्त व्यवहार नहीं अपनाया था। इसने जर्मनी को न केवल युद्ध आरम्भ करने की स्वीकृति दी थी, वरंच उस स्वीकृति की कीमत भी माँगी थी। हिटलर को पोलैण्ड पर आक्रमण की स्वीकृति देने का परिणाम रूस अभी तक भोग रहा है। ऐसी अवस्था में रूस को भी राष्ट्रसंघ में स्थायी चौधरी मानना अयुक्तिसंगत

ही था।

परन्तु उस समय अमेरिका के प्रेज़ीडेंट के सलाहकार वामपंथी थे और इंगलैण्ड में वामपंथियों की सरकार बन रही थी; इस कारण विजयी पक्ष ने अयुक्तिसंगत व्यवहार स्वीकार किया था। और अब भी अयुक्तियुक्त व्यवहार का बोलबाला हुआ है। इस व्यवहार में भी अमेरिका और इंगलैण्ड के वामपंथितों का मुख्य हाथ है।

भारत आरम्भ से ही कम्युनिस्ट चीन को राष्ट्रसंघ में बैठाने के पक्ष में रहा है। यह भी इस कारण कि आरम्भ से ही भारत के प्रधानमंत्री और काँग्रेस दल वामपंथी रहे हैं। जवाहरलाल नेहरू और वर्तमान प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी दोनों वामपंथी हैं। दोनों ही प्रधानमंत्री और उनका दल (काँग्रेस) वामपंथी हैं। अतः भारत से किसी प्रकार के युक्तियुक्त व्यवहार की आशा नहीं की जा सकती थी और यही हुआ है।

यह चीन को राष्ट्रसंघ में सम्मिलित करना अथवा न करना चीन और अमेरिका का झगड़ा नहीं था। मूर्ख प्रजातन्त्रवादी इसे इसी प्रकार समझे थे। धीरे-धीरे भूमण्डल के देश अमेरिका के विरुद्ध हो रहे थे। यह भी इस कारण नहीं कि अमेरिका किसी प्रजातंत्र देश का विरोध कर रहा था, वरंच इस कारण कि अमेरिका धनवान हो रहा था और एक धनवान व्यक्ति की भाँति स्वार्थी और उजड्ड हो रहा था।

परन्तु चीन तो बिना धनवान और सम्पन्न हुए ही स्वार्थी और उजड्ड था। अतः हमारा यह कहना है कि झगड़ा चीन और अमेरिका में नहीं था। न ही यह धनवान और निर्धन का था, परन्तु राष्ट्रसंघ में झगड़ा कम्युनिस्ट और प्रजातन्त्रवादियों का था और प्रजातन्त्रवादी देशों ने चीन का पक्ष मूर्खता के वश ही लिया है।

अतः हमारा मत है कि भूमण्डल पर प्रजातन्त्र की अर्थी निकालने का आयोजन किया गया है। इसमें अब क्या प्रक्रिया होगी, कहना कठिन है। राजनीति में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। इसपर भी यह तो अवश्यम्भावी ही प्रतीत होता है कि आगामी तीस-चालीस वर्ष में भूतल से प्रजातन्त्र समाप्त हो जायेगा।

प्रजातन्त्र का स्थान कम्युनिस्ट ढंग की समाज-व्यवस्था आती प्रतीत होती है, परन्तु यह भी निश्चय से नहीं कहा जा सकता।

●

प्रकृति की लीला

□

श्री प्रणव प्रसाद

हमने यह बताया है कि सब गतिशील पदार्थों में जो गतिशीलता है उस पदार्थ में बैठे किसी अन्तर्यामी शक्ति अथवा शक्तिशाली पदार्थ द्वारा हो रही होती है। इसको उपनिषद्कार इस प्रकार वर्णन करता है। यह वर्णन एक स्थान पर वाद-विवाद रूप में किया गया है। एक बार विद्वानों की सभा में आरुणि उद्दालक ने कहा कि वह यह जानना चाहता है कि वह सूत्र क्या है जिसके द्वारा यह लोक, परलोक और सारे भूत ग्रथित हैं ?

उसने यह भी बताया कि उसने यही प्रश्न अन्य लोगों से भी किया है, परन्तु किसी ने इसका उत्तर नहीं दिया।

पतञ्जल काप्य ने इतना कहा—जो कोई उस सूत्र को जानता है वह ब्रह्मवेत्ता है, लोकवेत्ता है, देववेत्ता है, वेदवेत्ता है, भूतवेत्ता है, आत्मवेत्ता और सर्ववेत्ता है।

इस प्रश्न पर याज्ञवल्क्य ने कहा कि वह इस प्रश्न का उत्तर जानता है और उसका उत्तर ही बृहदारण्यक उपनिषद् (३-७-३ से २६ तक) लिखा है।

याज्ञवल्क्य ने संसार की भिन्न-भिन्न वस्तुओं को लेकर बताया कि इन सबमें एक अन्तर्यामी शक्ति है जो इस सबको गति प्रदान करती है। उस शक्ति को वायु कहते हैं।

उदाहरण के रूप में पृथिवी के विषय में याज्ञवल्क्य के उत्तर को हम यहाँ लिख रहे हैं। तदन्तर हम उन सब वस्तुओं का नाम लिखेंगे जिनके विषय में याज्ञवल्क्य ने इस अन्तर्यामी पदार्थ का वर्णन किया है।

पृथिवी के विषय में बताने से पूर्व याज्ञवल्क्य ने कहा—

स होवाच वायुर्वै गौतम तत् सूत्रं वायुना वै गौतम सूत्रेणायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि सन्दृब्धानि भवन्ति तस्माद् वै गौतम पुरुषं प्रेमसाहुर्व्यस्त्रँ सिषतास्याङ्गानीति वायुना हि गौतम सूत्रेण सन्दृब्धानि भवन्ती-

त्येवमेवैतद् याज्ञवल्क्यान्तर्यामिणं ब्रूहीति ॥ (बृ० उ० ३-७-२)

"हे गौतम ! वायु ही वह सूत्र है। वायुरूप सूत्र के द्वारा ही यह लाक, परलोक और समस्त भूत समुदाय गुँथे हुए हैं। इसी कारण मरे हुए जीव को ऐसा कहते हैं कि उसके अंग विस्तस्त (विशीर्ण) हो गए हैं। क्योंकि हे गौतम, वे वायुरूप सूत्र से ही संग्रथित होते हैं।"

तब आरुणि ने कहा—हे याज्ञवल्क्य ! तुम उस वायु के विषय में बताओ ?

पूर्व इसके कि हम याज्ञवल्क्य द्वारा किये गए वायु के वर्णन को लिखें, हम उक्त कथन में दो शब्दों का अर्थ बता देना चाहते हैं।

यहाँ वायु से अभिप्राय हवा (air) का नहीं। वायु का अर्थ कुछ अन्य ही है जिसे हम इस लेख के अन्त में लिखेंगे। यहाँ इतना लिख देना पर्याप्त होगा कि यह श्वांस में ली जाने वाली हवा नहीं। यह कोई गैसीय (gases) पदार्थ भी नहीं।

"यह सब पदार्थ तथा भूतों को ग्रथित की हुई है" का अभिप्राय है कि पदार्थों के परमाणु इसी वायु के कारण परस्पर एक-दूसरे से संयुक्त हैं।

इस लोक का अभिप्राय है कि प्राणी-लोक, जो भूतल पर है। परलोक से अभिप्राय सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि जगत् के पदार्थ।

मरे हुए प्राणी का शरीर टूटने अर्थात् (decompose) होने लगता है। इसे उक्त उपनिषद् पाठ में 'स्रंसिषत' लिखा है।

अब पृथिवी के विषय में इस वायु का कार्य इस प्रकार वर्णन किया है।

यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ (बृ० उ० ३-७-३)

"पृथिवी में जो रहता है, वह पृथिवी के भीतर है, जिसे पृथिवी नहीं जानती, जिसका पृथिवी शरीर है और जो भीतर रहकर पृथिवी का नियमन करता है, वह आत्मा अन्तर्यामी अमृत (अनादि अक्षर) है।

याज्ञवल्क्य के इस कथन का अभिप्राय यह है कि पृथिवी के भीतर कोई प्रतिष्ठित है और वह भीतर बैठा हुआ जिसके प्रत्येक परमाणु को ग्रथित किए हुए है और वह उसका सब प्रकार से नियमन करता है अर्थात् नियम में बाँधता है। पृथिवी उसको नहीं जानती, परन्तु वह है। वह वायु है, वह आत्मा है और अमृत अर्थात् अनादि और अक्षर है।

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य ने अन्य भी कई पदार्थ गिनाये हैं जिनमें वायु, आत्मा और अमृत बैठा उस पदार्थ का नियमन करता है। वह पदार्थ उसको नहीं जानता, परन्तु वह है।

इस उपनिषद् के इस ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य ने कुछ ही वस्तुएँ गिनायी हैं। वे वस्तुएँ ये हैं।

पृथिवी, जल, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, द्युलोक, आदित्य, दिशायें, चन्द्र, तारागण, आकाश, प्राणी, तेज, सब भूतों में (प्राणियों में), प्राण, वाणी, नेत्र, श्रोत्र, मन, त्वचा, बुद्धि, वीर्य।

इन वस्तुओं को गिनाकर कह दिया—

अदृष्टो द्रष्टाश्रुतः श्रोतामतो मन्ताविज्ञातो विज्ञाता नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोऽस्ति श्रोता नान्योऽतोऽस्ति मन्ता नान्योऽतोऽस्ति विज्ञातैष त आत्मान्तर्याम्यमृतोऽतोऽन्यदार्तं ततो होद्दालक आरुणिरुपरराम ॥

(बृ० उ०—३-७-२३)

"वह दिखाई न देने वाला, किन्तु देखने वाला। सुनाई न देने वाला, किन्तु सुनने वाला है। मनन का विषय न होने वाला, किन्तु मनन करने वाला है और विशेषतया ज्ञात न होने वाला, किन्तु विशेष रूप से जानने वाला है। वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। इसके अतिरिक्त सब नाशवान् है। इस उत्तर से आरुणि उद्दालक का संशय निवृत्त हो गया।"

इसका अभिप्राय यह है कि संसार की प्रत्येक वस्तु में एक पदार्थ विद्यमान है। वह उस वस्तु को भीतर से नियन्त्रित करता है। वह दिखाई नहीं देता; इस पर भी है और वह वायु है, आत्मा है और अमृत है।

वह पदार्थ परमात्मा है। यह भारतीय विज्ञानवेत्ता, जिन्हें ब्रह्मवेत्ता कहते हैं, मानते हैं। परन्तु वर्तमान वैज्ञानिक इसे नहीं जानता। वह सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि की गति का वर्णन एक शक्ति से करता है जिसे भू-आकर्षण (gravity) कहता है। परन्तु यह भू-आकर्षण है क्या? वह इसकी व्याख्या नहीं कर सकता।

इसी प्रकार उपनिषद्कार ने यह कहा है कि मनुष्य मनन करता है। यह मनन परमात्मा की सहायता से अर्थात् नियमन से करता है। वर्तमान वैज्ञानिक अभी इसकी खोज कर रहा है और यह ढूँढ रहा है कि वह क्या वस्तु है जो मनुष्य में मनन करती है, देखती है, सुनती है इत्यादि।

खैर, यह तो हम व्याख्या से आगे चलकर बतायेंगे। यहाँ हम यह बता रहे थे कि जगत् के जो पदार्थ गतिशील हैं उनकी गति उस वस्तु की अपनी नहीं है। वहाँ उनमें कोई अन्य आत्मस्वरूप बैठा है और वह उनमें गति उत्पन्न कर रहा है।

वही आत्मा प्राणियों में और मनुष्य में भी बैठा है और उसके कर्मों को

कर रहा है।

हमने यह ऊपर बताया है कि प्राणियों में और मनुष्यों में गति वैसी नहीं जैसी कि सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि में है। उनकी गति तो उनके बनने के समय से आरम्भ हुई थी और जिस दिशा में तथा जिस वेग से यह आरम्भ के काल में चल रही थी वैसी ही अब चल रही है।

परन्तु प्राणी के अंग-प्रत्यंग की गति तो बदलती रहती है और उसको बदलने वाला प्रत्येक प्राणी में भिन्न-भिन्न है। वह एक नहीं है।

हम देखते हैं कि जो प्राणी एक समान परिस्थिति में भी समान व्यवहार नहीं करते।

अतः प्राणियों में जगत् के पदार्थों में कुछ भिन्नता है।

यह भिन्नता समझने के लिए प्रकृति के अतिरिक्त आत्मतत्त्व की उपस्थिति माननी पड़ेगी। और जगत् की वस्तुओं को ग्रथित करने वाला आत्मतत्त्व एक है, परन्तु प्राणियों में कार्य संचालन करने वाला आत्मतत्त्व भिन्न मानना पड़ेगा।

इन आत्मतत्त्वों को प्राकृतिक पदार्थों से भिन्न मानना पड़ेगा। इसी कारण ब्रह्मसूत्रों में यह लिखा है।

अनुपपत्तेस्तु न शारीरः ॥ (ब्र० सू० १-२-३)

'शारीरः' में गुणों के उपस्थित न होने से। यह प्रकट होता है कि शरीर और शरीरी वह नहीं जो एक तीसरा है। जिसे इसमें गति उत्पन्न करने वाला माना है।

अभिप्राय यह कि शरीर में कार्य करने वाले से शरीर भिन्न है। उक्त उपनिषद् मन्त्र में लिखा है कि संसार की वस्तुएं उसका शरीर है।

अतः वस्तु तो जड़ और निर्जीव है। उसमें गति उत्पन्न करने वाली उससे भिन्न कुछ है। (क्रमशः)

ब्रह्मसूत्र

दर्शनशास्त्र क्या कहते हैं ?

श्री वैशम्पायन

वह शास्त्र जो दर्शन कराते हैं, दर्शनशास्त्र कहलाते हैं। प्रश्न उपस्थित होता है कि किसका दर्शन ? निस्सन्देह सत्य का दर्शन। अतः सत्य क्या है ? इसकी विवेचना ही दर्शनशास्त्रों में है।

वास्तव में वेद ही सत्य विद्याओं की पुस्तक है। अन्य ग्रन्थ अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद् और दर्शनशास्त्र वेदों में वर्णित सत्य की ही व्याख्या करते हैं।

दर्शनशास्त्रों में एक विशेषता है। वह विशेषता वेदादि शास्त्रों से किसी भिन्न सत्यता के वर्णन में नहीं। आर्ष-दर्शनशास्त्र उसी सत्य की व्याख्या में है जो वेद-वेदांगों में वर्णन किया गया है। विशेषता इस बात में है कि सत्य को केवल कहा ही नहीं गया, वरंच इस युक्ति से अर्थात् बोधगम्य ढंग से वर्णन किया गया है।

मुझे तो ऐसा प्रतीत हुआ है कि छहों आर्ष-दर्शनशास्त्र वेद में वर्णित सत्य को लोक-व्यवहार से एवं तर्क से सिद्ध करते हैं।

दर्शनशास्त्र क्या कहते हैं इस विषय में ब्रह्मसूत्र में एक सूत्र इस प्रकार है—

सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ॥ (ब्र० सू० १-२-१)

सर्वत्र प्रसिद्ध के कहे जाने से। अर्थात् वह बात जो सर्वत्र प्रसिद्ध है, उसका वर्णन करने से।

सर्वत्र प्रसिद्ध क्या है और उसके वर्णन करने से क्या होगा ?

प्रसिद्ध तो वही वस्तु हो सकती है जिससे हमारा सम्बन्ध दिन-रात पड़ता हो। जो हमारे नित्य और सदा प्रयोग की है। मेरा मत है कि मनुष्य के लिए प्रसिद्ध बात यह जगत् ही है। इसे हम नित्य दिन-रात देखते, सुनते, सूँघते, स्पर्श करते और स्वाद लेते रहते हैं। निस्संदेह प्रसिद्ध से शास्त्र का अभिप्राय इस जगत् से ही है।

परन्तु इस जगत् से क्या विदित होता है ? इस विषय में भी दर्शनशास्त्र ने

बताया है—

विवक्षितगुणोपपत्तेश्च ॥ (ब्र० सू० १-२-२)

कहे गये गुणों के उपस्थित होने से। अर्थात् कुछ गुण कहे गये हैं उनके जगत् में उपस्थित होने से उन गुणों के गुणी की भी उपस्थिति जगत् में है।

सूत्रकार ने युक्ति की है कि जगत् प्रसिद्ध है। अर्थात् सबका देखा-भाला है। और इसके आगे उसने कह दिया है कि उस जगत् में कुछ गुण देखे जाते हैं। उन गुणों से वैसे गुण रखने वाले पदार्थ इस जगत् में उपस्थित मानने होंगे।

जगत् के गुणों की व्याख्या करते हुए सूत्रकार ने एक सिद्धान्त की बात बतायी है। ऊपर सूत्रकार ने कहा है कि जगत् में कुछ गुण हैं। उन गुणों वाला गुणी जगत् में होना चाहिये। यह बात एक सिद्धान्त से विचार की गयी है। सिद्धान्त है—

कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च ॥ (ब्र० सू० १-२-४)

कर्म और कर्ता के कहे जाने से। क्या कहे जाने से? यह कि वे भिन्न-भिन्न होते हैं। कर्म के करने वाला कर्म नहीं होता। वह कर्म से पृथक् होता है। विख्यात उदाहरण घड़े का लें तो घड़े को बनाने वाला घड़े से पृथक् होगा। घड़ा ही घड़े को नहीं बना सकता। अतः महान् कर्म (कार्य-जगत्) के रचने वाला कार्य-जगत् ने पृथक् है।

कर्म के विषय में भगवद्गीता में लिखा है। वहाँ अर्जुन ने कृष्ण से पूछा था—

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ॥

(भ० गी० ८-१)

वह ब्रह्म क्या है? अध्यात्म किसे कहते हैं? कर्म से क्या अभिप्राय है? कृष्ण अपने उत्तर में कर्म की व्याख्या इस प्रकार करता है—

भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥

(भ० गी० ८-३)

(पंच) भूतों के भावों अर्थात् उनके विभिन्न स्वरूपों को उत्पन्न करना और विसर्गः उनको प्रलय करना कर्म नाम से जाना जाता है। अभिप्राय यह कि जगत् की रचना और प्रलय कर्म हैं।

सूत्रकार ने कहा है कि यह कर्म और इसके करने वाले का उपदेश है। दोनों पृथक्-पृथक् हैं। कुम्हार और घड़ा एक नहीं हो सकते।

इसी के साथ एक और बात कह दी है। वह है—

अनुपपत्तेस्तु न शरीरः ॥ (ब्र० सू० १-२-३)

(कुछ गुण) (जगत् में) अनुपस्थित हैं। इस कारण वह शरीर और शरीरी नहीं।

शरीर और शरीरी से अभिप्राय प्राणी का है। प्राणी के कुछ गुण कार्य-जगत् में दिखायी नहीं देते। अतः शरीर और शरीरी (प्राणी) एक पृथक् रचना है।

कार्य-जगत् में पृथिवी, चन्द्र, सूर्य, तारागण तथा नक्षत्र हैं। पृथिवी पर हम प्राणियों को देखते हैं। प्राणियों के कुछ गुण चन्द्र, सूर्यादि नक्षत्रों इत्यादि में नहीं देखे जाते। इस कारण यह जगत् प्राणी नहीं।

इस प्रकार सूत्रकार ने जगत् का विश्लेषण करना आरम्भ कर दिया है। सूत्रकार ने बताया है कि यह जगत् है जो सर्वप्रसिद्ध है। इसके बनाने वाला इससे भिन्न है। साथ ही यह बता दिया कि जगत् में शरीर और शरीरी भी भिन्न है।

शरीर और शरीरी के कौनसे गुण हैं जो जगत् में नहीं दिखायी देते?

जो इस प्रसिद्ध कार्य-जगत् का अध्ययन करते हैं उनको यह बताने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती कि इस संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं। एक को जीवित और दूसरे को जड़ कहते हैं। इनको अंग्रेजी में "animate inanimate" कहते हैं। जीवनधारी पदार्थ में यह देखा जाता है कि वे—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति ॥

(न्याय० १-१-१०)

अर्थात्—जीवनधारी पदार्थों में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख की अनुभूति और चेतना के लक्षण देखे जाते हैं।

ये लक्षण जगत् के दूसरे पदार्थ में नहीं पाये जाते। उदाहरण के रूप में एक लोहे की सलाख में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख की अनुभूति और चेतना सिद्ध नहीं होती। परन्तु ये गुण कीट, पतंग, पशु, पक्षी, मनुष्य इत्यादि प्राणियों में मिलते हैं।

इसी कारण सूत्रकार ने इन पथार्थों को जगत् के जीवन रहित पदार्थों से पृथक् बताया है।

अतः सूत्रकार ने जगत् के देखने से यह परिणाम निकाले हैं।

(१) यह जगत् बना है। इस कारण इसके बनाने वाला जगत् से पृथक् है।

(२) जगत् में दो प्रकार के पदाथ हैं। शरीरी और दूसरे अशरीरी।

(३) अशरीरी पदार्थ में कुछ गुण नहीं हैं जो शरीरी पदार्थ में दिखायी

देते हैं। अतः शरीरी पदार्थ में कुछ है जो अशरीरी पदार्थों में नहीं।

इस प्रकार तीन अनादि पदार्थों की कार्य-जगत् में उपस्थिति सिद्ध कर दी है। एक जगत् के बनाने वाला परमात्मा, दूसरा अशरीरी पदार्थ अर्थात् जिससे जड़ पदार्थ बने हैं। इसे प्रकृति अथवा प्रधान का नाम दिया है और तीसरा पदार्थ है जिसके कारण शरीर की विशेषता है। अभिप्राय यह कि शरीर में चेतनता का कारण जो है। शरीर तो, जब प्राणी मर जाता है, जड़ पदार्थों की भांति रह जाता है, परन्तु जीवित अवस्था में यह किसी अन्य पदार्थ के कारण जीवित (animate) प्रकट होता है। वह जीवात्मा है।

इन तीनों में भेद कैसे किया जा सकता है? यह भी सूत्रकार बताता है—

शब्दविशेषात्॥ (ब्र० सू० १-२-५)

विशेषता के कथन से। कथन से क्या? यही कि जड़ जगत् से जगत् के बनाने वाला भिन्न है और शरीर में शरीरी (जीवात्मा) दोनों से भिन्न है।

इसको उपनिषद् में भी इसी प्रकार वर्णन किया है—

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजा, ह्येका भोक्तृभोगार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता, त्रयं यदा विन्दते ब्रह्मनेतत्॥

(श्वेता० १-९)

अर्थात्—ज्ञानवान और अज्ञानी दो अजन्मा (अनादि) पदार्थ हैं। इनमें एक शक्तिमान है और दूसरा शक्तिविहीन है। एक अन्य अजन्मा (अनादि) पदार्थ है सो भोग करने वाले के भोग के लिये है। अनन्त (सर्वव्यापक) आत्मा (जिसे ज्ञानवान और शक्तिमान कहा है) विश्व (जगत्) के रूपों को करने वाला है। वह स्वयं अकर्ता (भोग नहीं करता) है। जब कोई इन तीनों को (पृथक्-पृथक् जानता है कि ये ब्रह्म हैं। (तब ही वह जानता है)।

अर्थात्—दर्शनशास्त्र ने एक महान् सत्य का रहस्योद्घाटन किया है कि यह जगत् जिसे हम नित्य देखते, सुनते, सूँघते, चखते अथवा स्पर्श करते हैं, तीन अनादि पदार्थों से बना है। वे अनादि पदार्थ हैं परमात्मा जो इस जगत् के रचने वाला है। दूसरे जड़ पदार्थ हैं जिससे जगत् बना है और तीसरा जो जीवधारियों में जीवन का लक्षण है। अर्थात् जीवात्मा।

अन्य भी कई सच्चाईयाँ हैं, जिनका दर्शन दर्शन-शास्त्र कराते हैं।

●

ब्रह्मसूत्र ग्रन्थ के नाम में ब्रह्म शब्द का अर्थ

□

श्री गुरुदत्त कृत "ब्रह्मसूत्र-भाष्य" के उपसंहार से उद्धृत

आज की प्रचलित भाषा में ब्रह्म से परमात्मा के अर्थ लिये जाते हैं। परन्तु क्या "ब्रह्मसूत्र" नाम में भी ब्रह्म का अर्थ परमात्मा ही है ? यह प्रश्न इस कारण उपस्थित होता है कि उत्तर मीमांसा ग्रन्थ का दूसरा नाम, हमारे विचार से, ब्रह्म-सूत्र है और उत्तर मीमांसा ग्रन्थ में केवल परमात्मा का ही ज्ञान नहीं है। परमात्मा के अतिरिक्त कुछ अन्य पदार्थों का वर्णन इस शास्त्र में है। अतः प्रश्न यह है कि क्या ब्रह्म के अर्थों में वे अन्य पदार्थ भी समझे जाते हैं ?

इस बात का निर्णय करने के लिए यह देखना आवश्यक है कि संस्कृत भाषा-साहित्य में ब्रह्म शब्द का प्रयोग परमात्मा के अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ के लिए भी आया है अथवा नहीं।

संस्कृत भाषा-साहित्य का अनुशीलन करने से यह पता चलता है कि ब्रह्म शब्द का प्रयोग परमात्मा के अतिरिक्त कुछ अन्ग पदार्थों के लिए भी हुआ है।

ब्रह्म शब्द विशेषण के रूप में भी प्रयोग हुआ है। उदाहरण के रूप में 'ब्रह्मचर्य' इत्यादि। परन्तु हमारा अभिप्राय इस शब्द के इस प्रयोग से नहीं। हम तो ब्रह्म शब्द के संज्ञा के रूप में प्रयोग का उल्लेख कर रहे हैं।

उपनिषदों में ब्रह्म शब्द का प्रयोग परमात्मा के अतिरिक्त पदार्थों के लिए अनेक स्थान पर मिलता है।

(१) छान्दोग्य उपनिषद् का एक वाक्य है—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत। अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो। यथाक्रतुरस्मिँल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति सक्रतुं कुर्वीत॥

(छान्दो० ३-१४-१)

यह सारा (जगत्) निश्चय ब्रह्म ही है। शान्त (चित्त) से उसको 'ज, ल, अन्' ऐसा मान (ब्रह्म से) पैदा हुआ है, ब्रह्म में विचरता है और ब्रह्म में विलीन होता है। ऐसा इस जगत् का ज्ञान प्राप्त करे (उपासना करे)। पुरुष निश्चय

ही क्रतुमय (संकल्प वाला) है। इस लोक में जैसा संकल्प करता है, यहाँ से मर कर जाने पर, वैसा ही हो जाता है। (इस कारण) वह (शान्त चित्त पुरुष) शुभ संकल्प करने वाला होवे)।

यहाँ पूर्ण जगत् को ब्रह्म माना है। यह प्रश्न कि क्या जगत् पूर्णरूप में परमात्मा ही है। हम तो जगत् में तीन अनादि पदार्थ मानते हैं। इस कारण जगत् को ब्रह्म मानने का अर्थ है कि उन तीनों अनादि पदार्थों को ब्रह्म माना गया है।

इस विषय पर जगत् एक ही पदार्थ से बना है अथवा इसमें निमित्त कारण उपादान कारण और भोक्ता पृथक्-पृथक् हैं और तीनों अनादि एवं अक्षर हैं। हम एक दूसरी कण्डिका में वर्णन करेंगे। यहाँ तो इतने से ही अभिप्राय है कि जगत् को ब्रह्म शब्द से स्मरण किया है—

(२) एक अन्य प्रमाण है—

अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते। याः काश्च पृथिवी ँ श्रिताः। अथो अन्नेनैव जीवन्ति। अथैनदपि यन्त्यन्ततः अन्न ँ हि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधमुच्यते। सर्वं वै तेऽन्नमाप्नुवन्ति येऽन्नं ब्रह्मोपासते। (तैत्ति० २-२-१)

अर्थात्—अन्न से ही प्रजा उत्पन्न होती है। जो प्रजा पृथिवी के आश्रय स्थित है वह सब अन्न से ही उत्पन्न होती है। फिर वह अन्न से ही जीवित है और अन्त में अन्न में ही लीन हो जाती है। अन्न ही प्राणियों का ज्येष्ठ है। उससे ही सब वनस्पतियाँ कही गयी हैं। जो लोग ऐसी उपासना करते हैं कि अन्न ही ब्रह्म है, वह अन्न को पा जाते हैं। यहाँ अन्न को ब्रह्म कहा है।

(३) एक अन्य उदाहरण लीजिये—

स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वाचो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति। (छान्दो० ७-२-२)

अर्थात्—वह जो प्राणी ब्रह्म है ऐसा उपासते हैं (ज्ञान प्राप्त करते हैं) वह उसकी, जैसी इच्छा होती है वैसी वाणी की गति प्राप्त कर लेते हैं।

यहाँ वाणी को ब्रह्म कहा है।

(४) एक और उदाहरण लें—

आदित्या ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्याख्यानमसदेवेदमग्र आसीत्।

(छान्दो० ३-१९-१)

अर्थात्—आदित्य ब्रह्म है—ऐसा उपदेश है। उसकी व्याख्या की जाती है। पहले यह असत् ही था।

(५) माण्डूक्य उपनिषद् में ब्रह्म के चार पाद लिखे हैं। वह पाद (Phases)

जगत् के हैं। इसे ब्रह्म कहा है। उपनिषद् के प्रथम दो मन्त्र इस प्रकार हैं—

ओमित्येतदक्षरमिद ँ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव॥

सर्व ँ ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात्॥

(माण्डूक्य० १-२)

अर्थात्—वह जो यह (दिखायी दे रहा है) अविनाशी 'ओं' है। सब उसका उपव्याख्यान है। भूत, वर्तमान और भविष्य सब ओंकार ही है। इनके अतिरिक्त जो त्रिकोलातीत है वह भी ओंकार है।

यहाँ त्रिकाल के अन्तर्गत भी ब्रह्म कहा है। यह जगत् ही है। परमात्मा त्रिकाल के भीतर कभी नहीं होता। त्रिकाल के बाहर जगत् के पूर्व और उपरान्त भी ओंकार ही है।

दूसरे मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है।

इस सबका आत्मा (सार) ब्रह्म है। इसका आत्मा (सार, मूल, तत्त्व) के चार पाद (phases) हैं।

अर्थात् जो कुछ दिखाई देता है वह (जगत्) ब्रह्म है और उसके चार पाद हैं।

चार पाद हैं जगत् अवस्था, स्वप्नावस्था, सुषुप्ति अवस्था और तुरिया अवस्था।

इन चारों पादों की व्याख्या के लिए यहाँ उपयुक्त स्थान न होने से छोड़ रहे हैं। इस पर भी इतना तो स्पष्ट है कि परमात्मा सोता, जागता अथवा स्वप्नावस्था में नहीं होता।

अतः चार अवस्थायें जगत् की हैं और इसे उपनिषद्कार ने ब्रह्म कहा है।

(६) श्वेताश्वतर उपनिषद् में तो सर्वथा स्पष्ट रूप में लिखा है। इस उपनिषद् के प्रथम अध्याय का नाम 'ब्रह्मोपनिषत्परमं' माना है। अर्थात् इस अध्याय में ब्रह्म के रहस्य का वर्णन किया है और इस अध्याय में लिखा है—

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते, अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा, जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति॥
उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म, तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरं च।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा, लीना ब्रह्माणि तत्परा योनिमुक्ताः॥

(श्वे० १-६, ७)

'सब जीवों के आश्रय स्थान इस महान् ब्रह्मचक्र में जीवात्मा अपने आपको और प्रेरक परमात्मा को पृथक्-पृथक् मान कर भ्रमण करता है। जब उस

(परमात्मा) से जुष्ट होता है तब अमृतत्त्व को प्राप्त होता है।'

"ऊपर कहा गया (ब्रह्मचक्र) तो परमब्रह्म है। उसमें तीन अक्षर प्रतिष्ठित हैं। इसमें ही ब्रह्म के जानने वाले ब्रह्म में लीन उसके परायण हो जन्म-मरण से मुक्त हो जाते हैं।"

यहाँ पूर्ण जगत् को परमब्रह्म कहा गया है।

(७) श्वेताश्वतर में इससे अगला मन्त्र इस प्रकार है—

संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च, व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज्, ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥

(श्वे० १-८)

इस मन्त्र में उसी का वर्णन है जिसको ऊपर (१-७) में उद्गीत से कहा गया है। अर्थात् ब्रह्मचक्र अथवा परमब्रह्म। इसकी अधिक व्याख्या की गई है। लिखा है—

इस (परमब्रह्म) में अक्षर और क्षर, अव्यक्त और व्यक्त मिले-जुले हैं। इस मिले-जुले को विश्व का ईश पालन करता है। शक्तिहीन जीवात्मा भोग करता हुआ, जन्म-मरण में बँधा हुआ है। वह (जीवात्मा) देव (परमात्मा) को जानकर सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है—

(८) आगे तो सर्वथा ही स्पष्ट कर दिया है।

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजा, ह्येका भोक्तृभोगार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता, त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्॥

(श्वे०-१-९)

अर्थ है—ज्ञानवान (परमात्मा) अज्ञानी (जीवात्मा) बलवान और निर्बल दो अजन्मा हैं। इनके अतिरिक्त एक अन्य अजन्मा निश्चय से है। यह भोग करने वाले के लिए भोग की सामग्री प्रस्तुत करता है। अन्तरात्मा विश्व को रूप प्रदान करता है और अकर्ता (भोग न करने वाला) है। (मनुष्य) जब जान जाता है कि तीनों ब्रह्म हैं, तब वह अमृत्व को प्राप्त हो जाता है।

(९) इसी प्रकार एक अन्य मन्त्र में लिखा है—

भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा, सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्।

(श्वे० १-१२)

यह जानकर कि भोक्ता (जीवात्मा) भोग्य (प्रकृति) और प्रेरणा देने वाला; ये सब तीन प्रकार का ब्रह्म कहा गया है।

अतः हमारा यह निश्चित मत है कि प्राचीन संस्कृत साहित्य में ब्रह्म शब्द का प्रयोग केवल परमात्मा के लिए नहीं किया गया, वरंच अन्य पदार्थों के लिए

भी आया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में इस शब्द का प्रयोग जीवात्मा, प्रकृति और परमात्मा, तीनों के लिए किया है।

तीनों को अजन्मा माना है। साथ ही तीनों के स्पष्ट पृथक्-पृथक् गुण वर्णन किये हैं।

क्योंकि उत्तर मीमांसा में तीनों अक्षर पदार्थों का वर्णन है, इस कारण हमारा मत है कि इस ग्रन्थ के नाम में ब्रह्म शब्द तीनों अमर पदार्थों की ओर संकेत करता है।

ब्रह्मसूत्र में परमात्मा, जीवात्मा तथा प्रकृति के गुणों तथा परस्पर के सम्बन्धों का वर्णन किया गया है।

[पृष्ठ ४८३ का शेषं]

अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया गया था। वह प्रयास कितना सफल रहा इस विषय में यहाँ कुछ कहना काम्य नहीं और न ही उसका कुछ औचित्य है। किन्तु जो बात हम कहना चाहते हैं वह यह कि ऐसे मनीषी के जितने भी अभिनन्दन किये जायँ उनके महान् कार्य की तुलना में अल्प ही सिद्ध होंगे।

हमारी यह कामना है कि दो वर्ष बाद श्रद्धेय वैद्यजी जब अपना ८०वां जन्म दिवस मनायें उस अवसर पर न केवल उनके प्रशंसक एवं पाठक अपितु प्रत्येक भारतवासी जिसकी भारतीय संस्कृति एवं सनातन धर्म में आस्था है अपने सद्प्रयत्नों से विशाल अभिनन्दन का सम्मिलित आयोजन करें। शाश्वत वाणी के पाठक इस शुभ कार्य में अग्रणी होकर कार्य की दिशा निर्धारित करें। हम समझते हैं कि संस्कृति के शुभचिन्तकों का यह दायित्व ही नहीं अपितु पुनीत कर्तव्य भी है।

ऋषि-ऋण के इस महायज्ञ में कौन किस प्रकार क्या-क्या कर सकता है इसकी सूचना हमें प्राप्त हो जाय और इस योजना को किस प्रकार कार्यान्वित किया जा सकता है इस विषय में हमारे पाठक अपने सुझाव एवं प्रस्ताव प्रस्तुत करें तो कार्य की सम्पन्नता में सहायता मिल सकती है।

अन्त में हम अपने पाठकों एवं समस्त शाश्वत वाणी परिवार की ओर से परम पिता परमेश्वर से श्रद्धेय वैद्यजी के सुदीर्घ जीवन के लिये शुभकामनाएँ समर्पित करते हैं।

गेहूं के साथ घुन भी पिस गया

□

बंगबंधु

विगत मार्च १९७१ से जब पूर्वी पाकिस्तान में पश्चिमी पाकिस्तान के सैनिक शासन ने दमन चक्र के साथ पाशविक अत्याचार, बलात्कार एवं नर-संहार आरम्भ किया, तब से मुक्ति एवं आश्रय के लिये पूर्वी बंगाल के लाखों निवासी हिन्दुस्तान में शरण लेने पर विवश होते रहे हैं। इस असंख्य मानव समूह में अधिकांश हिन्दू सम्प्रदाय के हैं। यह बात केवलमात्र बेसरकारी सूत्रों से ज्ञात होती है। परन्तु राजनीति के धुरन्धर खिलाड़ियों के भीषण भाषण एवं प्रचार-तन्त्र द्वारा इस शरणार्थीरूपी बाढ़ में अधिकांश अथवा बहुत बड़ी संख्या में मुसलमानों के होने का दावा करने का भरसक प्रयत्न किया जा रहा है। वस्तुस्थिति का पता तो विभिन्न शरणार्थी शिविरों में जाकर ही लगाया जा सकता है। इन शरणार्थियों में अनुपाततः युवा स्त्री एवं पुरुषों की संख्या की कमी इस बात की पुष्टि करती है कि युवकों को तो दुराचारी पाकिस्तानी सेनाओं ने मौत के घाट उतार दिया है एवं युवतियों का अपहरण किया है।

यह क्रम इससे पूर्व भी परम्परागत रूप से पिछले २५ वर्ष में अनेकों बार हुआ है। परन्तु इस बार परिस्थिति भिन्न थी। इस बार पश्चिम पाकिस्तान के सेनाधिकारियों को एक पत्थर से दो-दो चिड़ियाँ मारने का सुअवसर प्राप्त हो गया। एक तो बचे-खुचे हिन्दुओं का संहार, बलात्कार, अपहरण एवं बहिष्कार। दूसरा राजनैतिक प्रतिद्वन्द्वियों का दमन। इस दोहरी दुरभिसन्धिमूलक कार्रवाई में 'गेहूँ के साथ कुछ घुन भी पिस गया।' और इसीलिये ही इन शरणार्थियों में कुछ संख्या में मुसलमान भी दिखाई दे रहे हैं। और यह नगण्य संख्या ही यहाँ के विभिन्न राजनैतिक धुरन्धरों के लिये वरदान सिद्ध हो रही है।

अब सबके सब पैतरा बदल-बदलकर अपना-अपना उल्लू सीधा करने में जुट गये हैं। 'अपना सब-कुछ बलिदान कर भी इन शरणार्थियों की सहायता करनी होगी' इत्यादि लच्छेदार भाषणों को सुन-सुन भारतीयों के कान पके जा रहे हैं।

१९४७ से मार्च १९७१ के पूर्व पर्यन्त जब तक लाखों नहीं करोड़ों की संख्या में शरणार्थी पाकिस्तान के दोनों भागों से आते रहे तब किसी महापुरुष के श्रीमुख से ऐसा ही गगन-भेदी उद्घोष नहीं निकला। कारण सीधी सी बात है तब केवल 'गेहूँ' ही पिसते रहे और अब उसके साथ कुछ 'घुन' भी है। तथापि विश्व भर के राष्ट्रों के राजनैतिक ठेकेदारों को वस्तुस्थिति से अवगत कराने में एवं इस विपत्ति का समाधान कराने में पूरे सात मास बीत गये।

उधर पाकिस्तान को जिन राष्ट्रों से भी जो कुछ भी प्राप्त होता था वह लगातार उपलब्ध होता जा रहा है। उसी बलबूते पर वह यह नापाक हरकत जारी रखे हुए है। और तो और श्रीलंका जैसा छोटा-सा देश भी उसे सहायता देने में नहीं हिचकिचाया। इधर हम गला फाड़-फाड़कर चिल्लाये जा रहे हैं।

हमदम वाले, अपने विरादरियों के लिये आँसू की धारा बहाने वाले, हिन्दुस्तान की मूर्ख जनता से ३८ लाख रुपये ठगने वाले बीसवीं सदी के दूसरे गांधी के श्रीमुख से भी एक अलफाज़ आह के रूप में नहीं निकला। यह केवल इसीलिये कि इन शरणार्थियों में गैर-मुसलमान ही अधिक हैं। इस नराधम कार्य के शिकार गैर-मुसलमान ही अधिक हुए हैं। सेना जब किसी भी प्रकार कार्य से विरत रहती है तब उनमें अनुशासन पूर्णतया विद्यमान रहता है। परन्तु गति-शील होने पर अनुशासनहीनता अति सम्भाव्य है। सोच-सोचकर, छांट-छांटकर कार्य करना सम्भव नहीं होता। अतः जहाँ गेहूँ है वहाँ यदि कुछ घुन भी होगा तो वह घुन भी पिसने से नहीं बच सकता। और हुआ भी यही है।

मेरी तो यह दृढ़ धारणा है कि अब ये हिन्दू कभी भी वापस जाना नहीं चाहेंगे। चाहे स्वतन्त्र 'बांगला देश' बन जाय अथवा शेख मुजीबुर रहमान के नेतृत्व में पश्चिमी पाकिस्तान के अधीन शासन-तन्त्र बन जाय। यदि कभी पूर्वी बंगाल को हिन्दुस्तान के साथ विलय करने की कोई सम्भावना दिखाई दे तभी वे लोग वहाँ वापस जायेंगे, अन्यथा नहीं।

ताशकन्द समझौते को ताक में रखकर पाकिस्तान पुनराय हिन्दुस्तान के साथ लड़ने का इच्छुक है। क्यों है? इसीलिये कि उसकी शस्त्र-पूर्ति हो चुकी है। रखने का स्थान भी कदाचित् न हो। प्रयोग में लाना अति आवश्यक हो गया है। और तभी मित्र राष्ट्रों का व्यापार भी चलता रहेगा। माल की खपत के बिना व्यवसाय ठप्प हो जाता है। अतः सामग्रियाँ जब उपलब्ध हैं उनका प्रयोग होना ही चाहिये। और तभी छटपटा रहा है हमारा परम मित्र (?) राष्ट्र, हमारे ही अन्यान्य परम मित्र (?) राष्ट्रों की शह पर हमसे भिड़ने के लिये! १९६५ में लाहौर पर अधिकार करने का अवसर पाकर भी अपनी ही भूमि भेंट

चढ़ाने का एक अवसर और हमें प्राप्त होने जा रहा है। यहाँ पर एक नवीनतम खौफ का उल्लेख करने का लोभ सम्वरण नहीं कर पा रहा हूँ। १९६५ में लाहौर पर अधिकार न करने का आरोप सेना पर थोपने का एक जघन्यतम एवं निर्लज्जतम घृणित प्रयास भी इसी हिन्दुस्तान में किया गया है। जब तक इस देश में ऐसे राजनैतिक धुरन्धर जीवित रहेंगे तब तक पाकिस्तान पर अधिकार करने का अवसर पाने पर भी, ताशकन्द, समरकन्द अथवा अन्य किसी कन्द में जाकर समझौता कर हिन्दुस्तान की राजधानी दिल्ली तक उन्हें भेंट चढ़ाने की सम्भावना से हम बच नहीं सकते। अभी-अभी मॉडर्न शिवाजी महाराज ने एक ओजस्वी लेखक श्री कुल्लन कृष्णन नाम को ढूँढ़ निकाल लिया और लिखवा डाली एक पुस्तक "Chavan and the troubled decade" के नाम से। इस पुस्तक में लेखक महोदय ने यह सिद्ध करने का भरसक प्रयत्न किया है कि १९६५ में लाहौर पर अधिकार कर लेने की इच्छा चह्वाण तथा लालबहादुरजी की तो थी परन्तु सेनाधिकारीगण ऐसा नहीं चाहते थे। क्या हिन्दुस्तान का कोई छोटा-सा बच्चा भी इस प्रकार के लांछन एवं निर्लज्जतम उक्ति से सहमत होगा? इन पाखण्डी धुरन्धरों से कोई पूछे कि ताशकन्द में जाकर लालबहादुरजी के प्राण की आहुति देने की सलाह भी क्या इन सेनाधिकारियों ने ही दी थी?

सैनिक वेश में प्राणों की आहुतियाँ दें इस देश के नागरिक; अर्थ-संग्रह में माँ-बहिनों के गहने तक दान करें इस देश के नागरिक; तन-मन-धन से देश-रक्षा में सहयोग दें इस देश के नागरिक। और अपनी निजी प्रतिष्ठा स्थिर रखने के लिये अदूरदर्शिता की पराकाष्ठा दिखाते हुए निर्लज्जतापूर्वक ताशकन्द समझौता जैसा एकतरफा समझौता कर एकतरफा प्रतिपालन करने की भूल करते रहें इस देश के तथाकथित परम देश-भक्त, जन-सेवी राजनैतिक धुरन्धरगण। और अपनी भूलों की माला भी अति जघन्यतम एवं निकृष्टतम उपाय से इस देश के वीर सेनानियों के गले में पहनाने का प्रयास करते रहे।

पाकिस्तान के पूर्वी अंचल में जो कुछ भी राजनैतिक हलचल हुई है वह पूर्णतया पाकिस्तान का आभ्यन्तरीन मामला है। यदि ऐसी स्थिति हिन्दुस्तान के किसी प्रान्त में भी हुई होती तो केन्द्र शासन को भी तदनुरूप कार्यवाही करनी पड़ती। ऐसा अनेकों बार हुआ भी है। अन्तर केवल यह था कि स्वयं को पृथक् एवं स्वतन्त्र घोषित करने का साहस किसी ने नहीं दिखलाया। और इतने बड़े पैमाने में प्रान्तव्यापी रूप धारण भी नहीं किया।

पहले ही बता चुका हूँ कि पाकिस्तान के इस बार के दमन-चक्र में दोहरा रूप है। एक तो पूर्ववत् हिन्दुओं का निर्यातन, निष्काषन तथा दूसरा प्रति-

द्वन्द्वियों का दमन। परन्तु इस क्रम में जब गेहूँ रूपी हिन्दुओं के साथ घुन रूपी मुसलमान भी शरणार्थी बनकर हमारे देश में आये तब हम अपनी पूर्वाग्रह से ग्रस्त तुष्टीकरण नीति के आधार पर गलाबाजी करते रहे "इसे साम्प्रदायिक रूप न दिया जाय"; "साम्प्रदायिक अखण्डता कायम रखो" इत्यादि, इत्यादि। यह समझ में नहीं आता है कि इसमें "साम्प्रदायिक" शब्द का प्रयोग क्यों और कैसे हो रहा है? यह तो दीर्घकालीन पुरानी परम्परा है। योजनाबद्ध रूप से पाकिस्तान से हिन्दुओं का निष्कासन पहले भी होता रहा है। परन्तु अब की बार स्थिति में अन्तर केवल इसलिये है कि अब गेहूँ के साथ कुछ घुन भी पिस गया। इस समस्या की ओर हमारा ध्यान इस प्रकार केन्द्रित हो गया है कि हम सब-कुछ छोड़कर, सब पुरानी स्मृति को तिलांजलि देकर हो-हल्ला करने पर आमादा हो गये हैं। और तो और, जिस भारतीय हवाई जहाज को पश्चिमी पाकिस्तान में ले जाकर पाकिस्तानी शैतानों की शह पर जलाकर राख कर दिया गया था, उसकी ओर से अपना ध्यान इस प्रकार हटा लिया गया है जैसे कुछ हुआ ही नहीं था। इधर हिन्दुस्तान की जनता, एक के बाद एक, बोझ से दबती चली जा रही है। होना वही है "ढाक के तीन पात"।

जहाँ तक पूर्वी बंगाल अथवा पूर्वी पाकिस्तान अथवा 'बांगला देश' की समस्या का समाधान का प्रश्न है, वह इस प्रकार नहीं सुलझेगा। मेरी तो यही धारणा है। और न ही यह अब किसी प्रकार समझौते से ही सुलझेगा। संख्या विनिमय से भी समाधान नहीं निकलेगा। वह समय अब निकल गया। एक ओर कौरवों का हठ, दूसरी ओर पाण्डवों का न्यायिक अधिकार की माँग, समझौता असम्भव। एकमात्र समाधान है निर्णयात्मक-ढंग का कुरुक्षेत्र। बार-बार और प्रति बार के झगड़ों का अन्त होना अवश्य ही चाहिये। 'न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी'। यवनिका पतन होना ही चाहिये। ताकि वही नाटक बार-बार न खेला जाय।

कुछेक नेता व बुद्धिजीवियों को कहते सुना जा रहा है कि भारत सरकार को चाहिये कि वे 'बांगला देश' को अविलम्ब मान्यता दे। इसके लिये प्रदर्शन आदि भी होते रहे हैं। मेरे विचार से यह पग बुद्धिमत्ता का परिचायक नहीं है। किसी भी देश के शासन से असन्तुष्ट एक वर्ग द्वारा किसी कमरे में बैठकर स्वतन्त्रता की घोषणा कर देना ही यदि स्वतन्त्र शासन-तन्त्र की स्थापना हो जाती है तो विश्वभर में इस प्रकार के स्वतन्त्र राज्यों की संख्या अगणित हो गई होती।

[शेष पृष्ठ ५१० पर]

'मानव' से 'सुख की खोज' तक

डा० भगवत प्रसाद दूबे

[जिन साहित्यकारों ने साहित्य-सृजन के माध्यम से भारतीय संस्कृति के मूल्यों के पुनर्स्थापन का बीड़ा उठाया है, उनमें उपन्यासकार गुरुदत्त का स्थान अग्रणी है। इस वयोवृद्ध उपन्यासकार के ७८वें जन्म-दिवस (८ दिसम्बर) के अवसर पर इनके कुछ उपन्यासों पर विवेचनात्मक यह लेख प्रकाशित किया जा रहा है। निश्चय ही इससे हमारे पाठकों को श्री गुरुदत्त की लेखन-शैली एवं उनके विचारों का कुछ परिचय मिलेगा।
—सम्पादक]

मैंने हाल में हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री गुरुदत्त के केवल चार उपन्यासों का अध्ययन किया है। वे हैं—मानव (१९५६ ई०), विक्रमादित्य साहसांक (दि० सं० १९६४ ई०), दिग्विजय (१९६८ ई०) तथा 'सुख की खोज' (१९६९ ई०)। गुरुदत्तजी ने अब तक शताधिक उपन्यासों एवं भारतीय धर्म, दर्शन, इतिहास और राजनीति सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की है, किन्तु मैं केवल उक्त उपन्यासों के सम्बन्ध में ही अपनी सम्मति प्रस्तुत करता हूँ।

चारों उपन्यास लगभग १५ वर्षों के अन्तराल को समेटे हुए हैं। अतएव इनमें लेखक की रचना-प्रक्रिया, शिल्प योजना, सन्दर्भण कला, विवेचन-दृष्टि, विचार-पद्धति, विषय-विविधता एवं उनकी व्यापकता, अपेक्षा, महत्त्व और परिवेशगत मूल्य, भाषा, संस्कार आदि का एक सुनिश्चित क्रम और विकास उपलब्ध होता है। सर्वप्रथम विवेच्य सामग्री द्वारा यही धारणा बनती है कि उपन्यासकार ने दैनिक पारिवारिक-समस्याओं से लेकर सामाजिक जीवबोध, भारतीय इतिहास के अस्पष्ट पृष्ठों अथवा विदेशियों द्वारा विकृत किये शास्त्र सम्मत तथ्यों, भारतीय संस्कृति, धर्म और दर्शन के व्याख्याकारों की जीवन पद्धतियों तथा वर्तमान वैज्ञानिक परिवेश में कुण्ठाग्रस्त एवं दौड़-धूप में व्यस्त

आधुनिक यांत्रिक मनुष्यों की विविध मानसिक प्रक्रियाओं और समस्याओं तक को अपने उपन्यासों में सूक्ष्म दृष्टि से विवेचित किया है। अन्य उपन्यासों की सामग्री राजनीति, धर्म-नीति, मनोवैज्ञान, सामाजिक-विज्ञान, सौन्दर्य-शास्त्र तथा प्रेम के विस्तृत क्षेत्रों को अपने में समेटे हुए हैं। किन्तु विषय की इन विविधताओं के मध्य भारतीय दर्शन, धर्म, संस्कृति और इतिहास का स्वर प्रमुख हो उठा है। उनमें भी जीवन के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए किस धार्मिक पद्धति की आवश्यकता है, इसकी ओर स्पष्ट संकेत मिलता है। नवीन संदर्भों में, अभारतीय परिवेश में भी किस प्रकार प्राचीन ऋषियों की जीवन-पद्धति अथवा मूल्य अपनाये जा सकते हैं—प्राय: सभी उपन्यासों में इसकी सर्वथा नवीन, वैज्ञानिक और सूक्ष्म व्याख्या की गई हैं।

मानव में पारिवारिक जीवन के परिवेश, संयुक्त परिवार की उपयोगिता, अधिक सन्तान का महत्त्व और आवश्यकता, आर्थिक संकट में कर्म द्वारा धनोपार्जन, साम्प्रदायिकता का विरोध आदि प्रश्नों का संतुलित, वैज्ञानिक, सुविचारित और रोचक उत्तर मिलता है। यद्यपि 'जनसंख्या की वृद्धि एक अनिवार्य आवश्यकता है' इस मत से सर्वथा सहमत नहीं हुआ जा सकता। फिर भी इस सन्दर्भ में लेखक की तर्क पद्धति से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा जा सकता।

'मानव' का सदानन्द आधुनिक भारत का आधुनिक सेलानी नवयुवक है जिसमें जाति-पाँति, छुआ-छूत, अपने-पराये का भेद-भाव सर्वथा नहीं है। वस्तुत: वह सही अर्थों में कवि है। प्रेम का उदात्त रूप ही उसे स्वीकार्य है। पूरे उपन्यास में उसका व्यक्तित्व आकर्षक, प्रेरक और अनुकरणीय बन पड़ा है। अनेक संघर्षों और विसंगतियों के मध्य वह सभी से जूझता हुआ अपनी मन्जिल तय कर लेता है। लक्ष्मी का आदर्श रूप भारतीय नारी की प्राचीन मर्यादा और आधुनिक नारी के नवीन, किन्तु व्यापक दृष्टिकोण को अपने में समाहित किये हुए है।

शिल्प की दृष्टि से उपन्यास में शिथिलता है और घटनाओं में तीव्रता है जिससे 'संस्पैंस' समाप्त-सा हो जाता है। कथा की आवृत्तियाँ भी खटकती हैं। वस्तु-संगठन में कलात्मकता का अभाव है। वर्णनात्मकता अधिक।

भाषा में पंजाबीपन और हिन्दुस्तानी का प्रभाव है। उद्धरणों की अशुद्धियाँ खटकती हैं। उपन्यासकार गुरुदत्तजी यदि कवि बनने का प्रयत्न न करते तो बहुत ही अच्छा होता।

जहाँ 'मानव' में उपर्युक्त शिथिलताएँ देखकर उपन्यासकार के प्रति श्रद्धा नहीं हो पा रही थी वहीं उनके उपर्युक्त तीन अन्य उपन्यासों को पढ़कर आश्चर्य की सीमा ही नहीं रही। वस्तु, पात्र, वातावरण, कथोपकथन, भाषा, शैली, कथा

आदि सभी दृष्टियों से 'विक्रमादित्य साहसांक', 'दिग्विजय', और 'सुख की खोज' पाठक को जिस सीमा तक प्रभावित करते हैं वह हिन्दी साहित्य के उन समीक्षकों की आँख खोलने के लिए पर्याप्त हैं जिन्होंने बिना गुरुदत्तजी के (बाद के) उपन्यासों का अध्ययन किये ही उनकी ओर से मुख फेरकर आँख बन्द कर ली हैं। कृति का मूल्यांकन समय सापेक्ष होता है। अतएव समकालीन समीक्षकों को ही 'ब्रह्मा' समझना मेरी दृष्टि में सार्थक नहीं। अस्तु।

'विक्रमादित्य साहसांक' भारत के गुप्तकालीन इतिहास की कई गुत्थियों को सुलझाता है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और विक्रम सम्वत् चलाने वाले उज्जयिनी के विक्रमादित्य की भिन्नता को सप्रमाण मिटाकर यह उपन्यास गुरुदत्तजी की व्यापक अध्ययनशीलता, विवेक और तर्क-दृष्टि तो प्रकट ही करता है साथ ही भारतीय इतिहास के प्रति उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा को भी जताता है। रामगुप्त और चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध तथा ध्रुवदेवी की प्रचलित कथा को प्रमाण और तर्क, विवेक और भारतीयता की भावना द्वारा गुरुदत्तजी ने सर्वथा नया मोड़ दिया है। यद्यपि चन्द्रगुप्त का आरम्भ से ही 'विक्रम' नामकरण सन्देह उत्पन्न करता है और यत्र-तत्र कुछ भौगोलिक प्रमाद हो गया है, जैसे पाटलिपुत्र से विदर्भ जाते समय काशी को विपरीत दिशा में बताया गया है—यह एक भौगोलिक प्रमाद है। परन्तु इन दो एक छोटी बातों (जो कि नगण्य हैं) के अतिरिक्त यह ऐतिहासिक उपन्यास अपनी शिल्प-योजना और सन्दर्भण कला, 'सस्पैंस' और रोचकता, वस्तु-संगठन की कलात्मकता और निर्वाह आदि की दृष्टि से हिन्दी के किसी भी ऐतिहासिक उपन्यास से श्रेष्ठ कहा जा सकता है। भारतीयता, चारित्रिक उत्थान, नैतिक आदर्श का व्यावहारिक रूप, अर्थनीति, कूट-नीति और राजनीति का अद्भुत समायोजन और उनके भीतर से झाँकती गुरुदत्तजी की प्राचीन और नवीन मिश्रित तर्क-दृष्टि, इतिहास और प्रेम के साहचर्य का अद्भुत निर्वाह—सब कुछ अद्भुत। काश ! किसी भी हिन्दी के 'स्वनामधन्य' आलोचक की दृष्टि इस उपन्यास पर पड़ी होती।

इस उपन्यास की भाषा बहुत ही सशक्त है। शैली में रोचकता है। इस उपन्यास का नायक यद्यपि विक्रम है (उपन्यासकार की दृष्टि में) परन्तु सामान्य पाठक वररुचि को ही इसका नायक समझ पाता है। विक्रम के शयनागार में चले जाने के बाद वररुचि का भाग्यवती के कक्ष (कालिन्दी के संकेत पर) में प्रवेश और उपन्यास की समाप्ति भी इसी बात का प्रतिपादन करते हैं। सम्भव है कि पाठकों को नायक के सम्बन्ध में वही स्थिति स्वीकार करनी पड़े जो 'मुद्राराक्षस' नाटक में चन्द्रगुप्त और चाणक्य के सम्बन्ध में स्वीकार करनी पड़ती है।

उक्त उपन्यास में नाटकीय तत्त्वों का समावेश मिलता है। कहीं-कहीं ऐसा लगता है कि यह नाटक ही तो नहीं है। मुद्राराक्षस जैसी कूटनीति भी इस उपन्यास में दृष्टव्य है। वस्तुतः इसमें लेखक की प्रतिभा, वाक्य-पटुता, वक्तृत्व-कला और अभिव्यंजना शैली की सशक्तता का परिचय मिलता है।

'मानव' में अधिक सन्तान होने का समर्थन किया गया। 'विक्रमादित्य साहसांक' में दो-दो पत्नियों का होना स्वीकारा गया और 'दिग्विजय' में भी (रुक्मिणी और नीलमणि को गोविन्द से विवाह द्वारा) एकाधिक पत्नीवाद का समर्थन किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक इसे हिन्दू संस्कृति की रक्षा के लिए एक आवश्यक साधन समझता है।

'दिग्विजय' में शंकराचार्य का अल्पायु में ही अपनी तर्क और विवेक बुद्धि द्वारा समस्त भारत में अपने सिद्धान्त का प्रचार कर लेना तथा काशी के पण्डितों, प्रतिष्ठानपुरी के आचार्यों (कुमारिलभट्ट, प्रभाकराचार्यादि), पूर्व के पण्डितों, दक्षिण के पुरोहितों एवं समस्त बौद्धमतावलम्बियों को परास्त करके सारे देश में दिग्विजय कर लेने की कथा वर्णित है। दर्शनशास्त्र के शुष्क चिन्तन और तर्क को अत्यन्त रोचक और सरल बनाकर शांकर अद्वैत को सामान्य पाठक के मन में सरलता से बैठा देना यह केवल गुरुदत्त की लेखनी द्वारा ही सम्भव था, प्रेमचन्द्र को शायद इसमें सफलता न मिलती। जिस प्रकार 'विक्रमादित्य साहसांक' में इतिहास की शुष्कता से पाठक 'बोर' नहीं होने पाता, अपितु उसका मन पूरा उपन्यास समाप्त करके ही विराम लेना चाहता है उसी प्रकार 'दिग्विजय' में पाठक रम जाता है। पूर्वार्द्ध में नीलाम्बरा तथा उत्तरार्द्ध में गोविन्द, रुक्मिणी और नीलमणि की रोचक कथा को जोड़कर उपन्यासकार ने शंकर के शुष्क चिन्तन को रसभरी गगरी में डाल दिया जिसमें गंगा-जल की मात्रा अधिक थी। अतएव वह कभी विकार को प्राप्त नहीं हो सका।

इस उपन्यास की शिल्प-योजना भी विलक्षण है। कहना पड़ेगा कि ऐसा हिंदी में नहीं लिखा गया। सन्दर्भण, सस्पैंस, रोचकता आदि के कारण दुरूह दर्शन हृदयंगम हो जाता है। मेरा निश्चित मत है कि वर्तमान भारत के नवयुवकों को यदि इतिहास, धर्म, दर्शन आदि जैसे विषयों को ऐसे ही माध्यमों से पढ़ाया जाये तो उनकी मन, बुद्धि में भी ये विषय आसानी से पैठ सकते हैं। इस औपन्यासिक सुविधा को मैं अन्य साधनों से श्रेष्ठ मानता हूँ।

भाषा विषय के अनुरूप है। संस्कृत के उपयोगी उद्धरण सामान्य पाठक के लिए ग्राह्य हैं। किन्तु लेखक की अपनी कविताएँ लेखक के महान् व्यक्तित्व को सीमित कर देती हैं। पूरे उपन्यास में शंकराचार्य के अप्रतिम व्यक्तित्व के अतिरिक्त

यह निर्णय नहीं हो पाता कि ऊदल, विरोचन और गोविन्दप्रिय में दूसरे नम्बर का प्रमुख पात्र कौन है ?

तर्क, विवेक और प्रमाण के द्वारा शांकर अद्वैत की प्रतिष्ठा की गई है। वर्णाश्रम व्यवस्था को स्वीकारा गया है। प्राचीन भारतीय धर्म के अनुसार न्याय और समता की व्यवस्था की गयी है साथ ही नवीन सन्दर्भों (वर्तमान) में धर्म की सर्वथा नवीन व्याख्या भी मिलती है। गुरुदत्तजी की तर्क और नवीन दृष्टि की जितनी सराहना की जाये, वह थोड़ी होगी। भारतीय संस्कृति, धर्म और दर्शन की इसी प्रकार की संकीर्णता रहित, साम्प्रदायिकता रहित वैज्ञानिक व्याख्या के कारण ही हिन्दू संस्कृति की रक्षा हो सकेगी, इसमें सन्देह नहीं। लेखक इस सफल और स्तुत्य कार्य के लिए बधाई का पात्र है।

'मानव' में सदानन्द का मुसलमान लड़की को अपनाना, कायस्थ वकील द्वारा मुसलमान (वैश्या) लड़की से विवाह कराना, 'विक्रमादित्य साहसांक' में विक्रम द्वारा अपनी विधवा भाभी एवं अन्य राजकन्या से विवाह कराना, वररुचि का अपनी पत्नी की स्वीकृति के साथ भाग्यवती से दूसरा विवाह कराना, 'दिग्विजय' में ऊदल का नीलाम्बरा से और गोविन्दप्रिय का रुक्मिणी और नीलमणि (नर्तकी) से विवाह कराना; लेखक का साम्प्रदायिकता उन्मूलन अभियान के लिए आह्वान कहा जा सकता है। साथ ही पुरानी परम्परा की दोषपूर्ण रूढ़ियों को तोड़कर व्यापक मानवीय धरातल पर उनकी पुनः प्रतिष्ठा सर्वथा नवीन और वैज्ञानिक दृष्टि का बोधक कहा जा सकता है। ऐसे स्वस्थ दृष्टिकोण और ऐसी स्वस्थ व्याख्या द्वारा ही हिन्दुत्व और धर्म की रक्षा हो सकती है।

'सुख की खोज' गुरुदत्तजी का नवीनतम उपन्यास है। लगभग ७६ वर्ष का वृद्ध इस उपन्यास में आधुनिक नवयुवकों के लिए उनके अनुरूप कथा रचकर अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर एक सुनियोजित और सुविचारित योजना प्रस्तुत करता है। वास्तव में वर्तमान पीढ़ी के सामने जो दिशाहीन अंधकार छाया हुआ है, उसका एक वैज्ञानिक निदान गुरुदत्तजी के इस उपन्यास में प्राप्त होता है।

एक भारतीय परिवार के तीन नवयुवक क्रमशः अमेरिकन, जापानी और भारतीय नवयुवतियों से अपनी इच्छानुसार, किन्तु माता-पिता की अनुमति से (विनोद को छोड़कर) विवाह करते हैं। तीनों सुख की खोज में हैं, किन्तु अमेरिकन कन्या और उसका पति सुख की व्याख्या में अधिक दिलचस्पी लेते हैं। आगरा के ताजमहल दर्शन से सुख की व्याख्या आरम्भ होती है। इसी प्रसंग में लेखक ताजमहल को शिव-मंदिर (प्रारंभ में) की संज्ञा देता है। यद्यपि यह अप्रासंगिक है, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से यह महत्वपूर्ण कथन है।

आधुनिक नवयुवक अन्तर्जातीय अन्तर्धार्मिक और अन्तर्राष्ट्रीय विवाह के इच्छुक हैं, किन्तु साथ ही वे सुख की खोज में भी हैं ('आनन्द' शब्द से उन्हें लगाव नहीं है)। लेखक उक्त विवाह युक्त पात्रों की योजना करता है किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी वह हिन्दू संस्कृति के अनुसार आचरण पर बल देता है। अतएव इन नवयुवकों की माता, जो आचरण में हिन्दू संस्कृति की पोषक है और विचारों में प्रगतिशील (जैसा कि लेखक स्वयं है), है उनके प्रभाव से उनकी दो सन्तानें (विदेशों में विवाहित) शुद्ध हिन्दू रीति और नीति का पालन करते हैं। माता-पिता का आदर, सत्य भाषण, कर्म-निष्ठा, पारस्परिक सहानुभूति, आस्तिकता आदि का वे आचरण करते हैं। एक पुत्र साम्यवादी विचारधारा का है; इसी कारण उक्त आचरण नहीं कर पाता। अतएव उसे कष्ट भोगना पड़ता है और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी अपनी सास से प्रभावित होती है; फिर भी उसमें भोग-लिप्सा के कारण चंचलता विद्यमान है।

पूरे उपन्यास में 'माताजी' का वैसा ही 'सुपर ह्यू मन' रूप लक्षित होता है जैसा कि जयशंकर प्रसाद के 'अजातशत्रु' नाटक में 'मल्लिका' का। ऐसा प्रतीत होता है कि इस पात्र में चुम्बकत्व और ईश्वरत्व दोनों विद्यमान हैं जिससे वह क्षण भर के सम्पर्क में 'क्रूर-कुटिल-खल-कामी' सभी को शुद्ध करके तार सकता है। ऐसे पात्र हमारे बीच नहीं के बराबर हैं।

'सुख की खोज' की भाषा सशक्त है और प्रवाहमय है, शैली में रोचकता है। इस उपन्यास में लेखक लेखक ही रहता है, कवि नहीं बनता। यह मेरी दृष्टि से लेखक की सराहनीय उपलब्धि है।

जिस 'सुख की खोज' में नया मानव लगा है वह नौकरी करने से प्राप्त नहीं हो सकता। अतएव अमेरिका में रहने वाला भारतीय दम्पति अपनी बहुत बड़ी नौकरी छोड़कर 'सहकारी व्यापार' चलाता है जिसमें बाद में उसका अन्य भाई, उसकी पत्नी, बच्चे, तीसरे भाई की पत्नी, बच्चे, रिश्तेदार और घर के सभी अन्य सदस्य हिस्सेदार बनते हैं। सहकारी व्यापार द्वारा नौकरी की हीन भावना से बचने का बड़ा ही उत्तम उपाय लेखक ने सुझाया है। गुरुदत्त की वृद्ध बुद्धि अभी बूढ़ी नहीं हुई और वह नित्य नये विचार, योजना और प्रस्ताव नये सन्दर्भण परिवेश में रखते जा रहे हैं और प्रत्येक नयी परिस्थिति के अनुसार अपने को ढालते जा रहे हैं। विज्ञान की उपलब्धियों को आत्मसात करके उसके भीतर भी हिन्दू संस्कृति अथवा आर्य-संस्कृति का बीज बोते जा रहे हैं और उसमें उनकी तर्क बुद्धि, विवेक बुद्धि सफल होती जा रही है। इससे बड़ी सफलता किस उपन्यासकार को मिल सकी है ? आधुनिक नवयुवक का मार्ग-दर्शन उसकी

इच्छानुसार एक बूढ़ा और बूढ़ी बुद्धि वाला कर रहा है, क्या यह कम आश्चर्य है ? यह सब गुरुदत्तजी की भारतीय संस्कृति के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा का परिचायक है ।

उपन्यास का शिल्प 'गोदान' की तरह कसा हुआ है । कथानक में बिखराव 'गोदान' जैसा ही है, किन्तु 'सुख की खोज' की रोचकता और वैज्ञानिक युग को अपने में समेट कर चलने की क्षमता 'गोदान' में नहीं है । प्रेमचन्द के सभी उपन्यास और कहानियाँ पूर्वाग्रह ग्रसित हैं । अतएव एक ही दृष्टिकोण से प्रायः एक ही समस्या को उभारती है । इसलिए उनकी रोचकता, आकर्षण, कौतूहल और 'संस्पेंस' फीका पड़ जाता है । गुरुदत्ताजी के उपन्यासों में विविधता है, परिस्थितियों के अनुसार ढलने की क्षमता है, सर्वांगीणता है, उदात्तता है, नवीन दृष्टि है और सन्दर्भ एवं युग-चेतना का बोध है; साथ ही औपन्यासिक कला-संयोजन की क्षमता भी है। अतएव गुरुदत्तजी के उपन्यास हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासों की कोटि में रखे जाने चाहिएँ ।

हिन्दू धर्म, दर्शन और संस्कृति के प्रचार, प्रसार के लिए तथा आस्तिकता की भावना को स्थिर रखने के लिए जो योग-साधना गुरुदत्ताजी कर रहे हैं, वह उनका कल्याण तो करेगी ही, पाठक वर्ग का अथवा मानवता का भी उससे कल्याण होगा ।

[पृष्ठ ५०३ का शेष]

शेख अब्दुल्ला की भाँति ही शेख मुजीब ने भी एक स्वतन्त्र राज्य चाहा था। परन्तु वह चाल में भूल कर गया। एक निःसहाय छोटे-से प्रान्त के लिये किसी बड़े राष्ट्र की सहायता बिना यह सम्भव नहीं हो सकता था। बहुतांश जनता का पूर्ण समर्थन प्राप्त कर लेने के बाद अपने दमनचक्री शासन के रुख को परखकर यदि हिन्दुस्तान के साथ विलय करने की घोषणा कर दी होती तो परिस्थिति अन्यरूप ही होती। ऐसी स्थिति में हिन्दुस्तान भी स्वतन्त्र रूप से हर प्रकार की सहायता करने के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार कर सकता था। 'चिड़िया चुग गई खेत'। अब कुछ नहीं होने का। केवल रह गया एक समाधान। शस्त्र-परीक्षा। यदि हम बलवान सिद्ध हों एवं यदि हम में सत्साहस हो तो पूर्वी बंगाल को हिन्दुस्तान के साथ विलय कर लें। अन्यथा वे हिन्दू कभी भी वापस नहीं जायेंगे। केवल गेहूँ के साथ कुछ घुन भी पिस गया है इसीलिये ही विश्व भर का समर्थन, प्राप्त होगा यह आशा करना व्यर्थ की मृगमरीचिका है। •

आर्य समाज की राजनीति और 'आर्य-सभा'

श्री गुरुदत्त

स्वामी अग्निवेश के हरियाणा क्षेत्र में राजनीतिक कार्य का परिणाम यह आर्य-सभा है। परन्तु यह कुछ एक आर्य समाजियों के काँग्रेस दल एवं शासन का समर्थन करने की प्रतिक्रिया है।

सामान्य आर्यसमाजी या तो सरकारी सेवा-कार्य में लीन है अथवा ठेकेदारी, वकालत, चिकित्सा-कार्य इत्यादि व्यवसाय करता है। अधिकांश आर्यसमाजी अर्धशिक्षित और विश्वविद्यालयों की शिक्षा प्राप्त व्यक्ति हैं। इस पर भी वह महर्षि स्वामी दयानन्द की कृपा से उच्च भावनाओं से, राष्ट्रहित के विचार से और भारत के ऋषि-महर्षियों द्वारा प्रतिपादित धर्म और संस्कृति पर श्रद्धा रखने वाला है।

अतः कांग्रेस राज्य के अनैतिक व्यवहार एवं इसके भारतीय संस्कृति और राष्ट्र-भावना के विपरीत आचरण को देख सामान्य आर्यसमाजी भारी असन्तोष अनुभव कर रहा है। परन्तु आर्य समाज के नेता सरकारी सेवक होने के कारण अथवा ऐसे व्यवसायों से सम्बन्ध रखने के कारण जिनमें सरकार पर निर्भर किया जाना अनिवार्य है, वह प्रायः काँग्रेस सरकार का समर्थन करता देखा जाता है।

सामान्य आर्यसमाजी इस स्थिति से असन्तोष अनुभव करता है। वह देश की सरकार को वेद निन्दकों की सहायता, भारतीय परम्पराओं की अवहेलना और राष्ट्रहितों का हनन करते देखता है और अपने नेताओं को इस पर मौन अथवा इनका सहायक देख छटपटाता है, परन्तु अपनी अर्ध अथवा अशुद्ध शिक्षा के कारण नहीं जानता कि क्या करे?

यह है आर्य समाज की उस समय की स्थिति जब श्री श्याम राव आविर्भूत हो आर्य समाज क्षेत्र में राजनीतिक कार्य करने लगे। यह स्वाभाविक ही है कि सामान्य आर्यसमाजी श्री श्याम राव जो अब स्वामी अग्निवेशजी हैं, की ओर

देख ग्राशा ग्रौर सुख ग्रनुभव करे ।

इसके साथ यह भी स्वाभाविक ही है कि वे सरकारी सेवक, ठेकेदार, वकील, डाक्टर इत्यादि जो प्रथम तो विश्व विद्यालयों की दूषित शिक्षा के प्रभाव में हैं ग्रौर दूसरे ग्रार्य समाजों में पदों को सुशोभित कर रहे हैं, इस राजनीतिक कार्य से बेचैनी अनुभव करें ।

इसके ग्रतिरिक्त देश-भर में ग्रार्यसमाजियों की करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति है जिसके विषय में पदाधिकारी अत्यन्त चिन्ता करते रहते हैं । राजनीतिक दल अपनी ग्रचल सम्पत्ति नहीं बनाते । राजनीति में तो केवल सरकार ही सम्पत्ति रख सकती है । यह कानून तो नहीं है इस पर भी यह व्यावहारिक है । कारण यह कि किसी समय भी सरकार से विरोध हुग्रा तो सम्पत्ति ज़प्त हो सकती है । कम-से-कम कुछ गुण्डों से वह फुंकवा दी जा सकती है ।

ग्रभिप्राय यह कि जिस संस्था की करोड़ों रुपये की सम्पत्ति है, वह राजनीतिक क्षेत्र में यदि कभी ग्रा सकती है तो वह तत्कालीन सरकार के पक्ष में ही ग्रा सकती है ।

ग्रत: ज्यों-ज्यों ग्रार्य समाज़ बल पकड़ती जाती है, ग्रार्य समाज के महन्तों के हृदयों में बेचैनी उत्पन्न होती जा रही है और वह आर्य-सभा के विरुद्ध विष वमन करने लगे हैं ।

इसका यह ग्रभिप्राय नहीं कि ग्रार्य-सभा की राजनीति देश, धर्म ग्रौर राष्ट्र के लिए हितकर है । यह तो ग्रार्यसमाजियों की बेचैनी से एक पृथक् बात है ।

मेरा तो इस विषय में यह कहना है कि ग्रार्य समाज संस्थायें ग्रपने को ग्रार्य-सभा से ग्रसम्बद्ध क्यों नहीं समझतीं ? ग्रार्य नाम रखने से ही वह सभा क्या ग्रार्य समाज की सम्पत्ति हो गयी है जो कि ग्रार्य समाजों ग्रौर उसके समाचार-पत्रों को उसकी ग्रोर विशेष ध्यान देने की ग्रावश्यकता अनुभव होने लगी है ।

ग्रार्य-सभा के वार्षिक ग्रधिवेशन में यह कहा गया है कि ग्रार्य-सभा एक ऐसी संस्था है जैसे कोई डी० ए० वी० स्कूल हो । सरल चित्त ग्रार्यसमाजी यह समझते रहे थे ग्रौर ग्रब भी समझते हैं कि डी० ए० वी० स्कूल तथा कॉलेज आर्य समाज का कार्य कर रहे हैं । यह भ्रम था ग्रौर ग्रब भी यह भ्रम है । बहुत रियायत करें तो यही कह सकते हैं कि डी० ए० वी० स्कूल ग्रन्य शिक्षा केन्द्रों की ग्रपेक्षा देश, जाति ग्रौर ग्रार्य-सभ्यता को कम हानि पहुंचा रहे हैं ।

यह कहना तो एक महान भूल होगी कि डी० ए० वी० कॉलेज तथा ग्रन्य ग्रार्यसमाजी शिक्षा केन्द्र जो सरकारी शिक्षा-पद्धति से शिक्षा-कार्य कर रहे हैं,

वह आर्य-समाज का कार्य कर रहे हैं।

मैं समझता हूँ कि आर्य-सभा वाले जब स्वयं कहते हैं कि वे आर्य-समाज से वही सम्बन्ध रखते हैं जो डी० ए० वी० संस्थायें आर्य-समाज से रखती हैं तो यही कहना होगा कि आर्य-सभा भी समाजियों की चिन्ता का कारण नहीं होनी चाहिये।

वैसे आर्य-सभा भी यदि अपने को आर्य समाज से सम्बन्धित मानती है तो महान भूल कर रही है। मुझे आर्य समाज को होने वाली हानि की चिन्ता नहीं। मुझे चिन्ता है आर्य-सभा की सफलता की। आर्य समाज के साथ सम्बन्ध प्रकट करने से आर्य-सभा अपना कार्य-क्षेत्र संकुचित करती है।

मुझे स्मरण है कि मैंने एक बार अग्निवेशजी से यह कहा था कि देश में स्वामी दयानन्दजी की राजनीति की पोषक राजनीतिक संस्था होनी तो चाहिए परन्तु यह आर्य समाज से सम्बद्ध नहीं होनी चाहिये। इससे देश का कल्याण नहीं होगा।

इसके साथ ही मैं समझता हूँ कि आर्य समाजों को अपने मंच पर सैद्धान्तिक राजनीति पर व्यापक प्रचार होने देना चाहिए। क्रियात्मक राजनीति से आर्य समाजों को पृथक् रहना चाहिए, परन्तु अपने सदस्यों को उस राजनीति का पूर्ण ज्ञान कराना चाहिए जिसकी एक झलक स्वामी दयानन्दजी महाराज ने अपने ग्रन्थों में दी है।

आर्यसमाजी के लिए राजनीति का ज्ञान उतना ही आवश्यक होना चाहिए जितना कि गृहस्थ-धर्म का तथा वर्ण-धर्म का। आज राजनीति को यूरोप के राजनीतिज्ञ एक दिशा विशेष दे रहे हैं। यह दिशा उससे सर्वथा विपरीत है जो दिशा हमारे धर्म-शास्त्र देते हैं और जिसे स्वामी दयानन्द देना चाहते थे। इस कारण यूरोप द्वारा दिया जाने वाला राजनीतिक विचारों का थोथा पन और उनमें दोष तो आर्यसमाजियों को पता होना चाहिये।

भारत में यूरोप की अन्धाधुन्ध नकल हो रही है। यह इस कारण कि सब प्रकार के विचारों के स्रोत, शिक्षा को हमने यूरोप से आयात किया हुआ है। मैं समझता हूँ कि यह राजनीति न तो यूरोप के लिए हितकर सिद्ध हो रही है और न ही वह भारत में किसी कल्याण की सूचक है। इस विचारधारा को उटलने की आवश्यकता है और आर्य समाज इसके योग्य है।

विचार-परिवर्तन का कार्य राजनीति में क्रियात्मक कार्य करने वाले नहीं कर सकते। सरकारी निर्वाचनों में भाग लेने वाले वोटों के लोभ में अपने सिद्धान्तों को भी पतला करने पर विवश हो जाते हैं।

आर्य समाज जैसी संस्था के लिए इसकी आवश्यकता नहीं होती। जब से आर्य-सभा ने निर्वाचनों में भाग लेना आरम्भ किया है, यह भी विवश हो रही है कि स्वयं को समाजवाद तथा साम्यवाद की ओर झुकती हुई प्रकट करे। कुछ लोग तो यह कहते हैं कि अग्निवेश हृदय से कम्युनिस्ट है। यह तो मैं न जानता हूँ और न कहता हूँ। इस पर भी सभा के कर्मों और प्रस्तावों को देखकर में यह कहने में संकोच नहीं कर सकता कि जनसंघ प्रभृति दलों की भाँति यह भी अपने को सिद्धान्त से समाजवाद का पोषण कर रहा प्रतीत होता है।

मेरे विचार में यह इस कारण है कि सभा ने राजनीति में दिशा देने का काम छोड़कर देश में चल रही आँधी के साथ बह जाने का कम-से-कम नाटक करना तो आरम्भ कर ही दिया है। यह इस कारण कि वोटों की मार्केट में ये भी खरीदार हो गये हैं।

आर्य-सभा ने अपने नारे यह बना लिये हैं :—

सम्पत्ति की सीमा होनी चाहिये। पुत्र अथवा पुत्री के उत्तराधिकार समाप्त होने चाहियें, मानवों में समानता लानी चाहिए। साथ वह यह प्रकट कर रहे हैं कि जब वह राज्य सत्ता पा लेंगे तो ये और ऐसे ही कार्य करेंगे।

मेरे ज्ञान और विचार में ये न तो भारतीय परम्परा के अनुरूप हैं और न ही स्वामी दयादन्दजी द्वारा प्रचारित समाज व्यवस्था के।

हम समझते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को धर्मयुक्त उपायों से अपने अर्जन को वृद्धि देने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। अर्जन पर धर्म का नियन्त्रण होना चाहिए। अर्जित का भोग तथा दान-दक्षिणा की स्वतन्त्रता वैदिक है।

भोग और दान-दक्षिणा में भी धर्म का नियन्त्रण है और यह नियन्त्रण स्वेच्छा से पालन करने योग्य है।

आर्यसमाजियों को यह नहीं भूल जाना चाहिए कि इस देश में मुसलमानों का राज्य हो चुका है और पुनः विधर्मियों का राज्य हो सकता है। यदि हमने अपने यज्ञ, दान और तप भी सरकार के अधीन कर दिये तो विधर्मियों के राज्य में आपके हवन, सन्ध्या और गुरुकुल, स्कूल, कालेज भी बन्द किये जा सकेंगे।

परन्तु कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि आर्य-सभा का विरोध इतना सिद्धान्तों का नहीं जितना कि नेतागीरी का है।

मैं आर्य-सभा की गतिविधियाँ न तो वेदानुकूल मानता हूँ और न ही श्री स्वामी दयानन्दजी के मतानुसार। यह एक नया राजनीतिक दल है। यह भारत की राजनीति की गन्दगी को कम तो कर नहीं रहा, कदाचित् उसमें वृद्धि ही कर रहा है।

दस वर्ष पूर्व

भारतवर्ष का यह आंशिक स्वराज्य

□

(स्व०) पं० भगवद्दत्त

भारत की भूमि पुण्यभूमि है। यह ऋषियों का पवित्र देश है। इसके स्फीत, श्यामल भूतल पर आदिकाल से वैदिक ऋचायें गायी जाती रही हैं। यहाँ का ब्राह्मण अतिमानुष है। यह वैदिक संस्कृति की सदा रक्षा करता रहा है। भगवान् ब्रह्मा से लेकर व्यास, जैमिनी और याज्ञवल्क्य पर्यन्त वैदिक सिद्धान्त के अनेक रक्षक हो चुके हैं। उन्हीं के कारण चार्वाक आदि नास्तिक मत यहाँ पनप नहीं पाये। फिर महाभारत युद्ध के लगभग १३०० वर्ष पश्चात् उस संस्कृति पर बौद्धों का का घोर आक्रमण आरम्भ हुआ। उस समय से नास्तिकवाद के घनघोर बादल भारत के गगन-मण्डल पर छाने लगे। इस आक्रमण में राजसहायता भी हुई। तब पुण्यकीर्ति उद्योतकर, कुमारिल, शंकर और उदयन आदि ने उस आक्रमण को रोका। रोका ही नहीं उन्होंने उस आक्रमण को मद्धम और अन्ततः निस्तेज कर दिया।...

इसके बाद आर्य संस्कृति पर इस्लाम का आक्रमण आरम्भ हुआ। यह कई शतियों तक चलता रहा। इसमें भी राजसहायता होती रही। यह आक्रमण अभी चल ही रहा था कि पश्चिम से ईसाई मत की आँधी आनी आरम्भ हुई। ईसाई पादरियों का जाल बिछने लगा। इसमें भी राजसहायता का अंग था। अंग्रेजी नीति निश्चित थी। उस पर चलने वाले विदेशी शासक इस्लाम को भी प्रच्छन्न सहायता दे रहे थे। ऐसे दोहरे आक्रमण के विकराल समय में महामुनि पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती का आविर्भाव हुआ।...उन्होंने इन मतों पर एक साथ अशनि-प्रहार किया!...विरोधी घबरा उठे। उनका साहस गिरता गया, आर्य संस्कृति फिर सिर उभारने लगी।...

तदन्तर आंशिक स्वराज्य आया, पूर्ण स्वराज्य नहीं। अंग्रेज भारतीय बुद्धि

[शेष पृष्ठ ५२० पर]

समाचार समीक्षा

देवा तेरे रूप अनेक

गत मास दिल्ली में बालयोगेश्वर के मेले में एकत्रित भीड़ ने एक स्थानीय दैनिक समाचार पत्र के कार्यालय पर इस कारण धावा बोल दिया कि उस समाचार-पत्र में उनके गुरु की खबर अच्छी तरह नहीं ली गई। इस अप्रत्याशित आक्रमण के परिणामस्वरूप समाचार-पत्र के कार्यालय एवं कर्मचारियों को तो क्षति पहुँची ही किन्तु अनेक पथिकों के साथ-साथ पुलिस के वरिष्ठ अधिकारियों सहित अनेक व्यक्तियों को भी चोटें आईं। न केवल इतना एक पुलिस कर्मचारी इतना पीटा गया कि दो दिन बाद अस्पताल में उसकी मृत्यु हो गई और वह दिव्य ज्योति की शरण में पहुँच गया।

बल प्रयोग की दूसरी घटना गत मास ७ जन्तर-मन्तर रोड स्थित काँग्रेस कार्यालय में भी घटी। कहा जाता है कि उस कार्यालय में कार्य करने वाले कतिपय कर्मचारियों ने इंदिरा काँग्रेस के अधिकारियों को ज्ञापन दिया कि वे आकर वहाँ का कार-भार सम्भालें, उनके लिये द्वार खुले मिलेंगे और इंदिरा काँग्रेस के सदाबहार दो सचिव शंकरदयाल शर्मा और चन्द्रजीत यादव ढोल दमामे लेकर वहाँ पहुँचे और तत्रस्थ काँग्रेसाध्यक्ष को धकेल कर तथा त्यागी को लात मारकर स्वयं आसन जमा बैठे। यह सब उस दिन हुआ जिस दिन श्रीमती गांधी दिग्विजय कर अपनी राजधानी में वापस आई थीं।

इंदिरा काँग्रेस उस कार्यालय में कब्जा करके ही शान्त नहीं हुई अपितु उसके कार्यकर्ताओं ने विरोधियों का अर्थात् उनके विरोधियों का, बहुत अपमान किया। जनसंघ के अध्यक्ष श्री वाजपेयी एवं बयोवृद्ध नेता आचार्य कृपालानी के साथ किया गया दुर्व्यवहार इसका साक्षी है। न केवल इतना अनशन शय्या पर आसीन मियाँ सादिक अली की पत्नी तक के साथ उन्होंने अभद्रता का प्रदर्शन किया। बहुत दिनों तक देवी इंदिरा इस विषय में मौन रहीं। उनका स्वर मुखरित हुआ अहमदाबाद में। वहाँ उन्होंने डा० शंकरदयाल एवं चन्द्रजीत यादव की प्रशंसा में ही अपना मुख खोला और उनकी तरुणाई के गुण गाये।

बालयोगेश्वर काण्ड की जब संसद में चर्चा हुई तो इंदिरा काँग्रेस के सर्वाधिक मुखर सदस्य शशिभूषण ने उसकी भर्त्सना की। किन्तु उसी प्रकार की जंतर-मंतर रोड की घटना को देवीजी ने युवक-सुलभ उत्साह का कार्य बताया।

अहिंसा के आसरम में खड़ा कबिरा रोय।
दो गांधिन के बीच में कानून रहा न कोय।।

काँग्रेस मंत्री पाकिस्तानी जासूस

केन्द्रीय जाँच ब्यूरो के एक विशेषज्ञ दल ने हाल ही में केन्द्र सरकार को एक सनसनीखेज रिपोर्ट दी है जिसमें दो काँग्रेसी नेताओं पर प० बंगाल व नैपाल की सीमा पर स्थित पूर्णिया जिले के किशनगंज में हुई तोड़-फोड़ की घटनाओं में शामिल होने का सन्देह व्यक्त किया गया है। उक्त रिपोर्ट के अनुसार इन दो नेताओं में से एक भोला पासवान सरकार में शामिल है और दूसरा भूतपूर्व मन्त्री है। दोनों का काठमाण्डू स्थित पाक दूतावास से सीधा सम्पर्क है। दोनों इंदिरा काँग्रेस के सदस्य हैं।

इन राष्ट्रविरोधी गतिविधियों को नियन्त्रित करने के लिए रिपोर्ट में सुझाव दिया गया है कि शिक्षक, व्यापारी व दुकानदार किशनगंज इलाके में काम कर रहे सभी लोगों की जनगणना कराई जाये और उक्त नेताओं की गतिविधियों पर कड़ी नज़र रखी जाय। इस सन्दर्भ में इस रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि शीघ्र ही ये कदम नहीं उठाये गये और पाक एजेन्टों का पता नहीं लगाया गया तो किशनगंज कश्मीर से भी बड़ा सिर दर्द बन सकता है।

राष्ट्रभाषा और काँग्रेस अध्यक्ष

इंदिरा काँग्रेस के प्रथम 'ऐडहाक' अध्यक्ष सुब्रह्मण्यम् ने नवम्बर मास की १२ तारीख को दिल्ली तामिल संगम की रजत जयन्ती के अवसर पर अपने श्री (?) मुख से काँग्रेस मन्त्रोच्चार करते हुए कहा कि **हिन्दी मात्र सम्पर्क भाषा है, राष्ट्रभाषा नहीं।** यह वही तमिल संगम है जो अपने प्रकाशनों में तमिल भाषा में प्रयुक्त होने संस्कृत शब्दों का सर्वथा बहिष्कार करने के लिए कटिबद्ध है। यद्यपि तमिलियन इस बात को भली प्रकार जानते हैं कि उनकी भाषा में ७० प्रतिशत शब्द संस्कृत भाषा के शब्द हैं। जिनको संस्कृत से इतना द्वेष हो वे हिन्दी को किस प्रकार सहन कर सकते हैं।

पाठकों को स्मरण होगा कि यही सुब्रह्मण्यम साहब भाषा के प्रश्न पर हिन्दी के प्रति अपना द्वेष व्यक्त करने के लिए केन्द्रीय मन्त्रीमण्डल से त्यागपत्र दे अपने घर जाकर बैठ गये थे। देवी इंदिरा को ऐसे राष्ट्रद्रोही व्यक्ति की जब नितान्त आवश्यकता अनुभव हुई तो वे पुनः उसको दिल्ली बुला लाईं और

उसको फूट डालने वाली कांग्रेस का अध्यक्ष बना दिया।

लगता है हिन्दी के प्रश्न पर इंदिरा कांग्रेस समग्र रूप से इसके उन्मूलन में अपना गौरव समझती है। अन्यथा ऐसे राष्ट्रघातियों को अपने चारों ओर समेटने-सहजने का प्रयास नहीं किया जाता।

हिन्दी के प्रति द्वेषपूर्ण रुख का स्पष्टीकरण विधि एवं न्याय राज्य मंत्री के संसद में इस कथन से हो जाता है कि विगत तीन वर्षों में शासन ने कोई बिल, अध्यादेश अथवा सूचना को मूलतया हिन्दी में तैयार कर बाद में अंग्रेजी में प्रस्तुत नहीं किया अपितु मूल प्रारूप अंग्रेजी में ही तैयार होता है।

भारत स्वामिनी और हिन्दू सम्मेलन

गत ३०, ३१ अक्टूबर को नई दिल्ली में हिन्दू महासभा की ओर से एक हिन्दू सम्मेलन का आयोजन किया गया। जनसंघ को हिन्दू विरोधी संस्था मानने वाले कतिपय हिन्दू महासभाइयों के मस्तिष्क में उपजी प्रतिक्रिया स्वरूप इस सम्मेलन का आयोजन किया गया था। हिन्दू महासभा में एक गुट ऐसा है जो जनसंघ की प्रतिक्रिया फलस्वरूप ही फलता फूलता है। उसमें ही उसकी नेता-गीरी कायम रह सकती है। तदपि महासभा के भूतपूर्व अध्यक्ष और वर्तमान अधिवेशन के सभापति श्री बनर्जी का वक्तव्य सारपूर्ण होने पर भी नक्कारखाने में तूती की आवाज था। हाँ महासभा के वर्तमान अध्यक्ष ब्रजेशजी ने पूर्वकाल में देवी इंदिरा के सम्मान में प्रयुक्त "भारत स्वामिनी" शब्द को इस सम्मेलन में व्यंगात्मक रूप में प्रयुक्त किया। जनसंघ को अमरीकी एजेण्ट कहने में यहाँ भी ब्रजेशजी नहीं चूके।

जनविहीन कुर्सियों से खचाखच भरे भवन में मंच पर हिन्दू महासभा के अखिल भारतीय अध्यक्ष और प्रदेशीय अध्यक्ष दोनों ही गावतकिये का आश्रय लिये जनता जनार्दन की ओर अपने चरण पसारे शायमान शोभित हो रहे थे। यह इस सम्मेलन की तीसरी उपलब्धि थी। चौथी उपलब्धि यदि कोई हुई होगी तो उसकी प्रतीक्षा में समय नष्ट करना हमने उपयुक्त नहीं समझा। दिल्ली का कोई भी वरिष्ठ अथवा कर्मठ हिन्दू सभाई उस सम्मेलन में उपस्थित नहीं था।

सिखिस्तान और बंगलादेश

पूर्वी बंगाल अर्थात् पूर्वी पाकिस्तान में बंगला देश के नाम पर जो कुछ हुआ और उसके दमन के लिए पाकिस्तान सरकार ने जो दमन चक्र चलाया उसके विषय में विगत मार्च से अब तक बहुत कुछ कहा जा चुका है और कहा जाता है। हमने भी प्रारम्भ में इस विषय में अपना मत व्यक्त किया था और हमारा स्वर सामान्य स्वर से कुछ भिन्न था। आज भी हम समझते हैं कि हमें

अपने स्वर में परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं। आततायी की निन्दा और आहत की सहायता करना मानवता के नाम पर उचित मानना चाहिए किन्तु राजनीतिक दृष्टि से इसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप हम अनुपयुक्त समझते हैं। और राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वी मुजीबुर्रहमान को याहया रिहा करे अथवा न करे इस सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करना हम उपयुक्त नहीं समझते। पहले का मुजीब आज बदल गया है, यह जिनको भ्रान्ति है वे जो चाहें कहें किन्तु हमारी धारणा है कि मनुष्य-स्वभाव सर्वथा अपरिवर्तनशील है। राजनीति के क्षेत्र में तो इसके विपरीत हमने किसी को पाया ही नहीं। हमारे लिए मुजीब आज भी वही है जो पहले था। कोई राजनीतिक नेता आज तक बदला हो ऐसा हमने देखा नहीं। दल-बदल की बात दूसरी है।

बंगला देश को मान्यता के लिये छटपटाने वालों को हमने तब भी सावधान किया था कि यदि भारत में सिखिस्तान और द्रविड़स्तान की माँग उठी तो क्या आप उसके लिए उसी प्रकार के विचार व्यक्त करेंगे? यह प्रश्न भारतवासियों के लिए ही था। और आज भी हम उनसे ही प्रश्न करते हैं कि सिखिस्तान के लिये सरदार जगजीतसिंह द्वारा किये गए और किये जाने वाले दुष्प्रयत्नों तथा द्रविड़स्तान के लिये करुणानिधियकी सरकार तथा उसके दल द्वारा किये गए दुष्कर्मों की वे पुष्टि करेंगे?

बंगला देश की समस्या से भारत का अनेक प्रकार से सीधा सम्बन्ध है। और एक करोड़ विस्थापितों के भारत आ जाने से वह समस्या अब पाकिस्तान की समस्या नहीं भारत की समस्या बन गई है। पाकिस्तान ने तो अपनी अल्पसंख्यकों की समस्या को (कम से कम पूर्वी भाग में तो) हल कर ही लिया है। जो लोग यह विश्वास कर रहे हैं और जो यह विश्वास दिला रहे हैं कि विस्थापित अपने देश वापस जावेंगे वे मृग-मरीचिका के भ्रमजाल में जकड़े हैं अथवा भारतवासियों को धोखा दे रहे हैं।

विस्थापितों के नाम पर भारतवासियों पर अनेक प्रकार से कर लगाकर शासन ने जो दुष्कर्म किया है वह स्वयं में एक उदाहरण है। बंगला देश के प्रसंग में देवी इंदिरा की भी प्रशंसा करने वालों की संख्या पर्याप्त है। हमें उनकी बुद्धिमत्ता पर भी तरस आता है। ये सब प्रयत्न, प्रशंसायें एवं प्रस्ताव सिखिस्तान और द्रविड़स्तान जैसे विघटनकारी तत्त्वों को प्रोत्साहित करने में सहायक सिद्ध होंगे यह चेतावनी देना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

भारतीयकरण और भ्रातृकरण

विगत मास पंजाब विश्वविद्यालय की राष्ट्रीय एकता समिति द्वारा आयो-

जित एक कार्यक्रम में राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व सर्वोच्च न्यायाधीश श्री हिदायतुल्ला ने कहा कि भारत में रहने वाले मुसलमानों को चाहिए कि वह अपना पूर्णतया भारतीयकरण कर लें और धर्म अथवा अन्य मुस्लिग देशों से लगाव के सन्दर्भ में सोचना छोड़ दें। किन्तु इसके साथ ही उन्होंने हिन्दुओं को सलाह दी कि वे मुसलमानों को शंका की दृष्टि से न देखें और उन्हें अपना भाई समझें। उन्होंने और आगे कहा "अल्पसंख्यकों की समस्या को अधिक उदार दृष्टि से देखा जाना चाहिए जिससे उनके प्रति व्यापक सन्देह का वातावरण दूर होगा और तब वे स्वयं को भारतीय जीवन का एक अंग समझ सकेंगे।" श्री हिदायतुल्ला ने उस सम्मेलन में हिन्दुओं को यह हिदायत भी दी कि वे मुसलमानों को यह विश्वास दिलायें कि वे भारत में सुरक्षित हैं।

मुसलमानों के भारतीयकरण की बात तो समझ में आ सकती है किन्तु भ्रातृकरण की बात उठाकर भारतीयों के प्रति हिदायतुल्ला ने जो अविश्वास एवं सन्देह व्यक्त किया है उसके प्रति हम अपना रोष व्यक्त करते हैं और कहना चाहते हैं कि इस एक सहस्र वर्ष की दासता में हमने मुसलमानों को अपना भाई से कम कुछ नहीं समझा और उसका ही परिणाम था कि हमारे देवी देवताओं को भ्रष्ट किया गया, हमारे मन्दिरों को ध्वस्त किया गया, हमारी ललनाओं का शील हरण किया, हमारे बन्धुओं को पथभ्रष्ट किया गया और जो पथभ्रष्ट नहीं हुए उन्हें दीवारों में चुना गया, आरे से काटा गया।

इतना अमानुषी व्यवहार करने के बाद आज स्वतन्त्र भारत में भी उनके प्रति भाईचारे का ही बर्ताव किया जा रहा है किन्तु उन्होंने अपने आततायी स्वभाव को नहीं छोड़ा। क्या मियाँ हिदायतुल्ला अपने भाइयों को इस विषय में कोई हिदायत देंगे!

[पृष्ठ ५१५ का शेष]

का मुँह मोड़ गया था। प्रगतिवाद के शोर में सब बहरे होने लगे। आजकल वे पर्याप्त विभीषिका दिखा रहे हैं। एक मत है कम्युनिस्टों का और दूसरा मिश्रित-संस्कृति अथवा दोगली संस्कृति वालों का। इनका आक्रमण कम भयावह नहीं है। इन्हें अनेक राज्यों से सहायता प्राप्त है।

ऐसी परिस्थिति में भारतीय ऋषि-महर्षियों का आत्मा भारतवासियों से पूछता है कि इन मतों का आवरण कौन दूर करेगा? इनके अन्धकार को कौन मिटायेगा?···कौन सर्वगुणयुक्त ब्राह्मण कम्युनिज्म के विभिन्न रूपों का अध्ययन कर इसे संसार से उन्मूलित करेगा।···कौन दोगली संस्कृति के निराधार पक्ष के बखिये उधेड़ेगा?···यह काम अब होना है। चाहे आर्य जगत् सीधा इसे करे, चाहे किसी राजनीतिक दल के द्वार से करे।

('शाश्वतवाणी' दिसम्बर १९६१)

कुछ अत्यन्त रोचक व प्रेरणाप्रद पुस्तक

जो प्रत्येक को पढ़नी चाहियें

श्री सावरकर साहित्य

आजन्म कारावास (सम्पूर्ण)	१५.००
1857 War of Independence	35.00
प्रतिशोध (नाटक)	४.००
मोपला-गोमान्तक	३.००
अमर सेनानी सावरकर	२.५०
हिन्दुत्व	२.००
हिन्दुत्व के पंच प्राण	२.००

श्री बलराज मधोक साहित्य

भारत में लोकतंत्र	४.००
जीत या हार	३.००
हिन्दू राष्ट्र	२.००
श्यामाप्रसाद मुखर्जी : जीवनी	४.००
भारत की सुरक्षा	४.००
भारत और संसार	६.००
भारत की विदेश नीति	४.००
भारतीय जनसंघ एक राष्ट्रीय मंच	१.५०
Indian Nationalism	1.50
Hiudu Pad Padshahi	6.00
Nationalism Democracy and Social Change	1.50
Kashmir Centre of New Alignments	15.00
India's Foreign Policy And National Affairs	3.00

डा० रामलाल वर्मा

दिल्ली से कालीकट	५.००
बंगला देश और जनसंघ आंदोलन	२.००

श्री गुरुदत्त साहित्य

ब्रह्मसूत्र (भाष्य)	३०.००
प्रजातंत्र	२.००
अन्तिम यात्रा	१.००
समाजवाद : एक विवेचन	१.००
गांधी और स्वराज्य	१.००
भारत में राष्ट्र	१.००
वन्दे मातरम् (नाटक)	२.००
भारत गांधी नेहरू की छाया में	४.००
देश की हत्या (उपन्यास)	४.००
भग्नाश ,,	३.००
छलना ,,	४.००
धर्म, संस्कृति और राज्य	८.००
जमाना बदल गया (नौ भाग)	२०.००
महर्षि दयानन्द	२.००
युग पुरुष राम	२.५०
खँडहर बोल रहे हैं (३ भाग)	२८.५०
India in the Shadow of Gandhi and Nehru	20.00

श्री पी० एन० ओक

ताजमहल	३.००
भार० इतिहास की भयंकर भूलें	४.००
कौन कहता है अकबर महान् था	१०.००
भारत में मुस्लिम सुल्तान	१०.००
Some Blunders of Indian Historical Research	15.00

HANSRAJ BHATIA

Fatehpur Sikri is a Hindu City	10.00
फतेहपुर सीकरी हिन्दू नगर	६.००

श्री गुरुदत्त का सम्पूर्ण साहित्य हमारे सदन से उपलब्ध है। १० रुपये की पुस्तकों पर डाक व्यय फ्री; २० रुपये की पुस्तकों पर १० प्रतिशत छूट।

भारती साहित्य सदन सेल्स

३०/९०, कनाट सरकस, (मद्रास होटल के नीचे), नई दिल्ली-१

त संस्कृति परिषद् के लिए अशोक कौशिक द्वारा संपादित एवं विकास आर्ट प्रिंटर्स दिल्ली-३२ में मुद्रित तथा ३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली से प्रकाशित।